

# सामायिक-दर्शन

(सामायिक साधना का सर्वाङ्ग विवेचन)

विद्यमान  
आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.

संकलन-सम्पादन

डॉ. धर्मचन्द्र जैन, जोधपुर  
सौभाग्यमल जैन, अलीगढ़-रामपुरा  
त्रिलोकचन्द्र जैन, जयपुर



प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संरक्षक : अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

पुस्तकः  
**सामायिक-दर्शन**  
(सामायिक साधना का सर्वाङ्ग विवेचन)

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार,  
जयपुर-302003 (राजस्थान)  
फोन : 0141-2575997, 2571163  
फैक्स : 0141-4068798

Email : sgpmandal@yahoo.in

तत्त्वावधान

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2016

मूल्य :

₹. 75/- (पिंचेतर रूपये मात्र)

मुद्रक :

दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

पुस्तक :

सामायिक दर्शन

अन्य प्राप्ति स्थल :

■ श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ  
घोड़ों का चौक, जोधपुर-342001  
(राजस्थान)  
फोन : 0291-2624891  
मोबाइल : 09414267824

■ **Shri Navratan ji Bhansali**  
C/o. Mahesh Electricals,  
14/5, B.V.K. Ayangar Road,  
**BANGALURU-560053**  
(Karnataka)  
Ph. : 080-22265957  
Mob. : 09844158943

■ **Shri B. Budhmal ji Bohra**  
211, Akashganga Apartment,  
19 Flowers Road, Kilpauk,  
**CHEENNAI-600010** (TND)  
Ph. : 044-26425093  
Mob. : 09444235065

■ श्रीमती विजयानन्दिनी जी मल्हारा  
“रत्नसागर”, कलेक्टर बंगला रोड,  
चर्च के सामने, 491-ए, प्लॉट नं. 4,  
जलगाँव-425001 (महा.)  
फोन : 0257-2223223

■ श्री दिनेश जी जैन  
1296, कटरा धुलिया, चाँदनी चौक,  
दिल्ली-110006  
फोन : 011-23919370  
मो. 09953723403

पुस्तक :

सामायिक दर्शन

&lt;

## प्रकाशकीय

सामायिक मुक्ति की मूल साधना है। बिना समभाव प्राप्त हुए कोई भी प्राणी मुक्त नहीं हो सकता। अतः सामायिक की उपयोगिता स्वतः ही सिद्ध है। सामायिक का अर्थ होता है अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति में समान रहना। सामायिक का महत्व बताते हुए कहा है-

जे केवि गया मोक्खं, जे वि य गच्छन्ति जे गमिस्सन्ति ।  
ते सच्चे सामाइयप्पहावेण मुण्यव्वं ॥  
किं तिव्वेणं तवेणं, किं च जवेणं किं चरित्तेणं ।  
समयाइ वि ण मुक्खो, न हु हुओ कहवि न हु होई ॥

अर्थात् भूतकाल में जो भी साधक मोक्ष में गये हैं, वर्तमान में जो जा रहे हैं और भविष्य में जो जायेंगे, वे सभी सामायिक के प्रभाव से ही जानने चाहिए। यदि समभाव की प्राप्ति नहीं हुई तो व्यक्ति कितना ही तीव्र तप करे, जप करे, कितनी ही क्रिया पाले, मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। सामायिक के बिना न कभी मोक्ष हुआ है, न वर्तमान में हो रहा है और न ही भविष्य में होगा।

इस प्रकार भगवान ने स्पष्ट रूप से सामायिक के महत्व को प्रतिपादित किया है। सामायिक साधना भावसहित रूप करने से विशेष फलदायक होती है। इसकी तुलना किसी अन्य वस्तु से करना इसके महत्व को कम आंकना है। यह साधना सभी साधनाओं में श्रेष्ठतम है, इसके लिए आगम वाक्य भी इसकी महत्ता को स्पष्ट करता है-

दिवसे दिवसे लक्खं देई सुवर्णास्स खंडियं एगो ।  
एगो पुण सामाइयं, करोड़ न पहुण्पए तस्स ॥

अर्थात् एक ओर एक व्यक्ति नित्य प्रति एक लक्ष स्वर्ण मुद्राओं का दान करता है और दूसरी ओर एक व्यक्ति है जो मात्र दो घड़ी सामायिक करता है तो

दोनों में से सामायिक करने वाला श्रेष्ठ है। लक्ष मुद्राओं का दान एक सामायिक की भी समानता नहीं कर सकता।

सामायिक के जीवन्त पर्याय आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म. सा. के अनुभवपूर्ण प्रवचनों एवं आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म. सा. के प्रेरक वचनों का आधार लेकर ही पुस्तक की प्राथमिक पृष्ठभूमि तैयार हुई है।

प्रस्तुत पुस्तक ‘सामायिक दर्शन’ का पहला संस्करण पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के आचार्यपद आरोहण के रजत वर्ष में प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। पुस्तक में आध्यात्मिक साधना के प्रथम आवश्यक सामायिक के विषय की सर्वांगीण प्रस्तुति करने का प्रयास किया गया है। पुस्तक की सामग्री के संकलन-सम्पादन में डॉ. धर्मचन्द्रजी जैन, जोधपुर, श्री सौभाग्यमलजी जैन, अलीगढ़-रामपुरा तथा श्री त्रिलोकचन्द्रजी जैन, जयपुर का सहयोग रहा। एतदर्थ मण्डल परिवार उनका आभारी है। पुस्तक की सामग्री के मूल आधार जिनवाणी पत्रिका का ‘सामायिक’ विशेषांक (सन् 1965) तथा ‘सामायिक संगोष्ठी’ विशेषांक रहे हैं। इसके साथ अन्य साहित्य का भी कुत्रचित् सहाय्य रहा है। जिनकी सूची पुस्तक के अंत में दी गयी है, उनके लिए भी धन्यवाद देते हैं।

पुस्तक की लेज़र टाइप सैटिंग तथा आवरण सज्जा में मण्डल कार्यालय में कार्यरत क्रमशः श्री प्रह्लाद नारायण जी लखेरा तथा श्री राकेश कुमारजी जैन का सहयोग मिला है। एतदर्थ उन्हें धन्यवाद।

आशा है, यह ग्रन्थ स्वाध्यायियों एवं आगम रसिक जिज्ञासुओं के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

-:: निवेदक ::-

पारसचन्द्र हीरावत

प्रमोदचन्द्र मोहनोत

विनयचन्द्र डागा

पदमचन्द्र कोठारी

अध्यक्ष

कार्याध्यक्ष

मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

## भूमिका

मनुष्य का जीवन अनेक मूल्यों पर आधारित होता है। उन मूल्यों का आधार लेकर वह नियमित आगे बढ़ता रहता है। यह सर्व विदित है कि जगत् का प्रत्येक जीव जीवनोत्थान की भावना रखता है। इस हेतु वह आचरण, प्रवृत्ति और प्रयास भी करता है। क्योंकि यह प्रत्येक मन की आशा होती है कि वह हर अगले पल नवीन आयामों को स्थापित करते हुए आगे बढ़े। जब व्यक्ति का अन्तःकरण पवित्र होता है तो जीवन-विकास के मूल्य श्रेष्ठ होते जाते हैं और वह अपने व्यावहारिक पक्ष को उच्चत, नैतिक पक्ष को प्रगतिशील, धार्मिक पक्ष को आदर्श एवं राजकीय पक्ष को सर्वजन हितैषी रूप में देखना चाहता है। क्योंकि विकास के बिना जीवन नीरस, निष्प्रभावी व अर्थहीन है। जीवन के उक्त पक्षों में समग्र विकास का मूल्य और प्रगति का प्रथम सोपान सामायिक है। सामायिक व्यवहार में मधुरता, दैनिक जीवन में नैतिकता, धर्म में साध्य प्राप्ति और राजनीति में सौहार्द को स्थापित करने का सबसे प्राथमिक साधन है।

सामायिक समभाव की साधना है। वह साधना के मंदिर में प्रवेश करने की प्रथम सीढ़ी है। इसमें किये हुए पापों से पीछे हटने की क्रिया भी है और नये पाप कर्म संचित न करने की विवेक बुद्धि भी। आध्यात्मिक क्षेत्र में इससे राग-द्रेष की मुक्ति का स्वाद मिलता है तो व्यावहारिक क्षेत्र में जीवन को सुखद एवं निर्बाध बनाने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

सामायिक वह आधारभूमि है जहाँ से ऊर्ध्वरोहण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सम्यक्त्व सामायिक के चतुर्थ गुणस्थान से ही व्यक्ति व्रती,

संयमी और अप्रमत्त संयमी की उत्तरोत्तर विकासशील भूमिकाओं की ओर प्रयास करता है। सामायिक में अतिक्रमण और व्यतिक्रमण रूप दोषों से बचने हेतु पाप से पीछे हटने रूप प्रतिक्रमण होता है। अतिचार और अनाचार रूप दोषों से बचने हेतु सदाचार और शुद्धाचार में स्थित होता है। इसीलिए सामायिक ऊर्ध्वरोहण की प्रक्रिया का पहला सोपान है।

सामायिक के पर्याय आचार्य हस्ती के शब्दों में-

जीवन उन्नत करना चाहो तो, सामायिक साधन करलो।

आकुलता से बचना चाहो तो, सामायिक साधन करलो॥

विषम भाव से ओतप्रोत, भौतिकता से संतृप्त इस जीवन रूपी मरुस्थल में शान्ति का झरना सामायिक है। जीवन के सभी पक्षों में उज्ज्वलता व उच्चता की ओर अग्रसर करने में मील का स्तम्भ/पत्थर सामायिक को कहा है। सामायिक असन्तुलन से सन्तुलन, विषमता से समता, विभाव से स्वभाव, पर से स्व की ओर परिणति की सुखद यात्रा है।

सामायिक के स्वरूप को कुछ व्यावहारिक दृष्टान्तों से जाना जा सकता है-

1. दर्पण को आदर्श कहा जाता है। क्योंकि वह किसी भी खूबसूरत चेहरे पर राग भाव व बदसूरत चेहरे पर जुगुप्सा भाव से परे रहते हुए वास्तविकता का भान कराता है। सामायिक भी खूबसूरत चेहरे रूपी सुख और बदसूरत चेहरे रूपी दुःख से परे रहकर वास्तविकता में जीने की साधना है।
2. पृथ्वी समता का उत्कृष्ट उदाहरण है। पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के खनन कार्य होते हैं तथा फूलों की क्यारियाँ भी लगायी जाती हैं। पृथ्वी किसी के भी प्रति राग-द्रेष का भाव नहीं लाती है। पृथ्वी के समान अपने-पराये का भान गलाकर सभी को सम मानना सामायिक है।

3. तराजू पर जब तक राग-द्वेष रूपी मापक वस्तु, पदार्थ आदि नहीं रखे जाते हैं तब तक उसकी सुई स्थिर होती है तथा दोनों पलड़े भी समान रहते हैं। सुख-दुःख रूपी मापक वस्तुएँ तथा पदार्थों से अप्रभावित रह सुई समान स्थिर बनकर तराजू समान सम रहना सामायिक का परिचायक है।
4. धाय माता निजपुत्र का भाव नहीं रखते हुए भी बच्चे का पालन बड़ी कर्तव्यनिष्ठा से करती है। धायमाता के समान सांसारिक कार्यों को निष्पन्न करते हुए ज्ञाताद्रष्टा भाव से रहना समता (सामायिक) है। उक्त अनेक व्यावहारिक उदाहरण सामायिक के स्वरूप को बताने वाले हैं।

अगर हम संसार में रहने की कला सीख लें तो हम कैसी भी स्थिति में सामायिक साधना को सिद्ध कर सकते हैं। भरत चक्रवर्ती जी घर में भी विरक्त थे। इसी कारण उत्कृष्ट सामायिक की सिद्धि कर मोक्ष को गये। कहा भी है कि नाव चाहे पानी में रहे, नाव में पानी न हो, मनुष्य चाहे संसार में रहे, लेकिन उसके अन्तर्मन में संसार न हो। जब तक मन राग-द्वेष के वशीभूत है इधर-उधर भटकता है तब तक उसके हृदय में साम्यभाव (सामायिक) की स्थापना नहीं होती। साम्यभाव के बिना आत्मिक शान्ति सम्भव नहीं। इसी से आत्मोन्नति, आत्मविकास एवं आत्मसुख प्राप्त होगा।

#### **सामायिक की श्रेष्ठता:**

सभी धर्मों में आत्म-साधना की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। जैसे पूजा, प्रार्थना, नमाज, जप, तप, भजन, कीर्तन, सत्संग आदि। भगवान महावीर के अनुसार समता में आर्य धर्म प्रज्ञप्त है। गीता में समत्व योग

का प्रतिपादन है। जैन धर्म में आत्म साधनार्थ अनेक विधि-विधान हैं, किंतु उन सब में सामायिक का स्थान सर्वोपरि है। कारण, ‘सामायिक’ साधना का अविभाज्य अंग है। सामायिक जैन धर्म का एक विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है जो मुख्यतः आत्मसाधना से सम्बन्धित है। यह आत्मा को विभाव से हटा समता भाव रूप स्वभाव में अवस्थित करने की विशिष्ट आध्यात्मिक प्रक्रिया है।

सामायिक एक ऐसा उपाय है जो मनुष्य के चित्त का शोधन करता है। जो कोई भी मोक्ष में जाते हैं या जाएँगे वे सभी सामायिक के प्रभाव से जाएँगे।

योगशास्त्र में आचार्य हेमचन्द्रसूरि कहते हैं—सामायिक का आलम्बन लेकर जो मनुष्य आधे क्षण में कर्म का क्षय कर सकता है वह करोड़ों जन्मों में भी उग्र तप से सम्भव नहीं है।

प्रणिहन्ति क्षणार्थेन साम्यमालम्ब्य कर्म तत् ।  
यन्न हन्यान्नरस्तीव्रतपसा जन्मकोटिभिः ॥

—योगशास्त्र 4.51

‘अनगार-धर्मामृत’ में कहा गया है—

यद्व्याध्यादिवशेनापि क्रियतेऽक्षावशेन तत् ।  
आवश्यकमवश्यस्य कर्माहोरात्रिकं मुनेः ॥

चाहे व्याधि आदि ने ही क्यों न सता रखा हो, फिर भी इन्द्रियों के अधीन न होकर दिन व रात्रि में सामायिक अवश्य करना चाहिये।

सामायिक की साधना व्यक्तित्व-परिवर्तन की बहुत बड़ी साधना है। यह अपने मन को बदलने एवं कषायों को जीतने की साधना है। राग-द्रेष की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सम रहने की साधना है।

यह साधना जीवन में अमृत रस घोलने वाली है। व्यक्तिगत शांति एवं आत्मिक तेजस्विता के साथ परिवार एवं समाज में भी सुंदर वातावरण के निर्माण में सामायिक सहायक है। नियमित सामायिक व्यक्ति की चेतना में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करती है, जिससे नकारात्मक विकार विनष्ट होते नजर आते हैं। व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से शैक्षिक जगत् में विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। किंतु सामायिक व्यक्ति के चित्त एवं चेतना में जो सामर्थ्य प्रदान करती है वह आध्यात्मिक उन्नयन की दृष्टि से विशिष्ट है।

**बुरी आदतों को बलदने में सामायिक एक ठोस साधन हो सकती है।** इसलिए आचार्य हस्ती का कथन है—“जिस तरह घर से निकलकर धर्मस्थान में आते हैं और कपड़े बदलकर सामायिक साधना में बैठते हैं, उसी तरह कपड़ों के साथ-साथ आदत भी बदलनी चाहिए।”

सामायिक में बैठने वाला व्यक्ति यथाशक्य सावद्य क्रिया का त्यागकर अनेकविधि कर्मस्त्रिव से बच जाता है। प्रारंभ में यह लाभ भी महत्व रखता है, किंतु साधक को सदैव आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये। प्रायः हम इस ओर सजग नहीं रहते। दिनचर्या में जैसा चल रहा है उसे वैसा ही चलने देते हैं, कई बार तो शिथिलता के कारण दोषों में अभिवृद्धि होती रहती है और हम सामायिक के मूल लक्ष्य से भटक जाते हैं। आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. का चिंतन है—“आपकी सामायिक दस्तूर की सामायिक न होकर साधना की सामायिक हो।” सामायिक किसी को दिखाने के लिए अथवा कोई कार्यक्रम पूरा करने मात्र के लिए न हो, अपितु वह सच्ची साधना का अंग बने।

आचार्य श्री हस्ती ने इस समत्व की साधना के पाँच उपाय बताए हैं—(1) ममत्व त्याग, (2) सुकुमारता त्याग, (3) कामना-त्याग, (4)

विकथा त्याग और (5) लोकैषणा-त्याग। सामायिक के साधक का बाह्य पदार्थों के प्रति जितना ममत्व छूटता जाएगा वह उतना ही समत्व को प्राप्त होता जाएगा। इसी प्रकार कोमलता का परित्याग करते हुए शरीर की सहिष्णुता बढ़ानी चाहिए। दुःख को, कष्ट को सहने का जितना अभ्यास बढ़ेगा उतना ही चित्त समत्व को प्राप्त होता जाएगा। मनुष्य के चित्त की चंचलता का एक कारण उसकी इच्छाएँ या कामनाएँ हैं। बार-बार चित्त उनकी पूर्ति के लिए आकुल-व्याकुल होता रहता है। सामायिक का साधक कामनाओं को न्यून कर आध्यंतर रस के प्रति उन्मुख होता है। सामायिक में चार प्रकार की विकथाओं का त्याग कहा गया है-1. स्त्रीकथा, भक्त कथा, देश कथा, राज कथा। इन चार कथाओं के सदृश सुख-सुविधा, निंदा एवं विषयों से जुड़ी अन्य भी कथा हो सकती है, जो व्यक्ति को सामायिक साधना के मूल लक्ष्य को विचलित करती है, अतः ऐसी सभी कथाएँ त्याज्य हैं। किसी भी प्रकार की लौकेषणा जो भव-भव में भटकाने वाली है, उसका पूर्णतया त्याग करने से ही सामायिक साधना सफल होती है।

जीवन में समता रूप आचार ही सामायिक है। प्रतिकूल प्रसंग उपस्थित रहने पर भी समझाव में स्थित रहना सामायिक की कसौटी है। उपकारी के साथ उपकार करने वाले तो बहुत मिलेंगे, पर अपकारी के साथ भी उपकार की भावना रखने वाले कम होंगे। सामायिक साधक ही ऐसा कर सकते हैं। आज व्यक्ति इतना अस्थिर व उत्तेजित है कि एक सामान्य मच्छर के काटने से, कुछ कटु वचनों से उसकी समता खंडित हो जाती है। जो जितना अधिक सम्मान प्राप्त व्यक्ति है उसके विपरीत जरा-सी बात होने पर उतनी ही अधिक ठेस लगती है। यह सब द्रव्य सामायिक से भाव सामायिक में नहीं पहुँचने के कारण ही होता है। द्रव्य सामायिक से हमें भाव सामायिक की ओर बढ़ने का लक्ष्य रखना चाहिए।

बहुत से लोग सामायिक साधकों के जीवन में परिवर्तन न देखकर सामायिक को दोष देते हैं। सामायिक साधक सामायिक की उच्चता का ध्यान रखते हुए उसके उद्देश्य को पूर्ण करने हेतु तत्पर रहे। सामायिक साधक को मन, वचन, काया के दोषों से बचना चाहिए। आज व्यक्ति अपने को न बदलकर परिस्थितियों को बदलना चाहता है जबकि सामायिक व्यक्ति को रूपान्तरित करने की प्रक्रिया है। सामायिक बाहर की क्रिया नहीं अंदर की क्रिया है।

सामायिक साधक को प्रतिदिन यह सोचते रहना चाहिये कि उसके विषम भाव कितने कम हुए हैं और समता कितनी आयी है? जिस प्रकार बुखार आने पर यदि दो-तीन दिनों तक दवाई लेते रहने पर वह नहीं उत्तरता है तो दवा बदल ली जाती है। इसी प्रकार साधक भी विचार करे कि सामायिक करते-करते वर्षों बीत गये और मन की वृत्तियों में कोई बदलाव नहीं आया तो वह अपने स्वभाव, चर्या आदि को बदलने का प्रयत्न करे। जिस प्रकार दवा रोग मिटाने के लिए ली जाती है उसी प्रकार सामायिक समता लाने के लिए की जानी चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य सुख शान्ति प्राप्त करना है। इसके लिए सामायिक सब से सरल व सीधा साधन है। सांसारिक झंझटों में फँसे मानव के लिए यह एक उत्तम विश्राम स्थल है।

जीवन को सर्वतोमुखी समुन्नत कर सत्यं शिवं सुन्दरम् रूप करने, आकुलता-व्याकुलता मिटाने, सच्ची सुख शान्ति पाने, परमात्म पद की उपलब्धि करने हेतु प्रत्येक साधक को नियमित रूप से अधिक समय सामायिक में देना श्रेयस्कर है। गृहस्थ साधक दिन-रात चौबीस घंटों में प्रति घण्टा दो मिनट भी बचा कर निकाले तो एक सामायिक का समय 48 मिनिट सहज निकाल सकता है। नियमित सामायिक करने से

विशेष लाभ होता है। जैसे शरीर को नित्य खुराक देकर पुष्ट करते हैं वैसे ही आत्मा को सामायिक की खुराक से पुष्ट करना चाहिये। इस साधना को अपनाकर प्रत्येक साधक समता को जीवन में चरितार्थ कर सकता है।

### व्याख्या साहित्य :

सर्वप्रथम तो सामायिक अध्ययन का निरूपण प्रत्येक तीर्थঙ्कर के प्रवचन में होता है क्योंकि तीर्थङ्कर को तीर्थङ्कर गोत्रनाम कर्म का वेदन करने के लिए सामायिक का प्रवचन करना होता है। सामायिक अध्ययन पर व्याख्या साहित्य भी उपलब्ध है। उनमें प्रमुख हैं—(1) आचार्य भद्रबाहु कृत आवश्यक निर्युक्ति (2) आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण कृत विशेषावश्यक भाष्य (3) आचार्य जिनदास कृत चूर्णि (4) आचार्य हरिभद्रीया टीका (5) मलयगिरि कृत टीका। इनके अतिरिक्त भी व्याख्या साहित्य उपलब्ध है। वर्तमान में उपाध्याय अमरमुनि कृत सामायिक सूत्र भी सुंदर विवेचन करता है।

### आभार ज्ञापन :

मैं श्रद्धावनत हूँ सामायिक स्वाध्याय के प्रबल प्रेरक आचार्य हस्तीमलजी म.सा. के प्रति जिनका पूर्ण जीवन समता से परिपूर्ण था। मैं श्रद्धाप्रणत हूँ व्यसन मुक्ति के प्रबल प्रेरक आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के प्रति जिनके कृपा-निष्ठेप से मैं निहाल हूँ। मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे भगवन्त के चरणोपपात में अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ। आप हम जैसे अल्पज्ञ शिष्यों को कार्यों का प्रस्थापक ही नहीं बनाते, बल्कि कार्य की पूर्णता तक अपना अमूल्य दिशानिर्देश प्रदान कर उसे निष्ठापक का विरुद्ध भी प्रदान करते हैं। आपके तत्त्वावधान में पुस्तक का समस्त कार्य सम्पादित हुआ है। आपके द्वारा प्राप्त मार्गदर्शन मुझे आपके प्रति कोटि-कोटि वन्दन करने को उत्सुक करता है।

मैं न त मस्तक होकर अन्तःश्रद्धा से स्मरण करता हूँ। उन सन्त-सती रत्नों को जिनके सान्निध्य में बैठकर नवीन उत्साह व ऊर्जा का संचार हुए बिना नहीं रहता। उनके समतारूपी जीवन को देखकर सामायिक के विषय में संकलन-संपादन जैसा दुरुह कार्य भी सरल-सुगम प्रतीत होने लगा। आशा करता हूँ कि मेरे श्रद्धा के केन्द्र सन्त-सती रत्नों की प्रज्ञा से निर्झरित ज्ञान अणु मेरे भीतर में स्वाध्याय की जिज्ञासा तथा तदनुरूप पुरुषार्थ करने की शक्ति को उत्पन्न करते रहें।

किसी भी ग्रंथ के प्रकाशन में सम्पादन कार्य एक महत्वपूर्ण अंग है। इस कार्य में जिनवाणी के प्रधान सम्पादक, विद्वान् मनीषी डॉ. धर्मचन्द जैन तथा भाषाविज्ञ श्री सौभाग्यमल जैन का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। डॉ. धर्मचन्द जैन साहित्य के क्षेत्र में जैन दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का लेखन एवं सम्पादन किया है। पुस्तक तैयार करने की पृष्ठभूमि आपश्री के द्वारा ही तय की गयी। पाठ चयन, लेखों का सम्पादन, भूमिका लेखन आदि कार्यों में आपके सहयोग के लिए कृतज्ञ हूँ। साथ ही प्राथमिक स्तर पर सामग्री-संकलना कर उसमें यथायोग्य संयोजना-वियोजना करने का कार्य श्रावकरत्न श्री सौभाग्यमल जैन द्वारा किया गया। आपश्री के द्वारा पुस्तक के प्रकाशन की योजना की नींव रखी गयी। मैं उन्हें विशेष धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

पुस्तक के सम्बन्ध में समय-समय पर विद्वान् प्रशिक्षक श्री प्रकाशचन्द जैन के सुझाव प्राप्त होते रहे। उनके प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक में सामायिक साधना का सर्वांग विवेचन करने का प्रयास किया गया है। सामायिक पर उपलब्ध विशाल व्याख्या साहित्य को आधार बनाकर सरल भाषा में प्रस्तुत करने हेतु सामायिक दर्शन पुस्तक को

साकार रूप प्रदान किया गया है। पुस्तक में एक शब्द भी यदि जिनवाणी के विपरीत आया हो तो उसका मिछ्छा मि दुक्कडं देते हुए क्षमाप्रार्थी हूँ। ज्ञानपिपासु विज्ञजन इसका नीर-क्षीर दृष्टि से स्वाध्याय करके अपने जीवन को सामायिकमय बनायेंगे तथा पुस्तक में रही त्रुटियों से अवगत करायेंगे, ऐसी अपेक्षा है।

-त्रिलोकचन्द जैन  
शिक्षक, आध्यात्मिक शिक्षा समिति  
37/67, रजतपथ, मानसरोवर, जयपुर

## विषयालुक मणिका

प्रकाशकीय	III
भूमिका	V
अध्याय प्रथम–सामायिक : एक अनुशीलन	1-98
1. साधक का लक्ष्य और साधना	3-7
2. सामायिक साधना की भूमिका	8-11
3. सामायिक क्यों ?	12-14
4. सामायिक का अर्थ एवं स्वरूप	15-25
5. सामायिक में शुद्धि का महत्व	26-32
6. सामायिक में मन की चंचलता : कारण व निराकरण	33-37
7. मुख्यस्त्रिका की उपयोगिता	38-45
8. सामायिक के भेद	46-55
9. सामायिक का विधि विधान	56-58
10. सामायिक सूत्र के पाठों की प्रासंगिकता	59-63
11. सामायिक में सम्भाव (समता) प्राप्ति के उपाय	64-66
12. सामायिक के पाँच अतिचार	67-73
13. सामायिक के बत्तीस दोष	74-79
14. सामायिक की दुर्लभता एवं महत्व	80-83
15. सामायिक का मूल्य	84-86
16. साधु व श्रावक की सामायिक	87-91
17. आप्त-वचनों में सामायिक	92-95
18. सामायिक में परंपरा-भेद और सहिष्णुता	96-98
अध्याय द्वितीय–सामायिक की व्यापकता	99-132
1. सामायिक का जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव	101-109
2. ज्ञान, भक्ति व कर्मयोग की साधना : सामायिक	110-117
3. विविध साधनाओं की भूमि : सामायिक	118-120
4. सामायिक और जीवन-मूल्य	121-125

5.	सामायिक और स्वाध्याय	126-129
6.	सामायिक : एक विचित्र साधना	130-132
	अध्याय तृतीय-सामायिक पाठ विधि सहित	<b>133-194</b>
1.	गुरु वंदन सूत्र	135-139
2.	नवकार मंत्र	140-146
3.	ईर्यापथिक सूत्र	147-152
4.	उत्तरीकरण सूत्र	153-158
5.	कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ	159-159
6.	उत्कीर्तन सूत्र	159-168
7.	सामायिक प्रतिज्ञा सूत्र	169-175
8.	शक्रस्तव प्रणिपात सूत्र	176-189
9.	सामायिक समापन सूत्र	190-194
	अध्याय चतुर्थ-सामायिक : जिज्ञासा-समाधान	<b>195-214</b>
	अध्याय पंचम-सामायिक स्तवन	<b>215-222</b>
1.	जीवन उन्नत होवेला	217
2.	सामायिक साधन कर लो	218
3.	सामायिक तू करता जा	220
4.	करने जीवन का उत्थान	221
5.	सामायिक में सार है	222
	अध्याय षष्ठ-सामायिक सार	<b>223-236</b>
1.	सामायिक क्या ?	225
2.	सामायिक का क्या कहना ?	226
3.	सामायिक को क्या उपमा ?	227
4.	सामायिक में क्या नहीं करना ?	228
5.	सामायिक में क्या करना ?	231
6.	सामायिक से कर्म क्षय	233
7.	सामायिक रत्न है	234
8.	सामायिक पाठ विशेष	235
9.	सामायिक से क्या लाभ ?	236
	अध्याय सप्तम-सामायिक सूक्तियाँ	<b>237-242</b>
1.	आचार्य हस्ती के सामायिक संबंधी प्रेरक वचन	239-240
2.	आचार्य हीरा के सामायिक संबंधी प्रेरक कथ्य	241-242

अध्याय प्रथम

सामायिक : एक अनुशीलन



## साधक का लक्ष्य और साधना

साधक के जीवन के समक्ष सबसे बड़ा लक्ष्य एवं उद्देश्य यह है, कि वह दुःख मुक्त होना चाहता है। दुःख मुक्त होने के लिए आवश्यक है कि वह स्व और पर दोनों को समझे। पर को समझने से भी अधिक महत्वपूर्ण है स्व को समझना। जीवन में विकास और परिवर्तन निरन्तर आते हैं, किन्तु उन परिवर्तनों के मध्य आत्म-तत्त्व एक शक्ति ऐसी है, जिसमें परिवर्तन होकर भी वह अपरिवर्तित रहती है। इस तत्त्व को समझना ही साधक जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। इस आत्म-तत्त्व को बिना समझे शेष समग्र ज्ञान कोरी कल्पना ही होगा। आत्मा के ज्ञान से ही सत्य का आचरण हो सकेगा तथा दुःख मुक्ति के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकेगा। साधक के जीवन का एक दिव्य प्रयोजन है—अपनी देश-काल की क्षुद्र सीमाओं से परे हो जाना, सर्व प्रकार के भव-बन्धनों से मुक्त हो जाना। सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने के लिए अन्तर्जीवन को समझना होगा और उस ज्ञान को जीवन में उतारने की जो एक दिव्य कला है, उसी को साधना कहा जाता है।

### साधना—

साधना क्या है? उसका क्या स्वरूप है? तथा उसके कितने रूप प्रचलित हैं? यह एक गम्भीर प्रश्न है। इस विराट् और विशाल विषय को कुछ शब्दों में बाँधना शक्य नहीं है, किन्तु फिर भी इस विषय में संक्षेप में कहना आवश्यक है कि भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति की प्रधान धाराएँ तीन हैं—जैन, बौद्ध और वैदिक।

बौद्ध-दर्शन में साधना का मुख्य रूप चार आर्य सत्य है। चार आर्य

सत्य का अर्थ है-दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख-मुक्ति है और दुःख मुक्ति का उपाय भी है। जैसे-रोग, रोग का निदान, औषध और पथ्य का सेवन। सबसे पहले वैद्य यह देखता है, कि रोगी के शरीर में रोग है अथवा नहीं। यह रोग के अस्तित्व का ज्ञान है। फिर यह देखा जाता है कि रोग किस प्रकार का है। उसके बाद उस रोग को दूर करने के लिए औषधि का निश्चय किया जाता है। साथ में रोग आगे बढ़ने न पाए, इसलिए तदनुकूल पथ्य का सेवन भी आवश्यक समझा जाता है। पथ्य का सेवन रोग को बढ़ने से रोकता है और औषधि का सेवन शरीर में परिव्याप्त रोग को क्षीण एवं नष्ट करता है। रोग के अस्तित्व का ज्ञान और रोग का निदान भी आवश्यक इस आधार पर माना गया है, कि यदि शरीर में रोग का अस्तित्व ही न हो तो फिर निदान किसका होगा?

बौद्ध-दर्शन एवं बौद्ध-संस्कृति की साधना में यह कहा गया है, कि जगत् दुःखमय है। संसार में प्रत्येक प्राणी, जन्म, जरा, मरण और रोग से पीड़ित है। इस दुःख का कारण है-भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा और कामतृष्णा। इन तृष्णाओं से विमुक्त होने का प्रयास करना ही साधना है। व्यक्ति जब तक इन तृष्णाओं से विमुक्त नहीं होता है, तब तक वह संसार के दुःख एवं क्लेशों से विमुक्त नहीं हो सकता। इनसे विमुक्त होना ही साधना का लक्ष्य है।

वैदिक संस्कृति में साधना के तीन मार्ग बताए हैं-ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। कुछ साधक, ज्ञानयोग की साधना करते हैं, कुछ साधक, कर्मयोग की साधना करते हैं और कुछ साधक, भक्तियोग की साधना करते हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति ये तीनों वस्तुतः साध्य नहीं हैं, बल्कि साध्य को प्राप्त करने के लिए साधन मात्र हैं। साधक के जीवन का वास्तविक लक्ष्य है-ब्रह्मस्वरूप हो जाना। मोक्ष एवं मुक्ति की प्राप्ति के लिए वैदिक धर्म के अनुसार इनमें से किसी भी एक साधन को लेकर साध्य की सिद्धि के लिए साधक अग्रसर होता है। ज्ञान की साधना निराकार की साधना है, भक्ति की

साधना साकार की साधना है और कर्मयोग की साधना अनासक्ति की साधना है। गृहस्थ में रहते हुए भी और गृहस्थ के कर्तव्य को करते हुए भी उसके फल के प्रति अनासक्त रहना, यही कर्मयोग की साधना है।

जैन-धर्म, जैन-दर्शन और जैन संस्कृति की साधना के भी मुख्य रूप में तीन अंग माने गए हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र। इसको रत्नत्रय अथवा रत्नत्रयी कहा जाता है। जैन-संस्कृति की साधना के अनुसार सबसे पहले राग-द्वेष विजेता देव पर, पंच महाव्रतधारी एवं पंच समिति तीन गुप्ति के पालक गुरु पर और रत्नत्रय रूप धर्म पर विश्वास करने की आवश्यकता है, इसी को सम्यग्दर्शन कहा जाता है। यह सम्यग्दर्शन जीवन की सच्चाई को समझने में सहायक है। मैं क्या हूँ और मेरे से भिन्न यह जड़ जगत क्या है? इस प्रकार स्व-पर के भेद-विज्ञान भी सम्यग्दर्शन से ही सम्भव है। इस भेद-विज्ञान अथवा यथार्थ ज्ञान को ही सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। जब तक स्व और पर का भेद-विज्ञान नहीं होगा अथवा यथार्थ ज्ञान नहीं होगा, तब तक साधक अपनी साधना के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जो कुछ विश्वास किया है और जो कुछ समझा एवं जाना है, उसके अनुसार जीवन को बनाना ही सम्यक् चारित्र है। उक्त रत्नत्रयी के पूर्ण विकास को ही मुक्ति एवं मोक्ष कहा जाता है। अन्य प्रकार से विशेषावश्यक भाष्य में साधना के स्वरूप को “‘णाणकिरियाहिं मोक्खो’” कहा है। ज्ञान व क्रिया अर्थात् चारित्र से ही मोक्ष साध्य को प्राप्त किया जा सकता है।

दर्शन-साधना, ज्ञान-साधना और चारित्र-साधना का अध्यात्म जीवन में समन्वय परमावश्यक है। सम्यग्दर्शन सही दृष्टि प्रदान करता है, ज्ञान से वस्तु स्थिति का बोध होता है तथा चारित्र-साधना में अशुभ से निवृत्ति एवं शुभ में प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार विचार के साथ आचार की साधना और आचार के साथ विचार की साधना ही जीवन को परिपूर्ण बनाती है। साधक का चिन्तन और अनुभव जितना सूक्ष्म व अन्तःस्पर्शी होता है, साधक के

जीवन में उतना ही अधिक आनन्द और उल्लास प्रकट होता है। इस जगत में जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब कुछ ग्राह्य है अथवा वह सब कुछ त्याज्य है, अथवा उसमें से कुछ ग्राह्य भी है? उक्त प्रश्न का सम्यक् निर्णय एवं सम्यक् विवेक ही अध्यात्म-साधना का आधार है। साधक अपनी अध्यात्म-साधना के चरम लक्ष्य की पूर्ति तभी कर सकता है, जब वह जीवन के यथार्थ दृष्टिकोण को समझे और समझकर जीवन के धरातल पर उसे उतारने का प्रयत्न करे। सम्यग्ज्ञान को आचरण में लाने पर चित्त की विषमता दूर होती है तथा समत्व की साधना प्रारम्भ होती है।

आत्मा में दो धर्म हैं—समता और विषमता। समता, आत्मा का स्वभाव है और विषमता, आत्मा का विभाव है। क्रोध करना विषमता है और मन को शान्त रखना समता है। अभिमान विषमता है और विनम्रता समता है। छल एवं कपट विषमता है और सरलता समता है। लोभ विषमता है और सन्तोष समता है। किसी भी प्रकार की विषमता जब तक साधक की आत्मा में विद्यमान है तब तक उसे भव-बन्धनों से विमुक्ति नहीं मिल सकती। समत्व-योग की आवश्यकता केवल अध्यात्म-जीवन में ही नहीं है, वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन में भी है। अपने धन, जन और बल का अहंकार करना, यह वैयक्तिक विषमता है। अपने स्वार्थ के लिए अपने परिजनों का परिशोषण करना, यह पारिवारिक विषमता है और समाज में किसी को उच्च और किसी को नीच समझना, नारी जाति और हरिजन वर्ग के प्रति हीन भावना रखना, यह सामाजिक विषमता है। आज के युग में एक अन्य प्रकार की विषमता भी चल पड़ी है, जिसे भाषा और प्रान्त की विषमता कहते हैं। एक प्रान्त वाला व्यक्ति दूसरे प्रान्त वाले व्यक्ति को यदि अपने से हीन कोटि का समझता है, तो वह भी एक प्रकार की विषमता है। किसी भाषा को उच्च समझना और किसी भाषा को नीच समझना, यह भी एक प्रकार की विषमता है। विषमता किसी भी प्रकार की क्यों न हो, वह धर्म का अङ्ग नहीं बन सकती, इसलिए वास्तविक धर्म और सच्ची साधना समत्व-योग की

साधना है, जिसमें प्राणी का, प्राणी के प्रति अपरिमित प्रेम परिव्याप्त रहता है। अपने समान सबको समझना ही यथार्थभूत समत्व-योग है।

यह समत्व-योग ही श्रमण संस्कृति की आधार शिला है। समत्व-भावना का आविष्कार, प्रचार और प्रसार श्रमण संस्कृति की अमर देन है। समत्व-योग के प्राणभूत तत्त्व दो हैं—अहिंसा और अनेकान्त। अहिंसा का अर्थ है—समग्र भाव से सब जीवों के प्रति स्नेह, सहानुभूति और सद्भाव रखना। अनेकान्त का अर्थ है—अपने से भिन्न व्यक्ति के विचार को सुनकर उसके दृष्टिकोण को समझकर उसके साथ समुचित सामज्जस्य एवं सन्तुलन स्थापित करना।

समता एवं समत्व योग की साधना को ही सामायिक कहा जाता है। राग एवं द्वेष के प्रसंगों भी समभाव से विचलित न होना, यही सामायिक की सच्ची साधना है। श्रमण-संस्कृति में सामायिक की साधना को सबसे श्रेष्ठ साधना कहा गया है। सामायिक की साधना आत्मा की साधना है, सामायिक की साधना निराकार की साधना है, सामायिक की साधना अपने ही आत्म गुणों की साधना है। सामायिक की साधना को व्याख्याकार आचार्यों ने, सामायिक शब्द का व्यापक और विशाल अर्थ लेते हुए बतलाया है कि जीवन के जिस किसी भी क्षण में समभाव एवं समत्व-भाव रहता है, वह सामायिक है, फिर भले ही वह समत्व-भाव किसी भी देश और किसी भी काल का क्यों न हो। सामायिक की विशुद्ध साधना में किसी देश, काल और जाति विशेष की सीमाएँ नहीं हैं। वहाँ तो केवल एक बात देखी जाती है, कि सामायिक की साधना करने वाले व्यक्ति के मन में समभाव है अथवा नहीं? सामायिक की व्याप्ति समभाव से है। जहाँ समभाव है वहाँ सामायिक है और जहाँ समभाव का अभाव है, वहाँ सामायिक का भी अभाव है। भव बंधन से विमुक्ति ही सामायिक साधना का वास्तविक उद्देश्य है।

◆◇◆

## सामायिक साधना की भूमिका

वटवृक्ष ऊपर से जितना विशाल दिखता है, भीतर में उतना ही दूर तक फैला हुआ होता है; जड़ें जितनी गहरी, वृत्त उतना ही विशाल। इसी तरह मनुष्य की आस्था, श्रद्धा, मान्यता, विचारधारा जितनी दृढ़ होगी, आचार का वटवृक्ष तथा सद्गुणों के फल-फूल उतने ही अधिक लगेंगे। समय आने पर वटवृक्ष के पत्ते जरूर झड़ते हैं, पर जड़ से तनों में बहती रसधारा उसे फिर हरा-भरा कर देती है; इसी तरह विपत्तियाँ या प्रतिकूलताएँ मनस्वी मनुष्यों का कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं, किन्तु समझाव से उन्हें सहन करने पर वे उनके व्यक्तित्व में चार-चाँद लगाकर प्रसिद्ध कर देती हैं। इस प्रकार सद्गुणों के मूल को सींचने वाली साधना सामायिक है।

जैसे आकाश सभी द्रव्यों का, पृथ्वी सभी जीवों का, दया सभी धर्मों का आधार है, वैसे ही सामायिक सभी गुणों का भाजन है, आधार है। समता के सहारे ही सभी गुणधर्म टिकते हैं।

जैसे—अंधेरे में बड़े-बड़े सुनसान महल और किले अटपटे तथा डरावने लगते हैं वैसे ही आत्मिक भाव या आत्म-विकास के बिना ये ऐश्वर्य और वैभव भी ईर्ष्या, द्वेष एवं लड़ाई के साधन बन जाते हैं। तीर्थঙ्कर भगवान महावीर, गौतम बुद्ध और चक्रवर्ती भरत आदि महापुरुषों के पास रमणियाँ, राजपुत्र, अतुल सम्पत्ति, सुन्दर भव्य भवन, एक छत्र राज्य आदि मन बहलाने के बड़े-बड़े साधन थे; किन्तु उन्हें ये सब अटपटे, डरावने व नीरस लगे और एक दिन वे इन वैभव-विलासों को छोड़, ममत्व को तोड़, आत्मविकास के उज्ज्वल पथ सामायिक स्वरूप समता भाव की ओर बढ़ चले।

**वस्तुतः** चिंता, शोक, विपत्ति और अभाव के निवारण के लिए कितना ही धन-वैभव और सुख-साधन जुटा लें, भौतिक विद्या पढ़ लें, बौद्धिक विकास कर लें, वैज्ञानिक आविष्कार कर लें, जल-थल-नभ पर आधिपत्य जमा लें अथवा इन सबसे ऊपर उठकर कान छिदा लें, सिर मुंडा लें, धुणी रमालें, गेरुएँ या श्वेत वस्त्र धारण कर लें, वस्त्र मात्र को छोड़ दें, किन्तु जब तक हृदय में सम्भाव का उदय नहीं होगा, तब तक समस्याओं का समाधान न हुआ है, न ही होगा। सामायिक की साधना इन सब समस्याओं का सम्यक् समाधान करती है।

यह तो आप जानते हैं कि यह संसार समरस नहीं है। यहाँ शीत-उष्ण, दिन-रात, कठोर-कोमल, सुख-दुःख एवं जन्म-मरण का भी जोड़ा है। सर्वत्र न सुख है, न दुःख। फिर भी मनुष्य सुख की प्राप्ति, सुख की वृद्धि वाली लालसाएँ पोषित करने की सोच में प्रयत्नशील रहता है। वैसे मनुष्य की सामान्य इच्छाएँ शरीर स्वस्थ हो, साथी अनुकूल हो, हर कार्य में पटुता हो, बुद्धि तीक्ष्ण हो, प्रवचन या वार्तालाप की शैली आकर्षक व मिठास भरी हो, इन सबके अतिरिक्त यदि तत्त्व का ज्ञान भी हो तो सोने में सुहागा ही कहेंगे। इन अनेक कामनाओं की पूर्ति होना या मिलना पुण्यशालिता का परिचायक है। पर इच्छाओं के कारण परिस्थितियाँ भी घेरा दिये रहती हैं, वे प्रतिरोध करती हैं, अतः पद-पद पर व्यक्ति दुःखी होने लगता है। जन्म के साथ रोग का, धन के साथ भय का, पद-योग्यता के साथ ईर्ष्या व मनोमतिन्य का कारण जुड़ा है। अतः साधारण व्यक्ति को यह जीवन दुःखों का घर प्रतीत होता है। लेकिन सामायिक की साधना वाले साधक के लिये यह जीवन खेल है। जैसे-बालक क्रीड़ा, विनोद तथा भावी जीवन की तैयारी के लिए खेल खेलते हैं। कल-कारखाना, खेती, व्यापार, उद्योग-धंधे करने से पूर्व बारीकी से जानकारी का प्रशिक्षण रुचि सहित लेते हैं, फिर भी छोटी से बड़ी तक अगणित समस्याएँ प्रतिदिन आती हैं और उनको सुलझाना पड़ता है। सुलझाते

समय निराशा के क्षण भी आते हैं। सोचते हैं-ऐसा खेल-खेलते कितने जन्म, कितने युग, कितनी परिस्थितियाँ, पात्र और क्षेत्र बदल गये, लेकिन यह खेल अभी तक चल रहा है। यहीं चिंतन का मूल विषय है। इस खेल को कहाँ तक खेलते रहने की कामना है? या इस पर विराम लगाना है। यदि विराम लगाना है तो दिशा बदलिये, दशा अपने आप बदल जायेगी, इतनी समता से खेलिए कि जन्म ही नहीं लेना पड़े। निश्चय के साथ-आत्मा का विकास, पूर्णता तथा लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु शेष जीवन का खेल खेलने के लिए सहनशीलता में गति कीजिये। गतिशीलता के लिए सामायिक आवश्यक है। सामायिक का सतत अभ्यास हर समस्या का हल निकालता है। सामायिक की साधना वाला विपरीत परिस्थितियों में भी सम्भाव तथा सहनशीलता का आश्रय लेकर प्रसन्नतापूर्वक कर्तव्य पथ पर टूट रहता है।

सामायिक सही समझ का परिणाम है। सामायिक के साधक को इस भ्रम से भी बचना चाहिये कि सामायिक, प्रतिक्रियण वाला कैसा भी पाप करे, उसका पाप छूमंतर हो जाता है। ऐसी सोच सामायिक का मूल्य घटाने वाली है। मात्र निर्जरा अथवा कर्मक्षय के लिए सामायिक की साधना करनी है। दशवैकालिक सूत्र में कहा है—“नो इहलोगद्वयाए आयारमहिद्विज्जा” अर्थात् इस लोक, परलोक एवं सुख समृद्धि, कीर्ति, प्रशंसा आदि की दृष्टि से धर्माचरण नहीं करे। अतः दोषों को टाल सावद्य प्रवृत्ति से पृथक् हो, निरवद्य प्रवृत्ति के वातावरण में विधि सहित नियमित रूप से साधना पूर्वक सामायिक की आराधना की जाय।

सामायिक की साधना इतनी विराट् हो कि जीवन की छोटी-बड़ी प्रत्येक क्रिया-प्रवृत्ति एवं व्यवहार के माध्यम से वह अन्यों को भी आकर्षित करे, प्रभाव दिखावे। जैसे-सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की शीतलता, बादलों का पानी, शुद्ध वायु, अग्नि की उष्णता किसी एक, क्षेत्र के व्यक्ति की बपौती नहीं। वैसे ही साधना का प्रकाश किसी एक क्षेत्र के व्यक्ति तक सीमित नहीं,

अपितु सर्वव्यापक है। सामायिक साधना मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करने वाली बहुआयामी सद्प्रवृत्ति है। सामायिक साधना वाला सामायिक काल में साधु की जीवन-चर्या से साक्षात्कार कर लेता है। इसकी साधना वाला नारकी एवं तिर्यच गति के ताला लगाकर देवगति व मोक्षगति को प्राप्त करता है।

सामायिक को हम पहले समझें, फिर स्वीकार करें, तो फिर सामायिक की नहीं जाएगी, स्वतः हो जाएगी। सामायिक सूत्र छह काय के जीवों को अपने समान समझने का पाठ पढ़ाता है। यह सूत्र पाँच इन्द्रियों और छठे मन रूपी छकड़ी के प्रपञ्च से मुक्त होने का उपाय है।

पाप को कभी छोटा नहीं समझना चाहिये। यह “अण थोवं वण थोवं” के समान है। ऋण, ब्रण (घाव), अग्नि एवं बीज जैसे वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं वैसे ही छोटा पाप भी बढ़ते-बढ़ते पर्वताकार हो जाता है। सामायिक साधना में आत्मशुद्धि का तत्त्व ही अधिक होता है। सर्वप्रथम ‘करेमि भंते ! सामाइयं’ से समत्व की प्रतिज्ञा पश्चात् ‘सावज्जं जोगं पच्चक्खामि’ से निंदनीय, वर्जनीय पापों का त्याग किया जाता है। इसके पश्चात् आत्म-शुद्धि के संदर्भ में ‘पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि’ ये चारों साधना रूप शोधन के प्रतीक हैं।

समता के अभाव में की गई सारी साधना प्राण शून्य देह का भार ढोने के समान है। मात्र कपड़े बदलकर, आसन बिछाकर घण्टे भर बैठ जाना, कुछ माला, जप, कुछ भजन आदि बोल लेना सामायिक की वास्तविक साधना एवं स्वरूप न होकर मात्र दस्तूर की सामायिक है।

◆◇◆

### 3

## सामायिक क्यों ?

जो साधक पूर्ण संयम धारण कर तीन करण तीन योग से सामायिक नहीं कर पाता ऐसे गृहस्थ को आत्महितार्थ दो करण तीन योग से आगार सामायिक अवश्य करनी चाहिये । क्योंकि वह भी विशिष्ट फल की साधना है, जैसे कि निर्युक्ति में कहा है-

सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ,  
एण कारणेण, बहुसो सामाइयं कुज्जा ।

अर्थात् सामायिक करने पर श्रावक श्रमण-साधु की तरह होता है । वह अल्पकाल के लिए पापों का त्याग करके भी श्रमण जीवन के लिए लालायित रहता है । इसलिये गृहस्थ को समय-समय पर सामायिक साधना करनी चाहिये ।

जिस साधना से समभाव की प्राप्ति हो वह सामायिक है । जिस प्रकार मोबाइल फोन को फुल चार्ज करने में करीब एक घंटा लगता है, वैसे ही आत्मा में समता को चार्ज करने में 48 मिनिट आवश्यक बतलाए हैं । इस साधना से मन इतना पुष्ट हो जाता है कि चौबीसों घंटे आत्मा, जिंदगी के हर मोड़ पर प्रफुल्लित रह सकती है ।

हर उतार-चढ़ाव के बीच सामायिक बेलेंस बना देती है । जैसे-इम्पोर्टेड कारों में दो पहियों को जोड़ने वाले एक्सल के साथ ही ऐसी स्प्रिंग लगी रहती है, जो सड़क के खड़ों से लगने वाले झटकों से कार में बैठने वाले लोगों को बचा लेती है । इसी प्रकार सामायिक भी साधक को दुःख के झटकों से बचा लेती है । सामायिक एक ऐसी सेंट है, जो चौबीस घंटे व्यक्ति को तर रखती है,

बल्कि सेंट लगाए व्यक्ति के पास अगर दूसरा व्यक्ति भी आता है तो वह उसको भी सुवासित कर देती है। यही हाल सामायिक साधक का भी है। उसके जीवन में इतना परिवर्तन आ जाता है कि उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति के जीवन में भी बदलाव आने लगता है। जिस प्रकार व्यक्ति स्नान करके अपने आपको तरोताजा महसूस करता है, वैसे ही सामायिक साधना भीतरी स्नान है, जो व्यक्ति को अंदर से रिलेक्स करती है।

सामायिक करने का एक लाभ यह भी है कि गृहस्थ संसार के विविध प्रपंचों में विषय-कषाय और निद्रा-विकथा आदि में निरन्तर पाप संचय करता रहता है। अतः सामायिक के द्वारा दो घड़ी भर उनसे बचकर आत्मशान्ति का अनुभव कर सकता है। सामायिक-साधना से आत्मा मध्यस्थ होती है। कहा भी है-

जीवो पमायबहुलो, बहुसो उ विय बहुविहेसु अत्थेसु ।  
एण कारणेण, बहुसो सामाइयं कु ज्जा ॥

जो लोग सोचते हैं कि मन शान्त हो और राग-द्वेष मिटें तभी सामायिक करनी चाहिये, उनको सूत्रकार के वचनों पर गहराई से विचार करना चाहिये। आचार्य बार-बार सामायिक करने का संकेत इसलिये करते हैं कि मनुष्य प्रमाद में निजगुण को भूले नहीं। सामायिक की साधना परमार्थ की ओर बढ़ाने वाली होनी चाहिये, इसलिये आचार्यों ने कहा है-

जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे नियमे तवे ।  
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ॥

अर्थात् जिसकी आत्मा मूलगुण रूप संयम, उत्तर गुण रूप नियम और तपस्या में समाहित है, वैसे अप्रमादी साधक को पूर्ण सामायिक प्राप्त होती है। गृहस्थ दान, शील, सेवा, पूजा, उपकार आदि करते हुए भी यदि सामायिक द्वारा आत्म-संयम प्राप्त नहीं करता है तो सावद्य से नहीं बच पाता, अतः कहा गया है कि-

सावज्ज-जोग-परिवज्जणट्टा, सामाइङं केवलियं पसत्थं ।  
गिहत्थधम्मा परमंति नच्चा, कुञ्जा बुहो आयहियं परत्थं ॥

अर्थात् सावद्य योग से बचने के लिए सामायिक पूर्ण और प्रशस्त कार्य है। इससे आत्मा पवित्र होती है। गृहस्थ धर्म से इसकी साधना ऊँची है, श्रेष्ठ है, ऐसा समझकर बुद्धिमान साधक को आत्महित और परलोक सुधार के लिए सामायिक की साधना करना आवश्यक है।

जीवन में अनेक प्रकार की टक्करें लगती रहती हैं, उनसे पूरी तरह बचना सम्भव नहीं है, किन्तु टक्करें लगने पर भी उनसे आहत न होने का उपाय सामायिक है। आप जानते हैं कि मनुष्य जब रंज की हालत में होता है तो अपने आपको संसार में सबसे अधिक दुःखी मानने लगता है और आदरणीय का आदर करना एवं वन्दनीय को वन्दन करना भूल जाता है। इस प्रकार विषमता की स्थिति में पड़कर वह दोलायमान होता रहता है और अपने कर्तव्य का पालन ठीक तरह नहीं कर पाता है। इससे बचने के लिए और सन्तुलित मानसिक स्थिति बनाये रखने के लिए सामायिक साधना ही उपयोगी होती है।

शम की स्थिति प्राप्त करने के लिए सामायिक साधना करनी चाहिये। काम, क्रोध, मोह, माया आदि के कुसंस्कार इतने गहरे होते हैं कि उनकी जड़ें उखाड़ने का दीर्घकाल तक प्रयास करने पर भी वे कभी-कभी उभर आते हैं। अध्यात्म-साधना में निरत एकाग्र साधक भी कभी-कभी उनके प्रभाव में आ जाता है। कभी कोई निमित्त पाकर तृष्णा या काम की आग भड़क उठती है। यह आग अनादिकाल से जीव को सन्तप्त किये हुए है। इसे शान्त करने का उपाय भी सामायिक है।

◆◆◆

## सामायिक का अर्थ एवं रूपरूप

आज चारों ओर विषमता का वातावरण है। यह विषमता जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त है अतः व्यक्ति दुःखी है, संतप्त है। दुःख का कारण आर्थिक विषमता नहीं है। आर्थिक विषमता को तो एक सीमा तक उत्पादन के साधनों का विकास कर, रोजगार की सुविधाएँ जुटाकर, दूर किया जा सकता है। पर सबको भौतिक समृद्धि प्रदान करके भी दुःख मिटाया नहीं जा सकता, क्योंकि दुःख का वास्तविक कारण आर्थिक विषमता नहीं, मानसिक विषमता है। यह मानसिक विषमता सामायिक की साधना द्वारा समता भाव लाकर मिटाई जा सकती है।

### ‘सामायिक’ शब्द का अर्थ

प्राकृत के ‘सामाइय’ पद के संस्कृत में अनेक रूप होते हैं। ‘समाय’, ‘शमाय’ और ‘सामाय’ तथा ‘सम्+आय’ से भी सामायिक रूप बनता है। फिर ‘समये भव’ अथवा ‘समये अयनं समायः’ इस व्युत्पत्ति से भी ‘सामायिक’ शब्द बनता है। सामायिक के निम्नलिखित अर्थ हो सकते हैं –

1. सम यानी राग-द्वेष रहित मनःस्थिति और आय का अर्थ लाभ अर्थात् समभाव का जिससे लाभ हो, वह क्रिया सामायिक है।
2. ‘शम’ से शमाय बनता है। शम का अर्थ है कषायों का उपशम, जिससे क्रोधादि कषायों का उपशम हो, वह सामायिक है।
3. ‘समे अयनं समायः’ समभाव में पहुँचने या जाने को भी सामायिक कहते हैं।

4. ‘सामे अयनं सामस्य वा आयः सामायः’ अर्थात् मैत्री भाव में जाना या मैत्री भाव मिलाने का कार्य सामायिक है।
5. सम को सम्यक् अर्थ में मानकर भी समाय बनाया जाता है। इसका अर्थ है— सम्यक् ज्ञानादि रत्नत्रय की आय का साधन सामायिक है।
6. ‘समये भवं’ अथवा ‘समये अयनं’ इस व्युत्पत्ति से ‘सामायिक’ रूप होता है। यहाँ समय का अर्थ सम्यग् आचार या आत्म स्वरूप है। मर्यादानुसार चलना अथवा आत्म-स्वभाव में आना भी सामायिक है।
7. समय शब्द का दूसरा अर्थ है—आत्मा। जिससे आत्मधर्म की प्राप्ति हो, आत्मा के साथ एकीकरण हो, उसे सामायिक कहते हैं।
8. सम अर्थात् जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, संयोग-वियोग, इष्ट-अनिष्ट, सुख-दुःख, शत्रु-मित्र आदि में रागद्वेष रहित होना सम कहलाता है। इसी रूप को सामायिक कहते हैं।
9. समय अर्थात् शास्त्र, द्वादशांग रूप शास्त्र की प्राप्ति, उसकी श्रद्धा तथा भावना रूप परिणति को सामायिक कहते हैं।
10. भगवती सूत्र शतक 1 उद्देशक 9 में भगवान फरमाते हैं कि ‘आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ है।’ जिस प्रकार आत्मा शाश्वत स्वभाव है। उसी प्रकार आत्मा में सामायिक भी शाश्वत स्वभाव है। सामायिक प्रथमतः क्रियानुष्ठान है और अन्ततः अयोगानुष्ठान है। अर्थात् साधक की साधना भी सामायिक और साध्य भी सामायिक ही है।
11. अनुयोगद्वार सूत्र एवं आचार्य भद्रबाहु कृत ‘आवश्यक निर्युक्ति’ में कहा है—

“‘जो समो सब्बभूएसु तसेसु थावरेसु य ।  
तस्स सामाइयं होइ इइ केवलि भासियं ॥’”

अर्थात् त्रस एवं स्थावर जीव मात्र पर समभाव रखने वाले को ही सामायिक होना केवली द्वारा प्ररूपित है।

12. आचार्य हेमचन्द्र योगशास्त्र में कहते हैं कि अशुभ ध्यान और पापमय कार्यों का परित्याग करके आत्मचिंतन, समत्व चिंतन एवं स्वाध्याय आदि में लीन होना सामायिक है।
13. आचार्य हरिभद्र के अनुसार-

‘समभावो सामाइयं, तण-कंचण-सञ्चुमित्त-विउसत्ति।  
णिरमिसंगं चित्तं, उचिय-पवित्तिप्पहाणं च ॥’

अर्थात् समभाव ही सामायिक है। चाहे तृण हो या कंचन, शत्रु हो या मित्र, सर्वत्र मन को राग-द्वेष एवं आसक्ति रहित रखकर उचित धार्मिक प्रवृत्ति करना ही समभाव की प्राप्ति रूप सामायिक है।

14. तत्त्वार्थ सूत्र के टीकाकार पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि और अकलंकदेव ने तत्त्वार्थवार्तिक में ‘समय’ का अर्थ ‘एकत्व रूप से गमन’ किया है, अर्थात् मन, वचन, काया की क्रियाओं से निवृत्त होकर आत्म धर्म में लीन होना सामायिक है।
15. जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यक भाष्य में सामायिक की अनेक परिभाषाएँ प्रतिपादित की हैं—सामायिक में ‘सम’ अर्थात् राग-द्वेष से रहित अवस्था। ‘अय’ अर्थात्—अयन, गमन। जिस अनुष्ठान

से राग-द्वेष रहित अवस्था की आय (प्राप्ति) हो वह समाय कहलाता है। वह समाय ही वस्तुतः सामायिक है।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र को सम कहा जाता है। उन ज्ञान आदि की होने वाली प्राप्ति समाय है। वह समाय ही सामायिक है।

जिस अनुष्ठान से सम अर्थात् ज्ञान, दर्शन आदि गुणों का लाभ हो, वही सामायिक के रूप में ज्ञेय है।

साम का अर्थ है—प्राणिमात्र के प्रति मैत्री का भाव। मैत्री के द्वारा होने वाली प्राप्ति समाय (सामायिक) है।

16. चूर्णिकार जिनदासगणि कहते हैं—  
जैसे आकाश सब द्रव्यों का आधार है, वैसे ही सामायिक सब गुणों की आधार भूमि है। समभाव विशिष्ट लब्धियों का हेतुभूत है तथा सब पापों पर अंकुश लगाने वाला है।
17. आचार्य वट्टकेर के अनुसार—  
सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान, संयम और तप के साथ जो प्रशस्त समागम है, वह समय है, उसे ही सामायिक जानना चाहिए।
18. भावसंग्रह में त्रिकाल देव स्तवन को सामायिक कहा है।
19. सागार धर्मामृत में पं. आशाधरजी ने मन, वचन, काया को एकाग्र करके साम्य भाव की शुद्धि को सामायिक कहा है।
20. सोमदेव सूरि ने उपासकाध्ययन में ‘समय’ का अर्थ आप्त सेवा का उपदेश किया है और उसमें जो क्रिया की जाती है उसे ‘सामायिक’ माना है।

21. पंडित बेचरदास दोशी ने कहा-

स्वरक्षण-वृत्ति को सर्वरक्षण-वृत्ति में बदल देना ही सामायिक है।  
प्राणि-मात्र को आत्मवत् समझते हुए सब व्यवहार चलाने का ही  
नाम सामायिक है।

22. महापुरुषों की अवस्था सामायिक के साधकों की अवस्था है। महात्मा  
बुद्ध ने धर्मपद में समस्त प्रकार के सावद्यों (पापों) से दूर होने को  
सामायिक कहा है।

उक्त परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि वस्तुतः समता का अर्थ है-मन  
की स्थिरता, राग-द्वेष का शमन और सुख-दुःख में निश्चलता। विषम भावों  
से स्वयं को हटाकर स्व-स्वरूप में रमण करना समता (सामायिक) है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामायिक के अनेकानेक अर्थों में आत्म-  
शुद्धि या उसके साधनों की ही प्रधानता है। आत्मशुद्धि से ही आत्म-शांति  
संभव है।

**सामायिक का दूसरा नाम-**

सामायिक का दूसरा नाम ‘सावद्ययोग विरति’ है। राग-द्वेष रहित दशा  
में साधक हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि सम्पूर्ण पापों का त्याग  
करता है। उसकी प्रतिज्ञा होती है- ‘सावज्जं जोगं पच्चक्खामि’ अर्थात्  
सावद्य योग का त्याग करता हूँ। अतः स्पष्ट है कि सामायिक का मुख्य  
आधार समता है और वास्तव में समता का आशय कर्म निमित्त से होने वाले  
सावद्य राग-द्वेषादि विषम भावों की ओर से अपने को हटाकर स्वरूप में रमण  
करना ही है।

### **सामायिक की काल मर्यादा-**

सामायिक स्वीकार करने का पाठ ‘करेमि भंते’ है। उसमें केवल ‘जाव नियम’ पाठ है, अर्थात् जब तक नियम है; तब तक सामायिक है। यहाँ काल के संबंध में कोई निश्चित धारणा नहीं बताई गई है। परंतु सर्वसाधारण जनता को नियमबद्ध करने के लिए प्राचीन आचार्यों ने दो घड़ी (48 मिनिट) की मर्यादा में बाँध दिया है। यदि मर्यादा न बँधी जाती, तो बहुत अव्यवस्था हो जाती। कोई दो घड़ी सामायिक करता, तो कोई घड़ी भर ही।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी काल-मर्यादा आवश्यक है। धार्मिक क्या, किसी भी प्रकार की इयूटी, यदि निश्चित समय के साथ न बँधी हो तो मनुष्य में शैथिल्य आ जाता है, कर्तव्य के प्रति उपेक्षा का भाव होने लगता है।

मूल आगम-साहित्य में प्रत्येक धार्मिक क्रिया के लिए काल मर्यादा का विधान है। मुनिचर्या के लिए यावज्जीवन, पौष्टिक्रत के लिए दिन-रात और व्रत आदि के लिए चतुर्थ भक्त आदि का उल्लेख है। सामायिक का न्यूनतम कालमान एक मुहूर्त रखा गया है।

मुहूर्त-भर (48 मिनिट) का काल ही क्यों निश्चित किया गया है? इसके उत्तर के लिए हमें आगमों की शरण में जाना पड़ेगा। यह आगमिक नियम है कि साधारण साधक का एक विचार, एक संकल्प, एक भाव, एक ध्यान अधिक-से-अधिक अन्तर्मुहूर्त भर भी चालू रह सकता है। अन्तर्मुहूर्त के बाद अवश्य ही विचारों में परिवर्तन आ जाता है इस संबंध में भद्रबाहु स्वामी ने कहा- “अंतोमुहृत्कालं चित्तस्पेगग्या हवइ ज्ञाणं” चित्त की एकाग्रता रूप ध्यान अन्तर्मुहूर्त तक चालू रह सकता है, अतः सामायिक का काल एक मुहूर्त निर्धारित किया गया है। मुहूर्त में से एक समय एवं एक क्षण भी कम हो, तो अन्तर्मुहूर्त माना जाता है।

### **सामायिक कब करें ?-**

वैसे तो परिपक्व दशा में पहुँचा हुआ उत्कृष्ट साधक काल से बद्ध नहीं होता, उसके लिए हर समय ही साधना का काल है। इसीलिए साधु के लिए यावज्जीवन की सामायिक बतलाई है। साधु का हर क्षण सामायिक स्वरूप होता है। अतः यहाँ उत्कृष्ट साधक का प्रश्न नहीं, प्रश्न है—साधारण साधक का। उसके लिए नियमितता आवश्यक है। समय की नियमितता का मन पर बड़ा चमत्कारी प्रभाव होता है। रोगी को भी औषधि समय पर दी जाती है।

सामायिक के लिए प्रातःकाल और सायंकाल का समय बहुत ही सुंदर है। प्रकृति के लीला-क्षेत्र संसार में वस्तुतः इधर सूर्योदय का और उधर सूर्यास्त का समय, बड़ा ही सुरम्य एवं मनोहर होता है।

प्रभात का समय तो ध्यान, चिंतन आदि के लिए बहुत सुंदर माना गया है। सुनहरा प्रभात, एकांत, शांति और प्रसन्नता आदि की दृष्टि से वस्तुतः प्रकृति का श्रेष्ठ रूप है। इस समय हिंसा और क्रूरता नहीं होती, दूसरे मनुष्यों के साथ सम्पर्क न होने के कारण असत्य एवं कटु भाषण का भी अवसर नहीं आता, सायंकाल का समय भी दूसरे समयों की अपेक्षा शांत माना गया है।

### **सामायिक के उपकरण-**

सामायिक के वेश व उपकरण में निम्नलिखित सम्मिलित हैं—(1) श्वेत, अल्पारम्भी खादी की धोती या चोलपट्टा। साधु के चोलपट्टे से श्रावक का चोलपट्टा कुछ नीचा होना चाहिये। ताकि अलग और बैठने में सुविधा पूर्ण हो। (2) श्वेत, अल्पारम्भी खादी की दुपट्टी। (3) श्वेत, अल्पारम्भी खादी की मुख-वस्त्रिका। (4) शुद्ध श्वेत सूती या ऊनी आसन। (5) पूँजनी। (6) माला। (7) पुस्तके (धार्मिक)। श्राविकाओं के लिए वस्त्र सादे हों तथा अन्य उपकरण समान हैं।

## **सामायिक प्रारम्भ कैसे ?**

संत-सती विराज रहे हों तो उनकी तरफ मुख करके सामायिक की विधि प्रारम्भ की जाये । यदि कोई भी न हो तो पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके विधि प्रारम्भ करना चाहिये ।

पूर्व दिशा प्रगति की घोतक है तो उत्तर दिशा ज्ञान में स्थिरता, दृढ़ता की प्रतीक है । जैन दृष्टिसे पूर्व-उत्तर के मध्य ईशान कोण में स्थित महाविदेह क्षेत्रमें तीर्थঙ्करों का विचरण चलता रहता है । वह क्षेत्र कभी-भी तीर्थঙ्करों से रिक्त नहीं होता है । ऐसी स्थिति में उधर तीर्थঙ्करों के पवित्रतम तन-मन-वचन से आने वाली ऊर्जा का आकर्षण साधक की आत्मा को पवित्र बनाता है ।

अतः सामायिक में मुख उत्तर या पूर्व की ओर अथवा ईशान कोण में अपेक्षित है । जैन शास्त्रों में दीक्षा, प्रवचन, अध्ययन-अध्यापन आदि कार्यों में भी पूर्व-उत्तर दिशा को प्राथमिकता दी गई है । अतः सामायिक करते वक्त इनमें से किसी एक दिशा की ओर मुख करके बैठना चाहिए ।

## **सामायिक में आसन कैसा ?**

यहाँ आसन से अभिप्राय बैठने के ढंग से है । कुछ लोगों का बैठना बड़ा ही अव्यवस्थित होता है । वे जरा-सी देर भी स्थिर होकर नहीं बैठ सकते । अस्थिर आसन मन की दुर्बलता और चंचलता का घोतक है ।

दृढ़ आसन का मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है । पीठ के मेरुदण्ड को भी तना हुआ रखना आवश्यक है । आसनों के संबंध में विशेष जानकारी के लिए प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन करना अधिक अच्छा होगा । यहाँ तो केवल दो-तीन सुप्रसिद्ध आसनों का उल्लेख ही पर्याप्त रहेगा ।

**पद्मासन-बायीं जाँघ पर दाहिना पैर और दाहिनी जाँघ पर बायाँ पैर**

रखना, फिर दोनों हाथों को लम्बा करके दोनों घुटनों पर ज्ञानमुद्रा आदि के रूप में रखना अथवा दोनों हाथों की हथेलियों को नाभि के नीचे ध्यान मुद्रा में रखना, पद्मासन है।

**पर्यक्तासन**—दाहिना पैर बायीं जाँघ के नीचे और बायाँ पैर दाहिनी जाँघ के नीचे दबाकर बैठना, पर्यक्तासन है। पर्यक्तासन का दूसरा नाम सुखासन भी है। सर्वसाधारण इसे आलथी-पालथी भी कहते हैं।

णमोत्थुणं का आसन, वज्रासन आदि भी उपयुक्त आसन हैं।

### सामायिक में क्या करना ?

सामायिक में प्रमुख रूप से स्वाध्याय करना चाहिए। क्योंकि स्वाध्याय करने में मन-वचन-काया त्रियोग की एकाग्रता अधिक सधती है और शुद्ध सामायिक की ओर साधक अग्रसर होता है। इसी प्रकार ध्यान और आत्म-चिंतन भी विशेष रूप से करणीय हैं। प्रार्थना, स्तुति, जाप, माला फेरना, आनुपूर्वी जपना आदि भी किये जा सकते हैं। सामायिक में प्रवचन सुनना, प्रतिक्रमण करना आदि कार्य भी उपादेय हैं।

### सामायिक एक शिक्षा व्रत-

सामायिक शिक्षा-व्रत है। आचार्य श्री हरिभद्र ने कहा है—

‘साधुधर्माभ्यासः शिक्षा’

अर्थात् जिससे श्रेष्ठ धर्म का योग्य अभ्यास हो, वह शिक्षा कहलाती है। उक्त कथन से सिद्ध हो जाता है कि सामायिक व्रत एक बार में पूर्णतया अपनाया नहीं जा सकता। सामायिक की पूर्णता के लिए प्रतिदिन का अभ्यास आवश्यक है। अभ्यास की शक्ति महान् है। बालक प्रारम्भ में ही वर्णमाला

के अक्षरों पर अधिकार नहीं कर सकता। वह पहले टेढ़े-मेढ़े, मोटे-पतले अक्षर बनाता है। सौन्दर्य की दृष्टि से सर्वथा हताश हो जाता है। परन्तु, ज्यों ही वह आगे बढ़ता है, अभ्यास में प्रगति करता है, तो बहुत सुन्दर लेखक बन जाता है। यह ठीक है कि सामायिक की साधना बड़ी कठिन साधना है; सहज ही यह सफल नहीं हो सकती।

### सामायिक प्रथम आवश्यक है-

धार्मिक क्रियाओं में संत-सती एवं श्रावक-श्राविकाओं के लिए अवश्य करने योग्य छह आवश्यक बताये गये हैं। आत्म-विशुद्धि हेतु प्रतिदिन छह आवश्यकों को करना साधक का धार्मिक अनुष्ठान है। ये छह आवश्यक इस प्रकार हैं—(1) सामायिक (2) चतुर्विंशतिस्तव (3) वंदना (4) प्रतिक्रमण (5) कायोत्सर्ग (6) प्रत्याख्यान। इनमें सामायिक प्रथम आवश्यक है। इन आवश्यकों का पूर्ण रूप से आचरण प्रतिक्रमण करते समय किया जाता है। प्रतिक्रमण में आलोचना प्रारंभ करने के पूर्व आत्मा में समभाव की प्राप्ति होना आवश्यक है, अतः सावद्य योग के त्याग रूप पहला सामायिक आवश्यक बताया गया है।

### सामायिक प्रथम चारित्र है-

आत्मा का विभाव से स्वभाव की ओर गति करना ‘चारित्र’ है। जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जा सके उसे ‘चारित्र’ कहते हैं। सभी पाप वृत्तियों के त्याग को भी ‘चारित्र’ कहते हैं। तात्पर्य यह है कि पाप व सावद्य प्रवृत्ति का त्याग कर मोक्ष हेतु संयम में जो शुभ या शुद्ध प्रवृत्ति की जाती है, उसी का नाम चारित्र है। चारित्र के पाँच भेद हैं—1. सामायिक चारित्र, 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र, 3. परिहारविशुद्धि चारित्र, 4. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र

और 5. यथाख्यात चारित्र। उक्त पाँच चारित्रों में प्रथम चारित्र सामायिक चारित्र है जो कि शेष चारों चारित्रों को उत्पन्न करने वाला है। समभाव में स्थिर होना सामायिक है। सर्व-सावद्य व्यापार का त्याग करना एवं निरवद्य व्यापार का सेवन करना ‘सामायिक चारित्र’ है। संयम ग्रहण करने पर साधक को सर्वप्रथम सामायिक चारित्र ही ग्रहण कराया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामायिक के गंभीर अर्थ को हृदयंगम कर तथा उसके व्यापक स्वरूप को समझ करके उसे जीवन में धारण कर आत्म शुद्धि के मार्ग पर अग्रसर हुआ जा सकता है।



## सामायिक में शुद्धि का महत्व

सामायिक करने के लिए सबसे पहले भूमिका की शुद्धि होना आवश्यक है। यदि भूमि शुद्ध होती है, तो उसमें बोया हुआ बीज भी फलदायक होता है। इसके विपरीत, यदि भूमि शुद्ध नहीं है, तो उसमें बोया हुआ बीज भी सुन्दर और सुस्वादु फल कैसे दे सकता है? अस्तु, सामायिक के लिए भूमिका-स्वरूप चार प्रकार की शुद्धि आवश्यक है—द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि और भाव शुद्धि। उक्त चार शुद्धियों के साथ की हुई सामायिक ही पूर्ण फलदायिनी होती है, अन्यथा नहीं। संक्षेप में चारों तरह की शुद्धि का रूप इस प्रकार है—

**1. द्रव्य शुद्धि**—सामायिक के लिए जो भी आसन, वस्त्र, रजोहरण या पूँजनी, माला, मुख-वस्त्रिका, पुस्तक आदि द्रव्य—साधन आवश्यक हैं, उनका सादा, अल्पारम्भ एवं उपयोगी होना आवश्यक है। रजोहरण आदि उपकरण, जीवों की यतना के उद्देश्य से ही रखे जाते हैं, इसलिए उपकरण ऐसे होने चाहिए, जिनके उत्पादन में अधिक हिंसा न हुई हो, जो सौन्दर्य की बुद्धि से न रखे गये हों, जो संयम की अभिवृद्धि में सहायक हों, जिनके द्वारा जीवों की भली-भाँति यतना हो सकती हो।

सामायिक में कोमल रोम वाले गुदगुदे तथा रंग-बिरंगे, फूलदार आसन नहीं रखने चाहिये। क्योंकि इस प्रकार के आसनों की भली-भाँति प्रतिलेखना नहीं हो सकती। अतः आसन स्वच्छ हो, श्वेत हो, सादा हो, जहाँ तक हो सके खादी का हो।

रजोहरण या पूँजनी भी योग्य होनी चाहिए, जिससे भली-भाँति जीवों की रक्षा की जा सके। मात्र शोभा-शृङ्गार के काम की चीज न हो। रेशम आदि की पूँजनी रखने से साधक उलटा और ममता के पाश में बंध सकता है। वह पूँजनी को सदा अधर-अधर रखता है, मलिनता के भय से उसे पूरा उपयोग में नहीं लाता।

मुखवस्त्रिका स्वच्छ, सादा व प्रमाणोपेत हो। कुछ सज्जन मुखवस्त्रिका मलिन एवं बिना माप रखते हैं, जो उपयुक्त नहीं है। धर्म तो विवेक में है, उपकरणों का ठीक ढंग से उपयोग करने में है, उसे गन्दा या बीभत्स रखने में नहीं। साथ ही मुख वस्त्रिका पर गोटा, मोती आदि की सजावट भी न हो। अतः मुखवस्त्रिका का सादा और स्वच्छ होना आवश्यक है। वस्त्र सादा, स्वच्छ हों एवं तड़कीले-भड़कीले न हों।

माला भी कीमती न होकर सूत की या और कोई साधारण श्रेणी की हो। बहुमूल्य मोती आदि की माला ममता बढ़ाने वाली होती है।

अध्यात्म को पुष्ट करने वाली पुस्तकें हों, जो भाव और भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हों। किसी प्रकार का विकार एवं साम्प्रदायिक विद्वेष पैदा करने वाली पुस्तकें न हों।

सामायिक में आभूषण आदि धारण करना भी उचित नहीं है। जो गहने उतारे जा सकते हों, उन्हें अलग करके ही सामायिक करना ठीक है। अन्यथा ममता का पाश सदा लगा ही रहेगा, हृदय शान्त नहीं हो सकेगा।

यद्यपि सामायिक में ‘सावज्जं जोगं पच्चक्खामि’ सावद्य अर्थात् पाप-व्यापारों का परित्याग करता हूँ। ऐसी प्रतिज्ञा है, उक्त नियम से पाप कार्यों के त्याग का ही उल्लेख है, वस्त्र आदि के त्याग का नहीं। परन्तु हमारी प्राचीन परम्परा इसी प्रकार की है कि अनुपयुक्त अलंकार तथा गृहस्थ वेश पगड़ी, कुर्ता, बनियान आदि वस्त्रों का त्याग करना ही चाहिए, ताकि संसारी-दशा से

साधना-दशा की पृथक्कता मालूम हो, और मनोविज्ञान की दृष्टि से धर्म-क्रिया का वातावरण अपने आपको भी अनुभव हो तथा दूसरों की दृष्टि से भी सामायिक की महत्ता प्रतिभासित हो।

द्रव्य-शुद्धि पर अधिक बल देने का भाव यह है कि अच्छे-बुरे पुद्गलों का मन पर असर होता है। बाहर का वातावरण अन्दर के वातावरण को भी कहीं न कहीं प्रभावित करता है। अतः मन में अच्छे विचार एवं सात्त्विक भाव स्फुरित करने के लिए ऊपर की द्रव्य-शुद्धि साधारण साधक के लिए आवश्यक है। हालाँकि निश्चय की दृष्टि से यह ऊपर का परिवर्तन कोई आवश्यक नहीं। निश्चय दृष्टि का साधक हर कहीं और हर किसी रूप में अपनी साधना कर सकता है। जब तक साधक पर बाहर के वातावरण का कुछ भी असर पड़ता है, तब तक वह जैसे चाहे वैसे ही अपनी साधना चालू नहीं रख सकता। उसे शास्त्रीय विधि-विधानों के पथ पर चलना आवश्यक है।

**2. क्षेत्र-शुद्धि-द्रव्य** की तरह क्षेत्र शुद्धि भी आवश्यक है। यदि आप चाहते हैं समता, और बैठते हैं विषमता में तो समता कैसे आयेगी? जहाँ बारूद के ढेर हों, वहाँ कोई रसोई करने की जगह माँगे तो क्या होगा? वहाँ तो बीड़ी तक पीने की मनाही होती है। यदि उस निषिद्ध क्षेत्र में कोई पकड़ा जाता है तो वह दण्ड का भागी होता है। जैसे कर्माई के लिए दुकान है, पढ़ने के लिए स्कूल है, न्याय के लिए कोर्ट है, उसी प्रकार सामायिक के लिए भी नियत स्थान होना आवश्यक है। कई बार सर्दी के कारण लोग स्थानक में आकर सामायिक नहीं करते। वे पलंग के पास या रसोई घर में बैठकर सामायिक करते हैं तो समता कैसे आयेगी? क्या आप लोग सर्दी में अस्पताल नहीं जाते? दुकान नहीं जाते? स्कूल नहीं जाते? स्थानक जाने में आलस्य क्यों? आप यह जान लें कि विषमता के क्षेत्र में रहकर समता की साधना नहीं की जा सकती। जिन स्थानों पर बैठने से विचार-धारा टूटती हो, चित्त में चंचलता आती हो, अधिक स्त्री-पुरुष या पशु आदि का आवागमन अथवा निवास हो,

ऐसे स्थानों पर बैठकर सामायिक करना ठीक नहीं है। अतः सामायिक करने के लिए वही स्थान उपयुक्त हो सकता है, जहाँ चित्त स्थिर रह सके, आत्मचिन्तन किया जा सके, और गुरुजनों के संसर्ग से यथोचित ज्ञानवृद्धि भी हो सके।

जहाँ तक हो सके, घर की अपेक्षा उपाश्रय में सामायिक करने का खास ध्यान रखना चाहिए। एक तो उपाश्रय का वातावरण गृहस्थी की झंझटों से बिल्कुल अलग होता है। दूसरे, सहधर्मी भाइयों के परिचय से अपनी जैन-संस्कृति की महत्ता का ज्ञान भी होता है। उपाश्रय, ज्ञान के आदान-प्रदान का सुन्दर साधन है। उपाश्रय का शाब्दिक अर्थ भी सामायिक के लिए अधिक उपयुक्त है। एक व्युत्पत्ति भी है, उप = उत्कृष्ट। आश्रय = स्थान। अर्थात् मनुष्यों के लिए अपने घर आदि स्थान केवल आश्रय हैं, जबकि उपाश्रय इहलोक तथा परलोक दोनों प्रकार के जीवन को उन्नत बनाने वाला होने से एवं धर्म-साधना के लिए बिल्कुल उपयुक्त स्थान होने से उत्कृष्ट आश्रय है। दूसरी व्युत्पत्ति है ‘उप = उपलक्षण से। आश्रय = स्थान।’ अर्थात् निश्चय दृष्टि से आत्मा के लिए वास्तविक आश्रय-आधार वह स्वयं ही है, और कोई नहीं। परन्तु, उक्त आत्म-स्वरूप आश्रय की प्राप्ति, व्यावहारिक दृष्टि से धर्म-स्थान में ही घटित हो सकती है, अतः धर्म स्थान उपाश्रय कहलाता है। तीसरी व्युत्पत्ति है – ‘उप = समीप में। आश्रय = स्थान।’ अर्थात् जहाँ आत्मा अपने विशुद्ध भावों के पास पहुँच कर आश्रय ले, वह स्थान। भाव यह है कि स्थानक में बाहर की सांसारिक गड़बड़ कम होती है। मात्र धार्मिक वातावरण की महिमा ही सम्मुख रहती है, अतः सर्वथा एकान्त, निरामय, निरुपद्रव एवं कायिक, वाचिक, मानसिक क्षोभ से रहित उपाश्रय सामायिक के लिए उपयुक्त माना गया है। यदि घर में भी ऐसा कोई एकान्त स्थान हो, तो वहाँ पर भी सामायिक की जा सकती है। शास्त्रकार का अभिप्राय शान्त और एकान्त स्थान से है। फिर घर की अपेक्षा उपाश्रय में सामायिक करने में अधिक उत्तम वातावरण प्राप्त होता है।

**3. काल शुद्धि**-काल का अर्थ समय है, अतः योग्य समय का विचार रखकर जो सामायिक की जाती है, वही सामायिक निर्विघ्न तथा शुद्ध होती है। सामायिक साधक के लिए काल का भी अपना विशेष महत्व है। जिस प्रकार भोजन करने का, दवा लेने का, शरीर की आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त होने का निश्चित समय होता है, उसी प्रकार सामायिक के लिए भी निश्चित समय निर्धारित होना चाहिये। नियमित रूप से नियत समय पर की जाने वाली सामायिक का विशेष लाभ होता है।

### ‘काले कालं समायरे’-दशवैकालिक

जिस कार्य का जो समय हो, उस समय वही कार्य करना चाहिए। यह कहाँ का धर्म है कि घर में बीमार कराहता रहे, और आप उधर सामायिक में स्तोत्रों की झड़ियाँ लगाते रहो। भगवान महावीर ने तो साधुओं के प्रति भी यहाँ तक कहा है कि ‘यदि कोई समर्थ साधु, बीमार साधु को छोड़कर अन्य किसी कार्य में लग जाय, बीमार की सार-सम्भाल न करे, तो उसको गुरु चौमासी का प्रयाश्चित्त आता है।

जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा णच्चा न गवेसई, न गवेसंतं वा साइज्जइ……  
आवज्जइ चउम्मासीयं परिहारठाणं अणुग्धाइयं।” -निशीथ 10/37

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जब साधु के लिए भी यह कठोर अनुशासन है, तो फिर गृहस्थ के लिए तो कहना ही क्या। उसके ऊपर तो गृहस्थी का, परिवार की सेवा का इतना विशाल उत्तरदायित्व है कि वह उससे किसी भी दशा में मुक्त नहीं हो सकता।

अतः काल-शुद्धि के सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि बीमार को छोड़कर सामायिक करना ठीक नहीं है। हाँ, यदि सामायिक का नियम हो, तो रोगी के लिए दूसरी व्यवस्था करके अवश्य ही नियम का पालन करना चाहिए।

**4. भाव शुद्धि**-भाव शुद्धि से अभिप्राय है, मन की शुद्धि। मन की शुद्धि का अर्थ है उसकी एकाग्रता। जब तक मन की एकाग्रता न हो, चंचलता न रुके, तब तक दूसरा बाह्य विधि-विधान जीवन में उत्क्रान्ति नहीं ला सकता। जीवन उन्नत तभी होता है, जब साधक मन की एकाग्रता भंग करने वाले, अन्तरात्मा में मलिनता पैदा करने वाले दोषों को त्याग दे। मन, वचन और शरीर की शुद्धि का प्रकार यों है-

**(1) मनः शुद्धि**-मन की गति बड़ी विचित्र है। एक प्रकार से जीवन का सारा भार ही मन के ऊपर पड़ा हुआ है। मन का काम विचार करना है, विचारों को रोकना मुश्किल है। इसलिए मन रूपी अश्व को सद्कर्मों में लगाना उचित है। यह ही मनःशुद्धि है। मन को स्वाध्याय, बारह भावना, चिंतन, प्रार्थना, स्तोत्र, जाप, ध्यान आदि सद् कार्य में एकाग्र किया जा सकता है।

**(2) वचन शुद्धि**-वचन शुद्धि हेतु वचन पर नियन्त्रण आवश्यक है सामायिक करते समय वचन सम्बन्धी दोष नहीं लगने चाहिए। सामायिक में कर्कश, कठोर और दूसरे के कार्य में विघ्न डालने वाले वचन न बोलें। किसी की चापलूसी करना, दीन वचन बोलना, विपरीत या अतिशयोक्ति से बोलना भी ठीक नहीं। सत्य भी ऐसा नहीं बोलना, जो दूसरे का अपमान करने वाला हो, क्लेश बढ़ाने वाला हो।

वचन अन्तरंग दुनियाँ का प्रतिबिम्ब है। अतः मनुष्य को हर समय, विशेषकर सामायिक के समय, बड़ी सावधानी से वाणी का प्रयोग करना चाहिए। पहले हिताहित परिणाम का विचार करो और फिर बोलो-इस सुनहरे सिद्धान्त को भूलना, अपनी मनुष्यता को भूलना है।

**(3) काय शुद्धि**-काय शुद्धि का यह अर्थ नहीं कि शरीर को साफ-सुथरा, सजाधजा कर रखना चाहिए। यह ठीक है कि शरीर को गन्दा न रखा

जाय, स्वच्छ रखा जाय, क्योंकि गन्दा शरीर मानसिक शान्ति को ठीक नहीं रहने देता, धर्म की भी हीलना करता है। परन्तु, यहाँ कायशुद्धि से हमारा अभिप्राय कायिक संयम से है। आन्तरिक आचार का भार मन पर है और बाह्याचार का भार शरीर पर है। जो मनुष्य उठने में, बैठने में, खड़ा होने में, हाथ-पैर आदि को इधर-उधर हिलाने-डुलाने में विवेक से काम लेता है, यतना रखता है, असभ्यता नहीं दिखलाता है, किसी भी जीव को पीड़ा नहीं पहुँचाता है, वही कायशुद्धि का सच्चा उपासक होता है।

उक्त शुद्धियों का विवेकपूर्ण आचरण साधक की सामायिक को श्रेष्ठ बनाता है। अतः शुद्ध सामायिक की ओर हमारे कदम गतिमान होने चाहिये।



## सामायिक में मन की चंचलता : कारण एवं निराकरण

निस्संदेह मन की गति बड़ी विचित्र है। एक प्रकार से जीवन का सारा भार ही मन पर पड़ा हुआ है। मैत्रायणी उपनिषद् (6.34) में कहा गया है—“मन एव मनुष्याणां कारणं बंधं मोक्षयोः।” अर्थात् मन ही मनुष्यों के बंध और मोक्ष का कारण है। कथन ठीक भी है—मन का काम विचार करना है। जितने भी जीवन के कार्य-कलाप हैं वे सब विचार शक्ति पर ही निर्भर हैं। विचारों का वेग तुलनात्मक दृष्टि से अन्य सब वेगों की अपेक्षा अधिक तीव्र गतिमान होता है। आधुनिक विज्ञान-वेत्ताओं के मतानुसार प्रकाश की गति एक सैकेण्ड में 1,80,000 मील, विद्युत की 2,88,000 मील तथा विचारों की गति 22,65,120 मील बताई है। अतः मनोगत (भावों) विचारों का प्रवाह महान् है।

यह आमधारणा ही नहीं प्रत्युत अनुभव सिद्ध तथ्य है कि सामायिक साधना के समय मन की चंचलता अभिव्यक्त होती है। सामायिक में हमें अपने मन की चंचलता एवं विकारों का ज्ञान होने लगता है। यह भी मन पर विजय प्राप्त करने की साधना का अंग है। मन का विरोध किए बिना उसकी चंचलता को मिटाना एवं एकाग्र करना सामायिक-साधना का अंग है। विरोध करने से मन अधिक चंचल हो जाता है। भजन, स्तवन एवं सत्साहित्य का स्वाध्याय इसकी एकाग्रता एवं समता के लिए उपयोगी है। मन को चंचलता का पुराना अभ्यास है, अतः उसे बदलने में सामायिक की नियमितता एवं

निरंतरता आवश्यक है। ध्यान-साधना इसमें सहायक है। शास्त्रकारों ने बताया है कि इन्द्रिय-निग्रह से मनोनिग्रह अत्यन्त कठिन है, मन इन्द्रियों का राजा माना जाता है, किन्तु वह स्वयं ही अपने पर नियंत्रण नहीं रख पाता है। जब मन चंचल हो जाता है तो कर्मों का प्रवाह आत्मा को धेर लेता है और एक लम्बे समय तक उसे अपने आगोस में जकड़ कर मलिन बनाये रखता है।

सामायिक-साधना में पाँचों इन्द्रियों, काया और वचन के योगों को साधक नियन्त्रित कर लेता है, किन्तु मन की प्रवृत्ति चंचल होने के कारण सहजतया नियन्त्रित नहीं हो पाती। वैसे तो इन्द्रियाँ भी अपनी प्रकृति के अनुसार अपने-अपने विषयों की ओर आकर्षित होती हैं-किन्तु इन्द्रियों के अपने-अपने विषय सीमित हैं-अतः नियन्त्रित होना सहज सम्भाव्य है। जबकि मनोविषय का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और व्यापकता लिए हुए होने से असीमित है और वह उन पर चिंतन करने के लिए स्वतंत्र है। इसलिए उसके चिंतन की परिधि भी विस्तृत होने से एक विषय को परित्यक्त कर देने पर भी वह दूसरे विषयों को ग्रहण कर लेता है अतः सामान्य साधक के लिए वह बेकाबू बना रहता है।

प्रत्येक साधक का यह व्यक्तिगत अनुभव है कि जब वह अपनी साधना के क्षेत्र में उत्तरता है, आगे बढ़ता है तो उसके सभी शारीरिक क्रिया-कलाप, साधना के नियमों एवं मर्यादाओं के अनुरूप अपनी अवस्थिति बना लेते हैं व नियन्त्रण में रहते हैं। किन्तु मन का घोड़ा तो उत्ताल छलाँगे लगाता रहता है। अन्य दर्शनों में भी इस मन की गति को विचित्र एवं बेकाबू मानते हुए इसको नियन्त्रित करने हेतु तथा आत्मा का आज्ञाकारी बनाने के लिए विभिन्न प्रयास सुझाये हैं। जिसने मन को जीत लिया उसने सारा संसार जीत लिया, ऐसा माना है। कहा भी है- “मनोविजेता, जगतो विजेता।”

मन में अनेक कामनाएँ एवं संकल्प-विकल्प चलते रहते हैं, जिनसे मन

अशान्त बना रहता है। मन को शान्त बनाने के लिए कामनाओं को नियन्त्रित करना होगा तथा अशुभ संकल्पों का त्याग करना होगा। एक कामना पूरी होने पर दूसरी कामना उत्पन्न हो जाती है। कामना पूरी होने पर राग को बढ़ाती है तथा पूरी न होने पर अभाव एवं द्वेष उत्पन्न करती है। संसार-वृद्धि का कारण राग-द्वेष की परिणति है।

**सिद्धान्ततः:** सामायिक की साधना समत्व की साधना है जिसे मन की चंचलता विषमता में बदल देती है। यह एक प्रत्यक्ष अनुभव सिद्धतथ्य है कि अन्य सांसारिक प्रवृत्तियों के निष्पादन समय पर मन में इतनी ऊहापोह की स्थिति दृष्टिगोचर नहीं होती है जितनी कि सामायिक की साधना के समय देखी जाती है। उसके सामान्य एवं मनोवैज्ञानिक कारणों में से एक कारण यह भी हो सकता है कि सामायिक साधना का काल पूर्णतया शांत-निस्तब्ध होने से मन को अपनी उड़ानें अबाध गति से भरने का एक अनुकूल अवसर उपलब्ध हो जाता है और वह अपने इच्छित ग्राह्य विषय जो कल्पना शक्ति के आधार पर होते हैं उन पर चिंतन के लिए स्वतंत्र हो जाता है। ज्ञानी भगवंतों का यह अनुभव सर्वविदित है कि मन को अनियन्त्रित करने में मन की कल्पना शक्ति का महत्वपूर्ण कार्य रहता है। इसको नियन्त्रित करने के लिए मन की विचार शक्ति का जो दूसरा भेद तर्क शक्ति है उसका उपयोग करने का निर्देश फरमाया है। जिसका उपयोग करने से कल्पनाशक्ति पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में-श्री कृष्ण ने ज्ञान, भक्ति एवं योग के विषय का प्रतिपादन करते हुए फरमाया कि मन एक मदोन्मत्त हाथी है जिसे नियन्त्रित करना बड़ा कठिन कार्य है। कार्य कठिन अवश्य है, किन्तु असंभव नहीं है। हाथी को वश में करने के लिए जैसे अंकुश, साधन रूप है और उसका उपयोग करने से कैसा भी मदोन्मत्त शक्तिशाली हाथी हो, तुरन्त नियन्त्रण में ले लिया

जाता है। उसी प्रकार मन रूपी मदोन्मत्त हाथी के लिए भी ज्ञान रूप अंकुश का उपयोग, उसके चिंतन के विषयों, कल्पनाशक्ति के विषयों की ऊहापोह को परिशोधित करने में सक्षम है।

मन की जो दूसरी विचार शक्ति है तर्कशक्ति, उसका उपयोग कर मन की चंचलता कुछ सीमा तक नियन्त्रित किया जा सकता है। योगशास्त्र के प्रणेता आचार्यों ने यौगिक अथवा ध्यान की क्रिया में मन को संकल्प-विकल्पों से रिक्त रखने एवं उसके उपरान्त उद्भूत विकृतियों को शुभ एवं शुद्ध मानसिक प्रवृत्तियों द्वारा परिष्कृत करने का निर्देश किया है। इसके अनुसार तर्कशक्ति के द्वारा विचारों को व्यवस्थित बनाकर असत्संकल्पों का पथ छोड़ा जाता है और सत्संकल्पों का पथ अपनाया जाता है। मनुष्य की संकल्पशक्ति अनन्त बलशाली है। तर्कधारित संकल्पशक्ति के द्वारा स्वच्छ मनोभूमि में ज्ञान-क्रिया का अमृत जल प्राप्त कर समभाव का वृक्ष यथेष्ट लाभदायी बन जाता है। कल्पनाधारित मानसिक विकृतियों-राग, द्वेष, भय, शोक, मोह का अंधकार, अहिंसा, दया, सत्य, संयम, शील, संतोष आदि सत्संकल्प सूर्य के समक्ष अपने आप तिरोहित हो जाते हैं। मन की कल्पना शक्ति के वश हो प्राणी का जीवन किस प्रकार नारकीय बन जाता है एवं संकल्प व तर्कशक्ति का उपयोग किस प्रकार जीवन को श्रेयस्कर बना देता है, उसका आगम विश्रुत आख्यान प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का हमको सद्गुरु भगवंतों के श्रीमुख से सुनने को मिलता है, जो अल्प समय में सातवीं नरक के द्वार तक पहुँचा देता है और कुछ ही क्षणों में केवलज्ञान, केवलदर्शन मिला देता है।

**जैसा प्रायः** सुनने को मिलता है एवं अनुभूत तथ्य भी है कि अन्य समय की अपेक्षा सामायिक की साधना के समय ही मन की चंचलता में अभिवृद्धि होती है। उसका कारण उपर्युक्त विवेचित सामग्री के अतिरिक्त मन की एकाग्रता नहीं होना है। एकाग्र मन में अपने चिंतन बिंदु पर भी साधक का

लक्ष्य रहता है किंतु साधक ने एकाग्रता नहीं बनाई और आगंतुक विचारों को उनकी प्रकृति के अनुसार शोधन कर अपनाये जाने वाले विचारों को अपनाने एवं अनुचित-अनुपयुक्त को हटाने का मानसिक पुरुषार्थ नहीं किया तो उनका प्रवेश निषिद्ध न हो सकेगा और साधना निर्विकल्प, निर्दोष रूप से सम्पन्न न हो सकेगी।

इसके लिए अपार संकल्प शक्ति के आधार पर हम अपने मन पर आधिपत्य जमा सकते हैं। इसके लिए जप का अनुष्ठान, ध्यान की क्रिया, स्मरण, समाधि और सत्साहित्य स्वाध्याय परमोपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में तीनों योगों का सामंजस्य नहीं हो पाता, अधिकतम दो योगों का ही संयोजन हो पाता है किंतु स्वाध्याय के अन्तर्गत मन, वाणी और शरीर तीनों का समन्वय रहता है। एकाग्रता, मन की चंचलता को दूर करने का अचूक उपाय व अमोघ साधन है। मन की एकाग्रता के लिए ध्यान-साधना व समभाव की साधना परमावश्यक है। ध्यान का आशय ही चित्त-वृत्तियों का निरोध हो जाना है। दुश्चित्तवृत्तियों को रोककर मन की गति को बदला जा सकता है। समाधि का अर्थ भी चित्त की एकाग्रता ही बताया है।

सारांश यह है कि संकल्पशक्ति, तर्कशक्ति एवं एकाग्रता, जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि का सम्यक् उपयोग कर मन की चंचलता को नियन्त्रित किया जा सकता है।



## मुखवस्त्रिका की उपयोगिता

जैनधर्म के प्रवर्तक तीर्थङ्कर प्रभु ने अपने विमल एवं निर्मल केवलज्ञान के द्वारा न केवल चलते-फिरते दिखाई देने वाले जीवों के अस्तित्व को ही स्वीकार किया, अपितु पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति में भी जीवों का सद्भाव जानकर उनकी रक्षा का उपदेश फरमाया तथा अपने उत्तराधिकारी सर्व-विरति साधु-समाज के लिए इन पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति रूप जीवों की भी ऐसे ही पूर्ण रूपेण रक्षा करने का निर्देश दिया, जैसे हिलते-चलते त्रस जीवों की रक्षा का। मात्र चलने-फिरने वाले जीवों की रक्षा करने से जैन साधु अहिंसा महाब्रत का पालक नहीं कहा जा सकता, जब तक वह अव्यक्त वेदना वाले पृथ्वी, पानी, तेऊ, वायु और वनस्पतिकाय जीवों की पूर्णरूप से रक्षा (दया) नहीं करता है।

पाँच स्थावरकाय में चार तो (पृथ्वी, पानी, तेजस् एवं वनस्पति) चक्षु ग्राह्य हैं। अतएव उनकी रक्षा तो संभव है, परंतु वायुकाय चक्षु ग्राह्य नहीं है। उन वायुकाय जीवों की पूर्ण रूपेण रक्षा प्रभु महावीर के उत्तराधिकारी सर्व-विरति साधक द्वारा कैसे हो? इसके लिए आचार्यों ने उनके लिए मुख-वस्त्रिका को मुख पर बाँधे रखने का विधान किया है ताकि उनके द्वारा वायुकायिक जीवों की पूर्ण रक्षा हो सके। साधु को छह कायजीवों का रक्षक, प्रतिपालक कहा जाता है। वे यदि मुख पर मुख वस्त्रिका बराबर बाँधे नहीं रखते हैं तो उनके द्वारा वायुकायिक जीवों की रक्षा संभव नहीं हो पाती है।

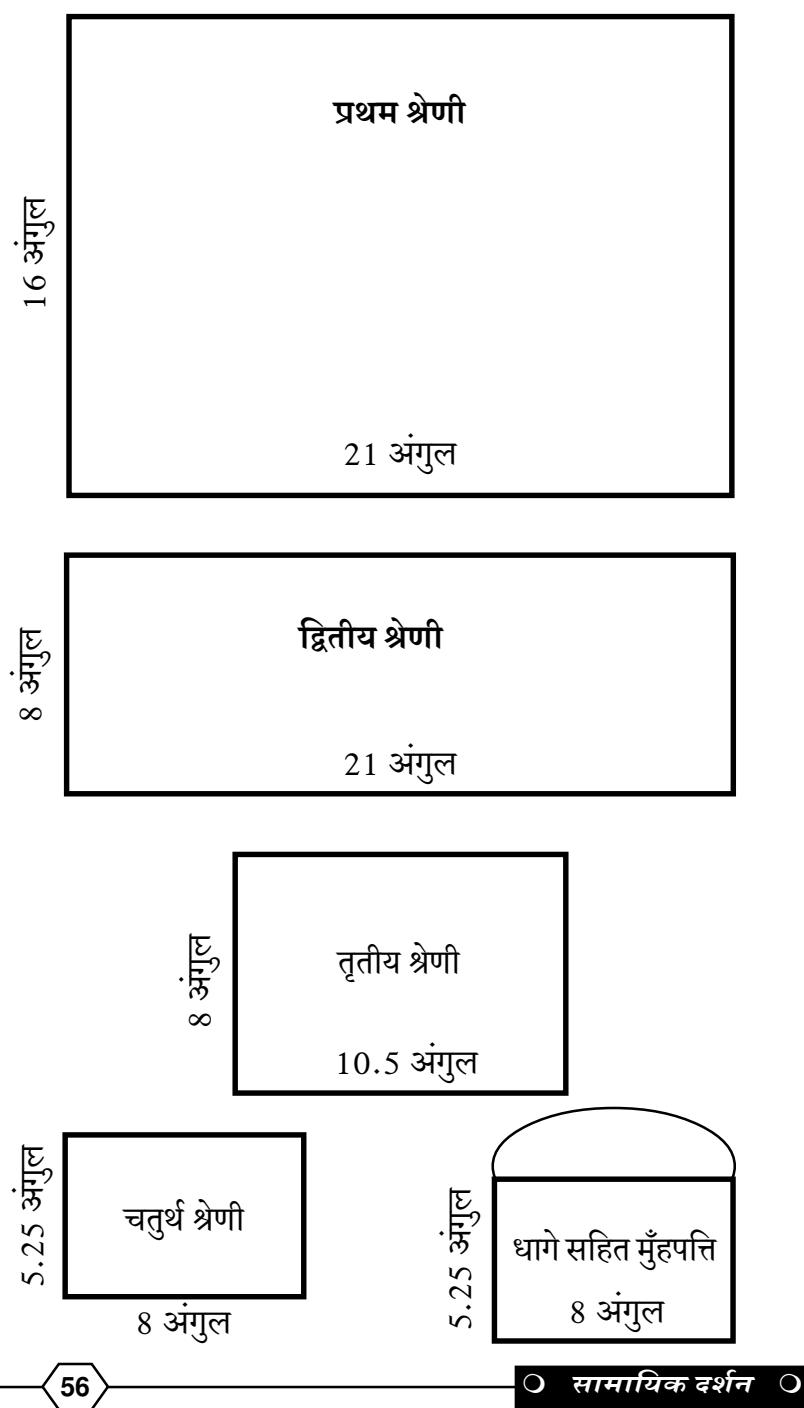
आचार्यों ने जैन साधु के लिए जिन धर्मोपकरणों की परिगणना की, उनमें ‘मुख वस्त्रिका’ सबसे अधिक उपयोगी एवं आवश्यक उपकरण बताया

है। यहाँ तक कि बृहत्कल्प उद्देशक 3 भाषा गाथा 3963 की टीका तथा आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के दूसरे अध्ययन की टीका में विशिष्ट आराधना करने वाले अचेलक, जिनकल्पी मुनि, जो वस्त्र तक नहीं रखते हैं, उनके लिए भी मुख-वस्त्रिका एवं रजोहरण रखना अनिवार्य बतलाया गया है। यह तो सर्वविग्रहि जैन साधु की बात हुई। परंतु जो श्रमण नहीं, किंतु उनका उपासक यानी श्रमणोपासक है, उनके लिए भी धार्मिक साधना-आराधना करते समय मुख पर मुख वस्त्रिका रखना आवश्यक है। भगवती सूत्र शतक 2 उद्देशक 5 में साधु-संतों के दर्शन करने के लिए जाने वाले श्रमणोपासकों के लिए पाँच अभिगमों (नियम) का पालन करने का प्रभु ने फरमाया है। उनमें तीसरे अभिगम का प्रचलित अर्थ मुँह पर उत्तरासंग लगाकर संत-सतियों के दर्शन करने का है। क्योंकि भगवती सूत्र शतक 16 उद्देशक 2 में खुले मुँह बोलने पर शक्रेन्द्र की भाषा को प्रभु ने सावद्यकारी कहा है। इसीलिए श्रमणोपासकों के लिए संत-सतियों के दर्शन एवं वार्ता करते समय मुँह पर रूमाल अथवा मुख वस्त्रिका रखने का विधान है, खुले मुँह उनसे वार्तालाप करने का निषेध किया है।

### **मुख वस्त्रिका का आकार व प्रमाण-**

मुखवस्त्रिका इक्कीस अंगुल लम्बी और सोलह अंगुल चौड़ी होती है। लम्बाई की दौपट में बराबर मोड़कर घड़ी की जाती है। जिससे दोनों किनारों की चौड़ाई आठ-आठ अंगुल हो जाती है। फिर दोनों किनारों को मिलाकर बीच में मोड़ दिया जाता है। फिर उस बीच के मोड़ से दोनों किनारों को कुछ दूर रखकर मोड़ दिया जाता है। इस प्रकार आठ पट की मुखवस्त्रिका तैयार हो जाती है। जो आठ अंगुल चौड़ी और पाँच अंगुल से किञ्चित् विशेष लम्बी होती है।

**वस्तुतः** जो लम्बाई है, वह चौड़ाई हो जाती है क्योंकि उसमें दो मोड़ हो जाते हैं और जो चौड़ाई है, वह लम्बाई हो जाती है क्योंकि चौड़ाई में एक ही मोड़ होता है। मुखवस्त्रिका श्वेत वर्ण की ही होनी चाहिये। जैसे-



जैन साधु-साध्वी के लिए मुँह पर हमेशा मुख वस्त्रिका बाँधे रखने का आगम में जो विधान किया गया है, इसके पीछे मुख्य दो कारण हैं। प्रथम वायुकायिक जीवों की रक्षा और दूसरा साधुत्व का चिह्न। मुँह पर मुख वस्त्रिका बाँधी देखकर सहज ही अन्य तीर्थिक समझ जाते हैं कि ये जैन साधु-साध्वी हैं। निम्न श्लोक है-

हस्ते पात्रं दधानाश्च, तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः ।

मलिनान्येव वासांसि, धारयन्तोऽल्पभाषिणः ॥

-शिवपुराण ज्ञान संहिता, अध्ययन 21, श्लोक 25

इस श्लोक के दूसरे चरण में ‘तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः’ यह शब्द स्पष्ट बतला रहा है कि मुँह पर वस्त्र यानी मुख वस्त्रिका धारण करने वाले जैन साधु होते हैं।

मुख वस्त्रिका का मुख पर बाँधना आगम-सम्मत है और शास्त्र विहित भी। जैसा कि उपर्युक्त शिवपुराण ज्ञान संहिता, अध्ययन 21 श्लोक 25 के अर्थ से स्पष्ट होता है। इसमें बताया गया है कि हाथ में पात्र धारण किये हुए और मुँह पर वस्त्र धारण करने वाले मलिन वस्त्रों को धारण किये हुए, थोड़े बोलने वाले, जैन-साधु होते हैं। ‘तुण्डे वस्त्रस्य धारका’ ये शब्द ही बता रहे हैं कि मुँह पर वस्त्र धारण करने वाले जैन साधु होते हैं। यह श्लोक विद्याविजयजी द्वारा लिखित ‘श्वेताम्बर प्राचीन के दिगम्बर’ नामक पुस्तक के पृष्ठ 16 पंक्ति 8 में भी छपा है।

(क) वायुकायादि जीवों के रक्षणार्थ मुख-वस्त्रिका की आवश्यकता—हेमचन्द्राचार्य कृत योगशास्त्र के भाषान्तर में लिखा है—“मुँहपत्ति पण उडीने मुखमाँ पड़ता जीवों तथा मुखना उष्ण श्वासथी बाहरना वायुकाय जीवों नी विराधना टालवा माटे छे, तमे मुखमाँ पड़ती धूलने पण

अटकाववा माटे छे ।” (भीमसिंह माणेक द्वारा प्रकाशित और निर्णय सागर प्रेस से मुद्रित विक्रम सम्बत् 1955 पृष्ठ 260 पंक्ति 27) ।

(ख) मुख-वस्त्रिका जैन साधुओं का लिंग (चिह्न) है—संसार में जितने मत-मतांतर हैं, उनके साधुओं अथवा प्रवर्तकों के कोई न कोई खास चिह्न होता ही है, और ऐसे चिह्नों से वे संसार के अन्य मतों से अपनी भिन्नता जाहिर कर सकते हैं । कोई पीले वस्त्र धारण करता है, कोई लाल एवं कोई भगवा धारण करते हैं । कोई लम्बा तिलक लगाता है तो कोई आडा । तात्पर्य यह है कि प्रत्येक धर्म के प्रवर्तकों का कोई न कोई स्वतंत्र लिंग-दर्शक चिह्न होता ही है । इसी प्रकार जैन साधुत्व का परिचय देने वाला मुख्य लिंग मुख वस्त्रिका रही है । अन्य धर्मावलम्बियों के चिह्न, सिवाय परिचय देने के किसी अन्य काम में प्रायः नहीं आते हैं, पर जैन-शासन में साधुओं का यह चिह्न (मुख वस्त्रिका) जीव रक्षा के उपयोग में भी आता है और जैन लिंग का भी परिचय देता है ।

‘मुख वस्त्रिका’ शब्द ही ऐसा है जो अपना अर्थ स्वयं प्रकट कर रहा है । जैसे—मुखेस्थिता—मुखस्थिता, मुखस्थिता चासौ वस्त्रिका मुख वस्त्रिका’ इति शब्दानुशासनम् अर्थात् जो वस्त्रिका मुँह पर स्थित हो उसको मुख वस्त्रिका कहते हैं ।

(1) विशेषावश्यक भाषान्तर भाग-2 में “मुह पुत्तियाइ” शब्द आया है—उसका अर्थ भाषान्तरकार ने “मुखे बाँधवाने मुख वस्त्रिका राखकी” किया है ।

(2) मूर्ति पूजक विद्वान् कवि ऋषभदासजी ने “हितक्षिता नो रास” में लिखा है—“मुखे बाँधि ते मुखपत्ति” है, जिसका भाव है—‘मुख वस्त्रिका वही है जो मुख पर बाँधी जाय ।

(3) हितशिक्षा नो रास पृष्ठ 207 पंक्ति 9 (श्रावकाधिकार)-रजोहरणो उज्ज्ञल मुँहपति अलगी न करे ते मुँहपति । यहाँ मुख वस्त्रिका को मुँह से दूर नहीं करे, ऐसा कहा है ।

(4) भगवतीसूत्र शतक 9 उद्देशक 33 में जमालि के दीक्षाधिकार में ऐसा उल्लेख है-सुद्धाए अट्टपडलाए पोत्तिए, मुहं बंधई । आठ पट वाले वस्त्र से मुँह बाँधने का वर्णन आया है ।

क्योंकि स्वाध्याय करते समय या पठन व वाचन करते समय थूँक गिरने से शास्त्र की होने वाली आशातना से भी आठ पट वाली मुखवस्त्रिका से ही बचा जा सकता है ।

**प्रश्न 1. क्या सामायिक आदि धर्मक्रियाओं में श्रावक को मुखवस्त्रिका बाँधना आवश्यक है ?**

**उत्तर** श्रावक को भी धर्मक्रिया करते समय मुखवस्त्रिका बाँधना आवश्यक है । क्योंकि सामायिक आदि में श्रावक साधु के समान सावद्य-क्रिया का त्यागी हो जाता है । भगवतीसूत्र में भगवान ने खुले मुँह से बोलने वालों की भाषा को सावद्यभाषा बतलाया है । इसलिये श्रावकों को भी धर्मक्रियाएँ करते समय मुखवस्त्रिका बाँधना आवश्यक है । आजकल यह विचित्र बात देखने में आती है कि जब तक श्रावक चुपचाप व्याख्यान सुनते हैं, तब तक वे मुखवस्त्रिका बराबर व्यवस्थित रूप से बाँधे रहते हैं । परंतु जैसे ही वे बोलने को खड़े होते हैं वैसे ही वे मुखवस्त्रिका खोलकर हाथ में ले लेते हैं । फिर बोलने में हाथ लम्बे करने में उपयोग बराबर कहाँ रहता है ? अतः जो अयतना होनी होती है, वह होती ही है । यह अनुचित ही है ।

**प्रश्न 2. मौन रहने पर मुखवस्त्रिका की क्या आवश्यकता है ?**

**उत्तर** यह नहीं भूलना चाहिये कि मुखवस्त्रिका जिनशासन का स्वलिंग है अर्थात् जिनशासन की पहचान है। अतः धर्मक्रिया करते समय उसे धारण करना अनिवार्य है। मुखवस्त्रिका को धारण करने से कम से कम दो लाभ तो हैं ही। यथा-  
**१. स्वयं के परिणामों की सुरक्षा-**मुखवस्त्रिका धारण करके धर्म-आराधना करने से यह उपयोग रहता है कि मैं धर्म-आराधना कर रहा हूँ।  
**२. अन्य जनों को प्रतीति-**यदि मुखवस्त्रिका सहित धर्मक्रियाएँ की जाती हैं तो लोगों को यह विश्वास हो जाता है कि ये धर्म-आराधना कर रहे हैं।

**प्रश्न 3. क्या मुखवस्त्रिका को वार्निंश आदि से कड़क कर लेना चाहिये ?**

**उत्तर** इससे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। यथा-  
**१. प्रतिलेखन नहीं-**मुखवस्त्रिका को कड़क कर लेने पर उसका प्रतिलेखन नहीं होता है। प्रतिलेखन की एक विधि है। वह विधि कड़क मुखवस्त्रिका में नहीं हो पाती है। उत्तराध्ययन सूत्र के 26वें अध्ययन की 23वीं गाथा में प्रतिलेखन का क्रम बताते हुए सर्वप्रथम मुखवस्त्रिका के प्रतिलेखन का उल्लेख किया है।  
**२. व्यवस्थित नहीं बंधती-**कड़क बनी हुई मुखवस्त्रिका मुख पर बराबर बंध नहीं पाती है और बोलते समय वह उछल रही हो, ऐसा लगता है, अतः वहाँ बार-बार हाथ जाता है।  
**३. अयतना-**मुखवस्त्रिका यतना के लिए है। परंतु कड़क मुखवस्त्रिका में बोलते समय वायु का उससे टकराकर पुनः पीछे सवेग लौटना संभव है। जिससे अयतना हो सकती है।  
**४. स्वलिंग नहीं-**मुखवस्त्रिका और रजोहरण, ये जिनशासन के स्वलिंग हैं। कड़क

मुखवस्त्रिका तो काठ के टुकड़े जैसी हो जाती है। काठ की ऐसी मुखमुद्रा निरयावलिया सुत्त में अन्य लिंग के रूप में वर्णित है।

5. वासी दोष—जो गोंद आदि से कड़क बनायी जाती है, उस मुखवस्त्रिका को धारण करने से रात्रि भोजन से संबंधित वासी दोष लगता है। ऐसे अन्य दोष भी हो सकते हैं।

### सारांश

1. मुख वस्त्रिका वायुकायादि जीवों के रक्षार्थ एवं जैन साधुओं की पहचान के लिए मुँह पर धारण की जाती है।
2. मुँह से निकलने वाली वायु से बाहर के वायुकायिक जीवों की हिंसा होती है।
3. मुख वस्त्रिका मुँह पर बाँधने से ही दोनों उद्देश्य बराबर सध सकते हैं, नहीं बाँधने से जैन लिंग और जीव रक्षा का पूर्ण पालन नहीं हो सकता।
4. मुख वस्त्रिका कैसी हो? दिखावे, प्रदर्शन, शृङ्गार (मुख) के लिए नहीं, उद्देश्य पूर्ति के लिए होने से वह सादा, स्वच्छ, सूती एवं प्रमाणोपेत हो। डोरा भी सूती ही हो।



## 8

### सामायिक के भेद

किसी भी क्रिया को समझने के लिए उसके भेद-प्रभेदों को समझना आवश्यक है। भेदों के ज्ञान से उस विषय का सर्वांगीण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जैन-धर्म में प्रत्येक क्रिया का द्रव्य-भाव की दृष्टि से विचार किया जाता है। इसी प्रकार सामायिक का भी द्रव्य-सामायिक और भाव-सामायिक के रूप में करते विचार किया गया है।

#### (अ) द्रव्य-भाव की अपेक्षा से सामायिक के दो भेद-

1. **द्रव्य सामायिक**—द्रव्य का अभिप्राय यहाँ पर विधि-विधानों तथा साधनों से है। अतः सामायिक के लिए आसन बिछाना, रजोहरण या पूँजनी रखना, मुख-वस्त्रिका बाँधना, गृहस्थ वेष के कपड़े उतारना, माला फेरना आदि क्रिया द्रव्य सामायिक है।

2. **भाव सामायिक**—भाव का अभिप्राय यहाँ अन्तर्हृदय के भावों और विचारों से है। अर्थात् राग-द्वेष से रहित होने के भाव रखना, राग-द्वेष से रहित होते जाना, भाव सामायिक है। विषम-भाव का त्याग कर सम-भाव में स्थिर होना, पौद्गलिक पदार्थों का यथार्थ स्वरूप समझ कर उनसे ममत्व हटाना एवं आत्म स्वरूप में रमण करना ‘भाव सामायिक’ है।

द्रव्य और भाव के स्वरूप को जानकर हमारा लक्ष्य द्रव्य सामायिक तक ही न हो, हमें भाव सामायिक तक पहुँचने का लक्ष्य रखना है। द्रव्य भी एक महत्वपूर्ण साधना है; परन्तु अन्ततोगत्वा उसका सार, भाव के द्वारा ही तो

अभिव्यक्त होता है। भाव शून्य द्रव्य, केवल सामान्य कागज पर बिना गर्वनर के हस्ताक्षर के रूपये की छाप है। अतः वह साधारण बालकों में रूपया कहला कर भी बाजार में कीमत नहीं पा सकता। अतः द्रव्य के साथ-साथ भाव का भी विकास करना चाहिए, ताकि आध्यात्मिक जीवन भली-भाँति उन्नत बन सके, एवं मोक्ष की ओर गति-प्रगति कर सके।

(ब) विशेषावश्यक भाष्य में सामायिक तीन प्रकार की भी बताई है यथा—(1) सम्यक्त्व, (2) श्रुत और (3) चारित्र।

(1) **सम्यक्त्व सामायिक**—आत्मा की साम्य अवस्था को सामायिक कहते हैं। जब आत्मा विशिष्ट प्रयत्न से मिथ्या-दर्शन-शल्य का उद्धरण करता है, तब उसका परिणाम शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था से ओतप्रोत हो जाता है, उसी को सम्यक्त्व सामायिक कहते हैं। उसकी नवतत्त्वों पर अटल श्रद्धा हो जाती है। जिनवाणी पर, सन्तवाणी पर, कल्याणकारी मोक्ष के उपायों पर दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। जिनवाणी को वह श्रद्धा से अपनाता है और अन्यमति तथा अल्पज्ञ की वाणी को तर्क की कसौटी पर उतारकर उसमें रहे सत्यांश को ही अपनाता है, असत्यांश को नहीं। जिनशासनोन्नति, प्रवचन-प्रभावना, सुपात्रदान, शुभभावना, सन्मार्ग-प्रदर्शन, धैर्य, विवेक इत्यादि गुण जब जीवन में सहज रूप में उत्पन्न हो जाते हैं, तब वही अवस्था सम्यक्त्व सामायिक की होती है। यह सामायिक चारों गतियों के जीवों में पाई जा सकती है। जो मिथ्यात्व और तत्सम्बन्धित क्रियाओं का पालन भी नहीं करता, निरतिचार सम्यक्त्व और तत्सम्बन्धित सभी क्रियाओं में रुचि रखता है, वही इस सामायिक का अधिकारी है। सम्यक्त्व सामायिक के स्वरूप को जानने हेतु इसके पर्यायवाची सात नाम बताये हैं—

(i) **सम्यगदृष्टि**—सम्यक् यानी मोक्ष के विरोधी न होने से प्रशस्त, दृष्टि यानी जीवादि पदार्थों का दर्शन। अविपरीत प्रशस्त दृष्टि।

**(ii) अमोहो-**मोह अर्थात् विपरीत ज्ञान या मिथ्या आग्रह । अतः अमोह यानी अविपरीत अर्थात् यथार्थ ज्ञान ।

**(iii) शोधि-**मिथ्यात्व के मल को दूर कर आत्मा को शुद्ध करना, शोधि है।

**(iv) सद्भाव दर्शन-**सद् यानी जिनेश्वर भगवान का प्रवचन उसका भाव-यथावस्थित स्वरूप, उसका दर्शन यानी ज्ञान। अर्थात् जिन प्रवचन की उपलब्धि व श्रद्धा उत्पन्न होना।

**(v) बोधि-**तत्त्वार्थ का विशेष बोध होने से बोधि अर्थात् परमार्थ का ज्ञान।

**(vi) अविपर्यय-**जो जैसा नहीं है उसमें उसका निश्चय विपर्यय है और अविपर्यय यानी तत्त्व का निश्चय-जैसा है वैसा समझना ।

**(vii) सुदृष्टि-**यानी सुन्दर दृष्टि। प्रशस्त श्रद्धा रूपी दर्शन। ये सम्यक्त्व सामायिक के निरुक्त हैं। यह सामायिक चारों गतियों के चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवों में पायी जाती है।

**(2) श्रुत सामायिक-**साधक नित्य प्रति यथाशक्य जिनवाणी का स्वाध्याय करता है। जिस साहित्य का अध्ययन करने से आत्मा श्रुतज्ञान से प्रकाशित हो सके, सन्मार्ग और कुमार्ग का ज्ञान भली-भाँति कर सके उसे श्रुत सामायिक कहते हैं। ज्ञान के प्रति रुचिशील साधक आगम-शास्त्रों का अनादर नहीं करता है। जैसे-सिक्ख पन्थ में लोग ग्रन्थ साहिब को गुरु की देन मानते हैं, जो सम्मान गुरु का होता है, वही सम्मान वह गुरु ग्रन्थ साहिब का करते हैं, इसी प्रकार हमें भी आगमों का सम्मान करना चाहिए। पूर्वधरों का, उत्तम मुनिवरों का जो सम्मान सम्यग्दृष्टि के हृदय में है वही सम्मान जिनवाणी का होना चाहिए।

किसी भी आगम को पाँव से न छूना, आगमों की ओर पाँव पसार कर न

बैठना, आगम को सिरहाने न रखना, जहाँ आगम हो वहाँ किसी भी प्रकार की अश्लील वस्तु न रखना, यही श्रुत का आदर है। इस प्रकार श्रुतभक्ति करने से जीव पुण्यानुबन्धी पुण्य का बन्ध करता है। उपयोग पूर्वक अध्ययन करने से कर्मों की निर्जरा होती है। श्रद्धा भक्ति से उपयोग पूर्वक अध्ययन करना ही श्रुत सामायिक कहलाती है।

श्रुत सामायिक के स्वरूप को समझने हेतु उसके मुख्य 14 निरुक्त किये हैं—अक्षर, संज्ञी, सम्यक्, सादि, सपर्यवसित, गमिक और अंगप्रविष्ट ये सातों ही पद सप्रतिपक्ष हैं अर्थात् अनक्षर, असंज्ञी, मिथ्या, अनादि, अपर्यवसित, अगमिक और अंग बाह्य, यह सब मिलकर श्रुत सामायिक के 14 निरुक्त हैं। प्रत्येक जीव में ज्ञान की सत्ता होती है। अतः श्रुत सामायिक सत्ता की अपेक्षा मानी गयी है। इसके अनुसार प्रत्येक जीव में चाहे वह मिथ्यादृष्टि ही क्यों न हो, श्रुत सामायिक की सत्ता अवश्य विद्यमान होती है।

(3) चारित्र सामायिक—हिंसा, झूठ, चोरी, दुराचार, तृष्णा, कषाय, राग, द्वेष, कलह, असत्यारोपण इत्यादि पापों से निवृत्त होना ही चारित्र सामायिक है। अहिंसा, क्षमा, मैत्री, सत्य, ईमानदारी, मौन, सन्तोष, सदाचार, अप्रमाद, शुभ-भावना इन सबका दृढ़ता के साथ आराधन करना। विकथा के स्थान में स्वाध्याय, द्वेष के स्थान में प्रेम, राग के स्थान में भक्ति, विषय के स्थान में विरक्ति होना चाहिए। क्योंकि विकथा, राग, द्वेष, विषय, कषाय, प्रमाद ये सब समाधि के साधन नहीं, अपितु बाधक हैं। समाधि ही आत्मा की स्वस्थता है। उसी स्वस्थता को सामायिक कहते हैं। सम्यक्त्व के बिना श्रुत सामायिक नहीं, श्रुत के बिना चारित्र सामायिक नहीं।

‘स्व’ और ‘पर’ की स्वाभाविक-वैभाविक दशा की यथार्थ श्रद्धा को ‘सम्यक्त्व सामायिक’, ‘स्व-पर’ के वास्तविक ज्ञान को ‘श्रुत सामायिक’ और पर-भाव से स्वभाव में लौटने की क्रिया को ‘चारित्र सामायिक’ कहते हैं।

गुणस्थानों की अपेक्षा विचार करें तो औपशमिक सम्यक्त्व चौथे से 11वें गुणस्थान पर्यन्त रहता है। क्षयोपशम सम्यक्त्व चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक रहता है और क्षायिक सम्यक्त्व सादि अनन्त है। इस प्रकार सम्यक्त्व सामायिक तीन प्रकार की होती है। श्रुत सामायिक चौथे से लेकर 12वें गुणस्थान तक रहती है और चारित्र सामायिक 5वें से लेकर 9वें गुणस्थान तक ही रहती है। क्योंकि आगे दसवें गुणस्थान में सूक्ष्म सम्पराय चारित्र होता है, सामायिक की मुख्यता नहीं होती।

सामायिक के बिना चारित्र का लाभ नहीं हो सकता। पाँच प्रकार के चारित्रों में सर्वप्रथम सामायिक चारित्र का लाभ जीव को होता है, तत्पश्चात् अन्य-अन्य चारित्र का भी, अतः मुमुक्षुओं को तीनों प्रकार की सामायिक करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(स) साधना की दृष्टि से सामायिक के दो भेद हैं—(1) अगार सामायिक और (2) अणगार सामायिक।

(1) अगार सामायिक—गृहस्थ की सामायिक दो घड़ी (48 मिनट) के मर्यादित समय के लिए व दो करण तीन योग से होती है; अतः इसे अगार सामायिक कहा गया है।

श्रावक की सामायिक के भी छह निरुक्त हैं—

(i) विरताविरति—कभी व्रती होने व कभी अव्रती होने की अपेक्षा विरताविरति कहा है।

(ii) संवृत—असंवृत—त्यक्त और अपरित्यक्त यानी कभी सावद्य योगों का त्याग होने से संवृत और कभी सावद्य योगों का त्याग नहीं होने से असंवृत होता है। संवृत और असंवृत जिसमें है वह संवृतासंवृत सामायिक है।

(iii) बालपंडित—पूर्ण विरति नहीं होने की अपेक्षा बाल और आंशिक विरति होने की अपेक्षा पंडित अर्थात् बाल पंडित सामायिक है।

**(iv) देशैकदेशविरति**—देश स्थूल प्राणातिपात आदि, एक देश वृक्ष छेदन आदि। इन दोनों का विरमण जिस निवृत्ति में है वह देशैकदेशविरति सामायिक है।

**(v) अणुधर्म**—साधु का धर्म पापों की निवृत्ति स्वरूप होने से श्रेष्ठ यानी महान् है उसकी अपेक्षा से देशविरति अणु यानी अल्प है। अतः अणु धर्म सामायिक है।

**(vi) अगारधर्म**—न गच्छन्ति इति अगाः, पर्वताः वृक्षाः वा। अर्थात् नहीं चलने वालों को “अग” कहते हैं, जिसमें पर्वत, वृक्ष आदि सम्मिलित होते हैं। उनसे प्राप्त होने वाले पत्थर और लकड़ी से घर बनते हैं—उसे अगार कहते हैं। घर में रहने वालों का धर्म अगार धर्म है। अगार से विपरीत अनगार होता है, अतः घर-बार से रहित अर्थात् साधु धर्म अनगार धर्म है।

यह श्रावक धर्म से शोभित देशविरति सामायिक सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय तथा कर्मभूमि सन्नी मनुष्यों में पायी जाती है।

**(2) अणगार सामायिक**—साधु की सामायिक जीवन पर्यन्त व तीन करण तीन योग; इन नौ ही कोटि से होती है, अतः इसे अणगार-सामायिक कहा गया है। अणगार सामायिक के आठ निरुक्त हैं—

**(i) सामायिक**—राग-द्वेष के मध्य में रहने वाला मध्यस्थ भाव की उपलब्धि होना। सम होकर मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करना। सामायिक यानी एकान्त रूप से उपशान्त भाव में जाना।

**(ii) समायिक**—सब जीवों के प्रति करुणाभाव पूर्वक सम्यक् दयापूर्ण प्रवर्तन होना सामायिक है।

**(iii) संक्षेप**—महान् गंभीर अर्थ का अल्पाक्षर में कथन करना। चौदह पूर्वों का सार संक्षेप-सामायिक है। जिसमें अक्षर थोड़े व अर्थ महान् ऐसा सामायिक संक्षेप है।

**(iv) सम्यक् वाद-** ‘सम्यक्’ यानी राग-द्वेष का परिहार करके ‘वाद’ यानी बोलना वह सम्यक् वाद। रागादि का त्याग करके जैसा है वैसा बोलना।

**(v) समास-** अस् यानी फैंकना, शोभनं असनं समासः यानी संसार के बाहर जीव को फैंकना अथवा जीव से कर्मों को दूर फैंकना समास सामायिक है।

**(vi) अनवद्य-** सामायिक का क्रियानुष्ठान पाप रहित मार्ग है। अवद्य यानी पाप, जिसमें पाप नहीं, वह अनवद्य सामायिक है। ‘सावज्जं जोगं पच्चकखामि’ से पाप का पूर्णतः परिहार करना।

**(vii) परिज्ञा-** पाप का त्याग करने हेतु हेय, ज्ञेय, उपादेय का ज्ञान आवश्यक है। पाप के त्याग का ज्ञान करना परिज्ञा सामायिक है।

**(viii) प्रत्याख्यान-** पाप का परिहार करने के लिए गुरु की साक्षी में निवृत्ति का कथन करना प्रत्याख्यान सामायिक है। दूसरे शब्दों में गुरु की साक्षी से हेय प्रवृत्ति से निवृत्त होना प्रत्याख्यान सामायिक हो।

यह सर्वविरति सामायिक कर्मभूमि के सन्नी मनुष्यों में भी सर्वविरति साधुओं में ही पायी जाती है।

#### उक्त सामायिक के भेदों का पारस्परिक सम्बन्ध

सामायिक के साधकों के तीन प्रकार हैं। यथा—(1) अविरत सम्यग्दृष्टि, (2) देश विरत और (3) सर्वविरत। अविरत सम्यग्दृष्टि-सम्यक्त्व सामायिक और श्रुत सामायिक का आराधक होता है। देशविरत-सम्यक्त्व सामायिक, श्रुत सामायिक और अगार सामायिक का आराधक होता है। सर्वविरत-सम्यक्त्व सामायिक, श्रुत सामायिक और अणगार सामायिक का आराधक होता है।

इस आराधना-क्रम से यह निष्कर्ष निकलता है कि—बिना सम्यक्त्व सामायिक और श्रुत सामायिक के देश विरति और सर्वविरति अर्थात् अगार

सामायिक और अणगार सामायिक नहीं हो सकती। सम्यक्त्व सामायिक और श्रुत सामायिक के आराधक की प्रवृत्ति में चारित्र नहीं होते हुए भी चारित्र की रुचि न हो तो, उसकी श्रद्धा और श्रुत धीरे-धीरे मिथ्यात्व और मिथ्या ज्ञान के रूप में परिणत हो जाते हैं। अतएव चारित्र-सामायिक के आराधक के सम्यक्त्व सामायिक और श्रुत सामायिक की आराधना अवश्य होनी चाहिये।

**(द) साध्य-साधन की अपेक्षा सामायिक के दो भेद-**

**1. साध्य सामायिक-** जहाँ पहुँचकर समत्व की प्राप्ति हो जाती है, अपने निजी गुणों का पूर्ण विकास हो जाता है और जिससे मोक्ष पद की प्राप्ति हो जाती है, उसे साध्य सामायिक कहते हैं।

**2. साधन सामायिक-** मोक्ष के लक्ष्य पर पहुँचने के लिए दैनिक जीवन में अपनायी जाने वाली समत्व बुद्धि साधन सामायिक कहलाती है।

**(य) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावापेक्षा सामायिक के भेद-**

(i) द्रव्य से सामायिक उपकरणों की सादगी से परिपूर्ण हो, जिससे सामायिक में निरासकतपने का विकास हो सके।

(ii) क्षेत्र से सामायिक निरवद्य निर्विकार धर्म स्थल पर हो, जिससे बाह्य विक्षेप देने वाले आलम्बनों का निराकरण हो जावे।

(iii) काल से सामायिक जीवन पर्यन्त अथवा कम से कम 48 मिनिट की हो, जिससे समता की आराधना का उचित अवसर प्राप्त हो।

(iv) भाव से सामायिक मन, वचन, काया के 32 दोष टालकर हो जिससे निरतिचार समभावपूर्वक सामायिक हो सके।

**(र) निक्षेप विधि से सामायिक के भेद-**

**(i) नाम-साधना रूप क्रिया का नाम सामायिक है।** यह नाम सामायिक कहलाती है।

**(ii) स्थापना**—साधना के उपकरण जो स्थापित किये जाते हैं, जैसे मुखवस्त्रिका, पूँजनी, वस्त्र आदि। इन्हें स्थापना सामायिक के अन्तर्गत लेते हैं।

**(iii) द्रव्य**—सामायिक में द्रव्य दृष्टि से 6 काया के जीवों की रक्षा का प्रयास होता है, यह द्रव्य सामायिक है।

**(iv) क्षेत्र**—जिस क्षेत्र में बैठे वहाँ 3 करण 3 योग अथवा 2 करण 3 योग से हिंसा न करना उस क्षेत्र की अपेक्षा क्षेत्र सामायिक है।

**(v) काल**—जीवन पर्यन्त अथवा 48 मिनट तक के काल में हिंसा का त्याग करना समयापेक्षा काल सामायिक है।

**(vi) भाव**—सावद्य योगों का त्याग भावपूर्वक करना भाव सामायिक है।

**(ल) नय दृष्टियों से सामायिक के भेद-**

सामायिक का यथार्थ स्वरूप समझने के लिए यहाँ उस पर सात नय की अपेक्षा विचार किया जाता है—

**(i) नैगम नय**—सामायिक करने की आज्ञा लेने अथवा सामायिक करने हेतु उद्यत हो तभी से नैगम नय की अपेक्षा सामायिक मान ली जाती है।

**(ii) संग्रह नय**—सामायिक करने की आज्ञा लेकर सामायिक सम्बन्धी समस्त उपकरण पूँजनी, मुँहपत्ती, बैठका, उत्तरासन आदि ग्रहण कर लेना अथवा सामायिक अध्ययन को पढ़ने हेतु गुरु चरणों में बैठना संग्रह नय की अपेक्षा सामायिक मान ली जाती है।

**(iii) व्यवहार नय**—सामायिक की आज्ञा व उपकरण लेकर सामायिक के लिए बैठ पूर्ण तैयारी के साथ तदनुकूल व्यवहार आरम्भ करने पर व्यवहार नयापेक्ष्या सामायिक मान ली जाती है।

**(iv) ऋजुसूत्र नय**—सामायिक के लिए बैठने पर जब सामायिक पाठ

बोल वर्तमान में पच्चक्खाण कर तदनुकूल क्रिया करे तब से ऋजुसूत्र नयापेक्षा सामायिक मानी जाती है।

(v) **शब्द नय-**जब सामायिक में शब्द के अनुसार उपयोगवान होवे, तब शब्द नयापेक्षा सामायिक मानी जाती है।

(vi) **समभिरूढ़ नय-**शब्द के अनुसार मात्र उपयोगवान ही न होवे, वरन् तदनुरूप क्रियावान होने पर समभिरूढ़ नयापेक्षा सामायिक मानी जाती है। जैसे अप्रमत्त संयमी।

(vii) **एवंभूत नय-**अप्रमत्त संयमी में भी जब आत्म प्रदेशों में पूर्ण स्थिरता हो, कषाय व योग से विरत, त्रिगुप्त संयमी, शैलेशीदशा प्राप्त चौदहवें गुणस्थानवर्ती आत्मा में ही एवंभूत नयापेक्ष्या सामायिक मानी जाती है।

समत्व की साधना वस्तुतः अत्यन्त दुर्लभ है। सामायिक मुक्ति का एकमात्र मार्ग है। यह सच्ची शान्ति प्रदाता व कर्म बन्धनों को काटने वाली साधना है। क्या मजाल है कि सामायिक करने के उपरान्त भी मन सांसारिक कलुषों से सर्वथा निरत हो सतत शान्ति प्राप्त न करे। सामायिक के भेदों में से सामर्थ्य अनुसार सामायिक साधना करे और आत्म-विकास की ओर आगे बढ़े। अगर एकान्त, शान्त, परिमार्जित स्थान पर, सम्यक् रीति व समय पर, शुद्ध परिधान से युक्त हो, दत्तचित्त हो, सामायिक साधना करेंगे तो अवश्यमेव अमरत्व की प्राप्ति होगी।



## सामायिक का विधि-विधान

विश्व का हर प्राणी सुख-शांति चाहता है। आधि, व्याधि, उपाधि सबको अप्रिय और अरुचिकर लगती है। सुख पुण्य का फल है और दुःख पाप का। सभी जन यह बात जानते हैं, फिर भी विचित्र बात यह है कि जिस कर्म का फल प्रिय लगता है, उस कर्म को अधिकांशजन कर नहीं पाते हैं और जिस कर्म का फल अरुचिकर लगता है, उस कर्म को करने में व्यक्ति आनन्द मानता है।

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति, पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः ।  
न पापफलमिच्छन्ति, पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

यही विडम्बना है कि फल भले ही आम के ग्रहण करने की इच्छा रहे, पर उसके लिए बीज वह नीम के बोता रहता है। इस विडम्बना को तोड़कर जो व्यक्ति पुण्य फल की इच्छा हेतु पुण्य कार्य करेगा, वह ही साधना मार्ग का पथिक होता है। इस साधना मार्ग की प्रथम साधना है सामायिक।

‘स्व’ को प्रकाशित करना ही सामायिक है ‘दिवेवधम्मं समयं उदाहु।’ शुभ प्रवृत्ति रूप अर्थात् सदाचार युक्त समभाव को ही धर्म कहा गया है। (आचारः प्रथमो धर्मः) सर्वप्रथम हमें अपना आभ्यंतर स्वरूप या भाव-जीवन समझने की जरूरत है। इसी हेतु सामायिक की संरचना की गई है। समत्व में रमण करना ही तो सामायिक है।

**सामायिक का विधि विधान—सर्वप्रथम महामंत्र नवकार का तीन बार स्मरण कर तिक्खुतो के पाठ से तीन बार अपने गुरुदेव को बंदना करना चाहिये।**

वंदना का मूल पाठ राजप्रश्नीय सूत्र से लिया गया है जिसका भावार्थ—हे पूज्य ! दोनों हाथ जोड़कर दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा करता हूँ, गुरुदेव की मैं मन, वचन, काया से सेवा करता हूँ और मस्तक नमाकर वंदना करता हूँ।

इसके पश्चात् ईर्यापथिक (इच्छाकारेण) सूत्र जो हारिभद्रीया आवश्यक वृत्ति से लिया गया है, जिसका स्मरण किया जाता है। इसका भावार्थ है—हे गुरु महाराज ! इच्छापूर्वक आज्ञा दीजिये कि मैं ईर्यापथिक क्रिया का प्रतिक्रिमण करूँ। गुरु की अनुमति मिलने पर शिष्य कहता है—आपकी आज्ञा प्रमाण है। मैं मार्ग में चलने से होने वाली विराधना से निवृत्त होना चाहता हूँ।

इस प्रकार उक्त पाठ का उच्चारण और स्मरण कर तस्स उत्तरी का पाठ जो हारिभद्रीयावश्यकवृत्ति से लिया है, उसका पाठ करें। भावार्थ है—आत्मा को अधिक शुद्ध करने के लिए मैं कायोत्सर्ग करता हूँ, प्रायश्चित्त करता हूँ। प्रायश्चित्त के लिए शल्यों का आत्मा से दूर होना आवश्यक है। (माया, निदान एवं मिथ्या दर्शन शल्य) शरीर के ममत्व एवं उसके साथ सम्बन्ध का त्याग कायोत्सर्ग है। सर्वथा त्याग संभव नहीं, अतः आगार रखे जाते हैं। कायोत्सर्ग में निर्धारित पाठ का चिंतन कर नमो अरिहंताणं बोलकर कायोत्सर्ग को पारा जाता है। फिर कायोत्सर्ग शुद्धि के पाठ का उच्चारण करना होता है।

तत्पश्चात् उत्कीर्तन सूत्र (लोगस्स का पाठ) द्वारा चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति करे। हारिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 493—506 से लोगस्स का पाठ लिया गया है। तीर्थङ्करों की स्तुति से मन को पवित्र करके ‘करेमि भंते’ (हारिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 454) के द्वारा सामायिक ग्रहण करे। भावार्थ—मैं सामायिक ब्रत ग्रहण करता हूँ। मैं पाप जनक व्यापारों का त्याग करता हूँ। मन, वचन, काया के द्वारा न पाप करूँगा, न कराऊँगा। पश्चात् बांया घुटना खड़ा रखते हुए बैठकर णमोत्थुणं (औपपातिक सूत्र 12, कल्पसूत्र) का पाठ दो बार उच्चारण करें। दूसरी बार ठाणं संपत्ताणं के बदले ठाणं संपावित्कामाणं बोलना चाहिये। इसमें सिद्ध और अरिहंत भगवान को नमस्कार किया गया है।

सामायिक का अवशेष समय स्वाध्याय और आत्म-चिंतन में व्यतीत करें और सामायिक का काल पूर्ण होने पर एयस्स निर्धारित पाठों का उच्चारण करते हुए अंत में एयस्स नवमस्स (समापन सूत्र) बोलें जिसका भावार्थ है— मन, वचन और काया से अशुभ योग प्रवर्तयि हों, सामायिक की स्मृति न की हो, समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो, इन पाँच अतिचारों का मिच्छामि दुक्कडं तथा 1. स्त्री, भोजन, देश और राजकथा 2. आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा और 3. अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार के सेवन का मिच्छामि दुक्कडं देता हूँ।

उपर्युक्त सारी क्रिया व विधि-विधान पाठों से पीछे हटने के लिए ही है। अपनी आत्मा में रमण करने के लिए ही है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ‘कल्याण मंदिर’ स्तोत्र के अंत में कहते हैं कि जो जन समभाव पूर्वक तुम्हारी स्तुति करते हैं, वे स्वर्गिक सुखों को भोगकर, समस्त कर्मों को विनष्ट कर, शीघ्र ही मुक्ति के सुखों का वरण कर लेते हैं।

इस प्रकार सामायिक की विधि व पाठों का निर्धारण पूर्व आचार्यों के द्वारा समग्र अवलोकन उपरांत निश्चित किया गया है जो कि एक श्रेष्ठ विधान है। इस सामायिक क्रिया को करके साधक समत्व में रमण करता हुआ अपने अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करता है।



## सामायिक सूत्र के पाठों की प्रासंगिकता

वैदिक संध्या, मुसलमानों की नमाज और योगियों के प्राणायाम की तरह सामायिक व्रत का विधान है। इस व्रत की आधार भूमि इतनी व्यापक है कि इसमें यम-नियम के, ज्ञान, भक्ति-कर्म के, सत्यं शिवं सुन्दरम् के सभी आयाम समाविष्ट हो जाते हैं। इसकी मूल भावना विषमता में समता, अव्यवस्था में व्यवस्था और जीवन में मैत्री तथा करुणा की स्थापना करना है। यह एक प्रकार का खुला रोजनामचा है जिसमें प्रतिदिन का हिसाब प्रतिबिम्बित हो उठता है। इसमें अपने किये हुए पापों से पीछे हटने का विधान भी है और नये पाप कर्मों को संचित न करने का पुण्य संकल्प भी। इसका शास्त्रीय दृष्टि से जितना महत्त्व है उतना ही जीवन दृष्टि से भी। इस व्रत की अवधारणा करने वाले सूत्र का प्रासंगिक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

यह सामायिक सूत्र 8 भागों में विभक्त है—(1) नमस्कार मंत्र (2) गुरु वन्दना सूत्र (3) इरियावहियं सूत्र (4) उत्तरीकरण सूत्र (5) उत्कीर्तन सूत्र (6) सामायिक-प्रतिज्ञा सूत्र (7) शक्रस्तव सूत्र और (8) समापन सूत्र।

भारतीय संस्कृति में ‘नमस्कार’ का एक विशेष महत्त्व है। किसी भी शुभ कार्य के प्रारम्भ में अपने इष्ट का स्मरण किया जाता है। यहाँ के साहित्य-शास्त्र की परम्परा में भी तीन प्रकार के मंगलाचरणों का विधान है—नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक। ‘सामायिक सूत्र’ का प्रारम्भ भी नमस्कारात्मक मंगलाचरण से होता है। इस मंगलाचरण में किसी व्यक्ति विशेष की प्रशस्ति नहीं गाई गई है वरन् अपने गुणों से जो संस्था बन

गये हैं उन महापुरुषों को नमन किया गया है। इसका अर्थ यही है कि साधक या भक्त अपने जीवन में इन वरेण्य महापुरुषों के आदर्श को जीए। तभी उसका कल्याण होगा।

भारतीय धर्म एवं दर्शन में गुरु का विशेष स्थान है। गुरु ही साधक का पथ प्रदर्शन करता है, वही उसे ब्रह्म का रहस्य समझाता है। कबीर ने तो एक स्थान पर गुरु को गोविन्द से भी बढ़कर माना है। सूफी धर्म में भी गुरु का विशिष्ट स्थान है। जैन धर्म और संस्कृति में भी गुरु का महत्व निर्विवाद है। ‘सामायिक सूत्र’ में इसीलिए ‘नमस्कार मंत्र’ के बाद गुरु-वन्दना का पाठ है। यह वन्दन, विनय-भावना का जीता-जागता चित्र है। इसमें शिष्य तीन बार दोनों हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा करके गुरु की स्तुति करता हुआ उन्हें नमस्कार करता है, उनका सम्मान व सत्कार करता है। इससे पता चलता है कि गुरु कितने महान् और तेजस्वी होते थे तथा शिष्य कितने नम्र, सेवाभावी और आज्ञानुवर्ती। आज के इस अनुशासनहीन शिक्षण-जगत को जहाँ गुरु और शिष्य के बीच स्वस्थ सम्पर्क का नितान्त अभाव है—इस पाठ से प्रकाश और प्रेरणा मिलनी चाहिये।

गुरु-वन्दना के बाद शिष्य, साधना-भूमि की ओर अग्रसर होता है, पर यहाँ पर भी आज्ञा माँगने का विधान! ‘ईर्यापथिक सूत्र’ एक ओर अहिंसा की सूक्ष्म भूमिका प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर विनय-भावना का भी स्वतः स्फूर्त रूप प्रकट करता है। शिष्य नम्रतापूर्वक गुरु महाराज से प्रार्थना करता है कि यदि उनकी इच्छा हो तो वह मार्ग में चलने की क्रिया रूप पाप से छूटने के लिए प्रतिक्रिमण करे। अपने ही पापों की आलोचना करने के लिए भी गुरुजन की स्वीकृति। कितना उदात्त आदर्श है! अहिंसा की कितनी बारीकी! किसी को मारना ही पाप नहीं, बल्कि किसी के प्रति दुर्भाव लाना भी पाप है और इस पाप की आलोचना अकेले नहीं, गुरु को साक्षी बना कर सबके सामने।

यह पाप-निवृत्ति और प्रायश्चित्त-पद्धति केवल मात्र विचारों तक सीमित नहीं है। उसको आचार पीठिका मिली है कायोत्सर्ग (ध्यान) के रूप में। ‘उत्तरीकरण सूत्र’ इसी कायोत्सर्ग की दार्शनिक पृष्ठ भूमि है। इस कायोत्सर्ग में साधक अपने शरीर को स्थिर रखकर, वचन से मौन रहकर और मन से एकाग्र-एकनिष्ठ होकर अपनी आत्मा को प्रवृत्तियों से हटाता है। यही योग है, इस कायोत्सर्ग की भूमिका से फलित होता है कि जैन संस्कृति अन्तर्मुखी अधिक है। वह बदले की भावना में विश्वास नहीं करती। इस दृष्टि से पाप का प्रायश्चित्त स्वयं कष्ट उठाकर ही किया जा सकता है। इस कष्ट सहिष्णुता से जो शक्ति मिलती है वह अपने में पुरुषार्थ बनाये रखती है ताकि कोई उसे पीड़ा न पहुँचा सके और जो शील बुद्धि विकसित होती है वह उसे इतना उदार, दयालु और अहिंसक बना देती है कि वह किसी को पीड़ा न पहुँचाये।

कात्योत्सर्ग की इस साधना के बाद साधक की आत्मा हल्की बन जाती है। आलोचन-प्रत्यालोचन से उसके पापों का भार बिखर जाता है, छिन्न-भिन्न हो जाता है तब उसका ध्यान प्रभु-भक्ति की ओर जाता है। वह शुद्ध बुद्ध परमात्मा का स्मरण-चिन्तन-कीर्तन करता है। ‘उत्कीर्तन सूत्र’ में चौबीस तीर्थङ्करों तथा अन्य जो केवली भगवान हुये हैं उनकी स्तुति है। स्तुति उन तीर्थङ्कर प्रभु की है, जो पापरूपी रज से रहित हैं, जरा-मरण के चक्र से मुक्त हैं। इनसे साधक यश, मान, धन आदि की कामना नहीं करता, वह तो भक्ति के बदले में मुक्ति चाहता है। इस आकांक्षा में विवशता नहीं, दीनता नहीं, पुरुषार्थ की शक्ति और मनोबल की प्रधानता है। वह मुक्ति को पाने के बाद स्वयं स्तुति योग्य बन जायेगा। उसे फिर किसी की चाह न रहेगी।

इस स्तुति के बाद साधक निश्चित काल के लिए सामायिक व्रत का संकल्प करता है, प्रतिज्ञा करता है। दूसरे शब्दों में सामायिक ग्रहण करता है। सामायिक ग्रहण करने का पाठ यों बहुत संक्षिप्त है, पर उसकी पूर्व भूमिका में

जो अन्य चार पाठ जिनका विवेचन किया जा चुका है, उनसे सूचित होता है कि साधक आत्मा को पवित्र बनाकर, विषय-कषाय की ज्वाला शान्त कर इस ब्रत-वेदिका की ओर अग्रसर होता है। वैदिक विधि-विधानों में धर्म-क्रिया के पहले बाह्य शारीरिक शुद्धि आदि को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है, पर यहाँ सामायिक साधना में आरम्भ से ही शारीरिक शुद्धि को विशेष महत्त्व न देकर आन्तरिक पवित्रता पर ही बल दिया गया है। यही कारण है कि साधक ईर्यापथिक, उत्तरीकरण, उत्कीर्तन आदि सूत्रों द्वारा आत्मा की मलिनता को धोकर, पापकारी प्रवृत्तियों से पीछे हटकर सामायिक की प्रतिज्ञा करता है। यह ब्रत-ग्रहण सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। इसमें अन्य वैदिक मन्त्रों की भाँति किसी पर प्रहार करने की, दुष्टों को नष्ट करने की प्रार्थना नहीं की गई है, वरन् अपनी ही आत्मा को पाप-कर्म से बचाने का शुभ एवं दृढ़ निर्णय लिया गया है। इससे जैन-धर्म की निर्मलता, सदाशयता, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, स्नेह और करुणा की भावना प्रतिफलित होती है।

इस ब्रत-ग्रहण के बाद साधक फिर जिनेश्वर भगवान को नमस्कार करता है, उनकी स्तुति करता है ताकि वह अहंभाव से विरत रहे। इस शक्रस्तव पाठ में परमात्मा के लिए जिन विशेषणों का प्रयोग किया गया है उनसे इस भावना का पता लग जाना चाहिये कि उसमें लोकहित के लिए कितनी तड़प और गुंजाइश है। यहाँ का प्रभु सच्चे अर्थों में लोकनायक है, वह कदापि लोकशासक नहीं है। लोकनायक का आदर्श ही यह होता है कि वह प्रेम से, स्वयं अपने आचरण से, बिना प्रतिकार या प्रतिफल की भावना से लोक का कल्याण करे। यही जैन तीर्थঙ्करों का आदर्श है। इसके विपरीत लोकशासक में अहं, प्रतिकार की भावना, स्वसुख की ललक और शारीरिक बल की प्रधानता होती है। वहाँ भय और आतंक का वातावरण होता है, सहकार और प्रेम का नहीं।

इस ‘शक्रस्तव सूत्र’ द्वारा तीर्थङ्करों के लोक हितकारी व्यक्तित्व की चिन्तना करने के बाद निश्चितकाल के लिए गृहीत सामायिक व्रत की सम्यक् प्रतिपालना में साधक लीन हो जाता है। इस काल में कभी वह स्वाध्याय करता है, कभी आत्म-चिन्तन, कभी प्रार्थना तथा भजनादि गाता है, कभी माला फेरता है, कभी ध्यान में तल्लीन होता है कभी जप में।

निश्चित काल व्यतीत होने पर साधक इस व्रत को विधिपूर्वक पूर्ण करता है। व्रत को पूर्ण करते समय फिर वही क्रम किंचित् परिवर्तन के साथ जो ग्रहण करते समय था-दोहराया जाता है। अन्त में सामायिक पारने का पाठ बोला जाता है, जिसमें साधक मन, वचन और काया के अतिचारों की आलोचना करता है। वह मन में उठे हुए बुरे चिन्तन के लिए, वचन के दुरुपयोग के लिए और शरीर की असंयम वृत्ति के लिए बार-बार प्रायश्चित्त करता है।

इस प्रायश्चित्त विधान में अपने ही दोषों को कुरेद-कुरेद कर देखने की प्रवृत्ति है। ऐसा नहीं है कि अपने दोषों को छिपाकर दूसरों पर उनको थोपने की वृत्ति या भावना हो। इस दोष-निरीक्षण प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक प्रभाव साधक की आत्मा पर पड़ता है और वह उत्तरोत्तर दोष रहित बनती जाती है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ‘सामायिक सूत्र’ में जिस सांस्कृतिक वातावरण का उभार है उसमें साधक की नम्रता, हृदय की उदारता, मन की पवित्रता, प्राणिमात्र के प्रति समभावना, अपनी लघुता, परम प्रभु की गुण-गरिमा, तीर्थङ्कर की लोकहितावही वृत्ति और शक्ति, शील, सौन्दर्यमयी जीवनधारा का मंगल गान गूँजता हुआ दिखाई देता है।

◆◇◆

## सामायिक में समभाव (समता) प्राप्ति के उपाय

समभाव का पर्याय ही सामायिक है और समभाव की चरम दशा ही सामायिक का उद्देश्य है। सामायिक में समभाव प्राप्ति के निम्न उपाय हैं-

**1. ममत्व-त्याग :** सामायिक करते समय तुम्हारा मन बाहर चला जाय तो यह समझो कि जिस चीज पर मन गया है वह भौतिक चीज मेरी नहीं है, उसमें ममता मत रखो। भगवान ने जब जिज्ञासु शिष्य की यह शिकायत सुनी कि भगवन्! मैं समता की दृष्टि से साधना करता हूँ, लेकिन मेरा मन अपनी मर्यादा से बाहर चला जाता है। इसलिए क्या उपाय है, क्या साधन है और किस तरह का प्रयत्न होना चाहिये जिससे मेरी साधना मन पूर्वक होती रहे, भान पूर्वक होती रहे और चित्त में मलिनता नहीं आवे। तो भगवान ने कहा-

संसार में दुःख के निमित्त अधिक हैं और शान्ति के निमित्त कम हैं, लेकिन वे दुःख के निमित्त बाहर से नहीं आये हैं। अपने मन में उत्पन्न हुये हैं, फिर भी बाहरी निमित्त मानव मन को चक्कर में डालें, उलझन में डालें तो मानव मन संक्लेश में फँस जाता है, दुःखी हो जाता है, कष्ट में हो जाता है। इसलिए इस राग (ममत्व) को घटाने के लिए दो तरह से उपाय करना चाहिये। जैसे दवाई भीतर पेट में ली जाती है और ऊपर से मालिश की जाती है। उसी तरह से भीतरी उपाय राग को घटाने का है और बाहरी उपाय आतापना लेने का है।

मन के बाहर जाने का सबसे बड़ा कारण राग है इसलिये उसको कम करो। राग कम करने का उपाय यह है कि बाहरी पदार्थों के साथ जो तुम्हारा अपनापन है, लगाव है, उसको अपना समझना छोड़ दो। यह समझ लो कि जो मेरा है वह मेरे पास है। जो दुनिया में है, बाहर है, वह मेरा नहीं है।

**2. सुकुमारता-त्याग :** दूसरा बाहरी उपाय यह बताया कि सुकुमारता-कोमलता का परित्याग करो, शरीर की आतापना बढ़ाओ, ताकि दुःख सहन करने का अभ्यास कर सको। अभ्यास रहेगा तो आपत्तियों का तथा कठिनाइयों का कभी मुकाबला करना पड़े तो मन में खेद नहीं होगा। जैसी भी परिस्थिति हो उसमें उपलब्ध साधनों में अपने आपको प्रसन्नता के साथ रखने का अभ्यास किया जाय। नर्म-गर्म आसन मिले तो, कभी खरखर मिले तो, कभी मलमल जैसा नर्म कपड़ा ओढ़ने को मिले तो, कभी गर्मी के मौसम में खेस मिल गया तो? यदि मन सधा हुआ है तो आपको जैसा मिला उसमें सन्तोष करोगे, राग-द्वेष नहीं होगा, मन चंचल नहीं होगा। इसलिए मन की चंचलता को रोकने के लिए सुकुमारता-त्याग का अभ्यास होना चाहिये।

**3. कामना-त्याग :** ‘कामे कमाही कमियं खु दुक्खं।’ प्रभु ने कहा कि हे साधक! यदि मन को बाहर जाने से रोकना चाहता है तो अपनी कामना का त्याग कर, कामना को वश में कर। जितनी-जितनी इच्छाएँ बढ़ेंगी उतना ही ज्यादा दुःख भोगना पड़ेगा। इच्छाएँ बढ़ाई, तो मन साधना से बाहर हो जायगा। अतः प्रभु ने कहा कि दुःख दूर करने की कुज्जी है- कामना दूर करना। बन्ध के हेतुओं को काटने के लिए एक ही चाबी को दो तरह से घुमाना है। यदि उस चाबी को जरा टेढ़ा घुमाया तो बन्धन खुल जायेगा। ताला खोलने के लिए वही चाबी है और बन्द करने के लिए भी वही चाबी है। एक छोटा-सा उदाहरण है ‘समता’। इसको उलटा करें तो ‘तामस’ बन जाता है। ‘तामस’ बन्ध का हेतु है। उसको यदि सुलटा कर दो तो ‘समता’ हो जायेगा।

**4. विकथा-त्याग :** सामायिक जैसी साधना को निर्मल और निर्दोष बनाकर आगे बढ़ाना है तो उसके लिए प्रभु ने कहा कि ‘विकथा’ का वर्जन करके चलो, क्योंकि जो आध्यात्मिक मार्ग की ओर आगे बढ़ाने की बजाय आध्यात्मिक मार्ग से पीछे मोड़ती है, उस कथा का नाम विकथा है। मानव निरन्तर ऐसी कथाएँ सुनता रहता है जो राग बढ़ाने वाली हैं, भोग बढ़ाने वाली हैं, क्रोध बढ़ाने वाली हैं। परिणामस्वरूप उसके मन में राग-द्वेष की वृद्धि होती है। इसलिये प्रभु ने कहा कि जो आत्मभाव की ओर ले जाने वाली नहीं है, आत्मभाव से मोड़ने वाली है, ऐसी कथाओं से दूर रह।

**5. लोकैषणा-त्याग :** आत्मा में जब तक शुद्ध दृष्टि उत्पन्न नहीं होती, शुद्ध आत्मकल्याण की कामना नहीं जागती और मन लौकिक एषणाओं से ऊपर नहीं उठ जाता, तब तक शुद्ध सामायिक की प्राप्ति नहीं होती। अतएव लौकिक कामना से प्रेरित होकर सामायिक का अनुष्ठान न किया जाय, वरन् कर्मबन्ध से बचने के लिए, संवर की प्राप्ति के लिए सामायिक का आराधन करना चाहिये। काम, राग और लोभ के झोंकों से साधना का दीप मन्द हो जाता है और कभी-कभी बुझ भी जाता है। अतएव आगमोक्त विधि से उत्कृष्ट प्रेम के साथ सामायिक करनी चाहिये। जो ऐसा करेगा उसका वर्तमान जीवन अलौकिक आनन्द से परिपूर्ण हो जाएगा और परलोक परम मंगलमय बन जाएगा।



## सामायिक के पाँच अतिचार

वीतराग देव ने आध्यात्मिक साधना का बड़ा महत्व बतलाया। जब कोई भी साधक साधना के महत्व को हृदयांगम करके उसके वास्तविक रूप को जीवन में उतारता है तो उसके जीवन का मोड़ निराला हो जाता है। एक ही प्रकार का कार्य करने वाले दो व्यक्तियों की आंतरिकवृत्ति में जमीन आसमान जितना अंतर हो सकता है। इस प्रकार एक-सी प्रवृत्ति में भी वृत्ति की जो भिन्नता होती है, उससे परिणाम में भी महान् अंतर पड़ जाता है। जितेन्द्रिय पुरुष के भोजन का प्रयोजन संयम-धर्म-साधक शरीर का निर्वाह करना मात्र होने से, वह कर्मबंध नहीं करता जबकि रसना लोलुप अपनी गृद्धि के कारण उसे कर्मबंध का कारण बना लेता है। यही नहीं, साधना विहीन व्यक्ति रूखा-सूखा भोजन करता हुआ भी हृदय में विद्यमान लोलुपता के कारण तीव्र कर्मबाँध लेता है जबकि साधना सम्पन्न पुरुष सरस भोजन करता हुआ भी अपनी अनासक्ति के कारण उससे बचा रहता है।

साधना शून्य मनुष्य के प्रत्येक कार्यकलाप में आसक्ति का विष घुला रहता है। किन्तु साधना शील मनुष्य उन्हीं कार्यों को अनासक्त भाव करता हुआ उनमें वीतरागता का अमृत भर देता है।

अध्यात्म-साधना का अर्थात् राग-द्वेष की वृत्ति का परित्याग करके समभाव जागृत करने का महत्व कम नहीं है और यही साधक के जीवन को निर्मल और उच्च बनाने का कारण बनता है।

आज व्रतों की साधना करने वाले थोड़े ही दिखाई देते हैं, इसका कारण

यह है कि लोग साधना के महत्व को ठीक तरह समझ नहीं पाये हैं और इसी कारण वे साधना के मार्ग में प्रवृत्त नहीं हो रहे हैं।

जो साधक भोगपभोग के साधनों के विषय में अपने मन को नियन्त्रित कर लेता है और उसकी सीमा निर्धारित कर लेता है, वह मानसिक संतुलन को प्राप्त करके सामायिक की साधना में तत्पर हो जाता है। संयम की साधना को विकसित करना उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है।

भगवान ने कहा—सामायिक व्रत के पाँच अतिचार हैं। साधक इन अतिचारों को समीचीन रूप से समझे और इनसे बचता रहे। इनका आचरण न करे।

सामायिक तन और मन की साधना है। इस व्रत की आराधना में तन की दृष्टि से इन्द्रियों पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है, और मन की दृष्टि से उसके उद्वेग एवं चांचल्य का निरोध किया जाता है। किन्तु अनादिकाल से विभाव में रमण करने वाला और विषम भावों के विष से प्रभावित कोई भी जीव सहसा सम्भाव की उच्चतर भूमिका पर नहीं पहुँच सकता। सम्भाव को प्राप्त करने और बढ़ाने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। जैसे—अखाड़े में व्यायाम करने वाला व्यक्ति अपने शारीरिक बल को बढ़ाता है, वैसे ही सामायिक द्वारा साधक अपनी मानसिक दुर्बलताओं को दूर करके सम्भाव और संयम को प्राप्त करता है। अतएव प्रकारांतर से सामायिक के साधनों को मन का व्यायाम कहा जा सकता है।

सामायिक व्रत की आराधना करने में अतिचार लग सकते हैं, वे इस प्रकार हैं—**(1) मण-दुष्पणिहाणे**—सामायिक का पहला अतिचार ‘मनः दुष्पणिधान’ है जिसका तात्पर्य है मन का अशुभ व्यापार। सामायिक के समय में साधक को ऐसे विचार नहीं करने चाहिए जो सदोष या पापयुक्त हों। सामायिक में मन आत्मोन्मुख होकर एकाग्र बन जाना चाहिए। एकाग्रता को खण्डित करने वाले विचारों को मन में स्थान देना या आत्मचिंतन से विमुख करने वाले विचारों का मन में प्रवेश होने देना साधक की पहली दुर्बलता है।

मन की बड़ी शक्ति है। उसके प्रशस्त व्यापार से स्वर्ग, मोक्ष और अप्रशस्त व्यापार से नरक तैयार समझिए। कहा है- ‘मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।’

किसी जलाशय का पानी व्यर्थ बहाया जाय तो वह कीड़े उत्पन्न करता है और संहारक बन जाता है और यदि उसी जल का उचित उपयोग किया जाय तो अनेक खेत लहलहाने लगते हैं। मानसिक शक्ति का भी यही हाल है। मानसिक शक्ति के सदुपयोग में अलौकिक शांति प्राप्त की जा सकती है। अतएव मन को काबू में करना साधना का प्रधान अंग है। मन में गर्व, क्रोध, कामना, भय आदि को स्थान देकर यदि कोई सामायिक करता है तो ये सब मानसिक दोष इसे मलिन बना देते हैं। पति और पत्नी में या पिता और पुत्र में आपसी रंजिश पैदा हो जाय तब रुष्ट होकर काम न करके सामायिक में बैठ जाना भी दूषण है। अभिमान के वशीभूत होकर या पुत्र, धन, विद्या आदि के लाभ की कामना से प्रेरित होकर सामायिक की जाती है तो वह भी मानसिक दोष है। अप्रशस्त मानसिक विचारों के कारण सामायिक से आनंद लाभ के बदले उलटा कर्मबंध होता है। अतएव साधक को इस ओर से सावधान रहना चाहिए और प्रसन्न एवं शांतचित्त से सम्भाव को जागृत करने के उद्देश्य से, वीतराग भाव की वृद्धि के लिए तथा कर्म-निर्जरा के हेतु ही सामायिक की आराधना करनी चाहिए।

(2) वय-दुष्पणिहाणे—सामायिक का दूसरा अतिचार है वचन का दुष्प्रणिधान अर्थात् वचन का अप्रशस्त व्यापार। सामायिक के समय आत्म-चिंतन, भगवत् स्मरण या आत्म-मरण की ही प्रधानता होती है, अतएव सर्वोत्तम यही होगा कि मौन भाव से सामायिक का आराधन किया जाय। यदि आवश्यकता हो और बोलने का अवसर आए तो भी संसार-व्यवहार संबंधी बातें नहीं करनी चाहिए। हाट, हवेली या बाजार संबंधी बातें न करें, काम कथा और युद्ध कथा से सर्वथा बचते रहें। कुटुम्ब-परिवार के हानि-लाभ की

बातें करना भी सामायिक को दूषित करना है। भगवान महावीर ने कहा—  
“मानव ! सामायिक आत्मोपासना का परम साधन है। अतएव सामायिक के काल में अपनी आत्मा के स्वरूप को निहार, आत्मा के अनंत-अज्ञात वैभव को पहचानने का प्रयत्न कर, भेद विज्ञान की अलौकिक ज्योति को वृद्धिगत कर, मन की एकाग्रता के साथ वचन को गोपन कर और सम्पूर्ण काययोग को अपनी ही आत्मा में समाहित कर। कम से कम वचन का दुष्प्रणिधान तो मतकर। ऐसा बोल जो हित, मित, तथ्य, पथ्य और निर्दोष है।

सामायिक के समय परमात्मा की स्तुति और शास्त्र या सत्साहित्य पठन में वाणी का प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा करना वचन का सुप्रणिधान है।

(3) काय-दुष्प्रणिहाणे—सामायिक का तीसरा दूषण शरीर का दुष्प्रणिधान है। शरीर के अंग-प्रत्यंग की चेष्टा सामायिक में बाधक न हो—इसके लिए यह आवश्यक है कि इन्द्रियाँ एवं शरीर द्वारा अयतना का व्यवहार न हो। सामायिक की निर्दोष साधना के लिए यह अपेक्षित है। इधर-उधर घूमना, बिना देखे चलना, पैरों को घुमाते हुए चलना, रात्रि में बिना पूँजे चलना, बिना देखे हाथ-पैर फैलाना आदि काय के दुष्प्रणिधान के अंतर्गत हैं। मन, वचन और काय का दुष्प्रणिधान होने पर सामायिक का वास्तविक आनंद प्राप्त नहीं होता।

किसी गाँव में एक बुढ़िया थी। पुत्रादि परिवार के होने से स्नेहवशात् रात-दिन घर-गृहस्थी के कार्य में ही रचती-पचती रहती थी। सौभाग्य से उस गाँव में एक महात्मा जा पहुँचे। बुढ़िया के पुत्र बहुत शिष्ट और साधु सेवी थे। वे महात्मा की सेवा में पहुँच कर और बहुत आग्रह करके उनको अपने घर लाए और महात्मा से निवेदन किया—“महाराज! हमारी माता वृद्धावस्था में भी कोई धर्मकृत्य नहीं करती। उन्हें यदि कुछ प्रेरणा करें और नियम दिला दें तो उनका कल्याण होगा।”

महात्मा ने उत्तर दिया, जैसा अवसर होगा, देखा जायगा। पर संत-महात्मा परोपकार परायण होते हैं। वे आत्म-कल्याण के साथ पर-कल्याण को भी अपने जीवन का ध्येय मानते हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि-परोपकार को भी वे आत्मोपकार का ही एक अंग समझते हैं। अतएव महात्मा भिक्षा के अवसर पर उनके घर पहुँचे। लड़के भिक्षा देने लगे तो वृद्धा ने कहा-“आज तो मुझे लाभ लेने दो।” लड़के एक ओर हो गये और वृद्धा, महात्मा को आहार देने लगी। महात्मा ने उससे कहा-“बाई! तुम्हारे हाथ से हम तभी भिक्षा ग्रहण करेंगे जब कुछ धार्मिक नियम ग्रहण करोगी।” बुद्धिया नहीं चाहती थी कि महात्मा उसके द्वार पर पधार कर खाली लौटें, अतः उसने प्रतिदिन एक सामायिक करने का नियम ले लिया। महात्मा उसके हाथ से भिक्षा लेकर अपने स्थान पर चले गये। वृद्धा प्रतिदिन समय-असमय मुहूर्त भर साधना कर लेती थी। एक दिन भोजन से निवृत्त हो जाने के पश्चात् उसकी बहुएँ गाँव में इधर-उधर मिलने चली गई। चने भिगोये गये थे सो घर के बाहर चबूतरे पर सूख रहे थे। वृद्धा घर के बाहर सामायिक करने बैठी थी, अतएव बहुओं ने बाहर जाते समय मकान का ताला लगा दिया और चाबी द्वार पर एक ओर लटका दी।

संयोगवश उसके एक लड़के को पसेरी की आवश्यकता पड़ी और वह उसे लेने के लिए घर आया। उसने दरवाजा बंद देखकर वापस लौटने का उपक्रम किया। बुद्धिया बैठी-बैठी यह सब देख रही थी, मगर सामायिक में होने से कुछ कहने में संकोच कर रही थी, किन्तु अंत में उससे रहा नहीं गया। उसने सोचा लड़के को व्यर्थ ही चक्कर होगा, और व्यापार के काम में बाधा पड़ेगी। इधर उसके मन में यह संकल्प-विकल्प चल ही रहा था कि अचानक एक भैंसा उधर आ निकला और चनों की ओर बढ़ने लगा। बुद्धिया के लिए चुप रहना अब असंभव हो गया, परंतु सामायिक के भंग होने का भय भी उसके चित्त में समाया हुआ था। वह एकांत शान्त स्थान में सामायिक करती

तो इस द्वन्द्व से बच सकती थी, किन्तु वह तो घर की रक्षक बनकर सामायिक का स्वांग रच रही थी। इसलिए बुद्धिया ने इस अवसर पर आत्मवंचना का ही अवलंबन लिया। वह शांतिनाथ भगवान की प्रार्थना के बहाने कहने लगी—‘बेटा जरा शांतिनाथ भगवान की प्रार्थना सुन ले, मैं सामायिक में हूँ, प्रार्थना यों हैं—

“पाड़ो दाल चेरे, कूँची घोड़ा परे, पंसेरी घट्टी तले, मोही तारो जी श्री शांतिनाथ भगवान, मोहि पार उतारो जी।” लड़के ने यह प्रार्थना सुनी और उसके मर्म को समझ लिया। उसने भैंसे को भगा दिया, कूँची (चाबी) प्राप्त कर ली और पंसेरी लेकर चला गया।

इस प्रकार सामायिक करने का स्वाँग करने से, दंभ करने से और आत्म प्रवंचना करने से अनंतकाल में भी कार्य सिद्धि होने वाली नहीं है। धर्म उसी के मन में रहता है जो निर्मल हो। माया और दंभ से परिपूर्ण हृदय में धर्म का प्रवेश नहीं हो सकता। बुद्धिया के जैसी चेष्टा करने से मन का, वचन का और काया का भी दुष्प्रणिधान होता है और इससे सामायिक का प्रदर्शन भले हो जाय, वास्तविक सामायिक के फल की प्राप्ति का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

**(4) सामाइङ्गस्स सङ्ग अकरणया—**सामायिक काल में सामायिक की स्मृति न रहना भी सामायिक का अतिचार है। सामायिक की वेशभूषा इसका स्मरण कराती है, इसलिए भी मुँहपत्ती एवं वेशभूषा का महत्व है। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को शिरोमुण्डन से ही यह स्मरण हुआ कि वे राजपाट छोड़कर साधु बन गए हैं, अतः वे युद्ध सम्बन्धी अनावश्यक चिन्तन से बच सके।

**(5) सामाइङ्गस्स अणवट्टियस्स करणया—**व्यवस्थित रूप से अर्थात् आगमोक्त पद्धति से सामायिक व्रत का अनुष्ठान न करने से इस अतिचार का भागी होना पड़ता है। सामायिक अंगीकार करके प्रमाद में समय व्यतीत कर देना, नियम के निर्वाह के लिए जल्दी-जल्दी सामायिक करके समाप्त कर

देना, चित्त में विषम-भाव को स्थान देना आदि इस ब्रत के अतिचार के अंतर्गत हैं।

सामायिक-साधना की अंतिम दशा समाधि है, जैसे योगशास्त्र के अनुसार योग की अंतिम स्थिति समाधि है। समाधि की स्थिति में पहुँच जाने पर साधक शोक और चिंता के कारण उपस्थित होने पर भी आनन्द में मग्न रहता है। शोक उसके अंतःकरण को म्लान नहीं कर सकता और चिंता उसके चित्त में चंचलता उत्पन्न नहीं कर सकती। वह आत्मानंद में मस्त हो जाता है। इसी अद्भुत आनंद की प्राप्ति के लिए चक्रवर्तियों ने और बड़े-बड़े सम्राटों ने भी अपने साम्राज्य को तिनके की तरह त्यागकर सामायिक ब्रत को अंगीकार किया था। वस्तुतः सामायिक में निराला ही आनंद है। उस आनंद के सामने विषयजन्य सुख किसी गिनती में नहीं है। मगर शर्त यही है कि सामायिक सच्ची सामायिक हो, भाव सामायिक हो और उसके अनुष्ठान में स्व-पर वंचना को स्थान न हो।

◆◇◆

## सामायिक के बत्तीस दोष

सामायिक समस्त आत्मिक-साधना का सार है। यह एक अलौकिक अद्भुत साधना है जिसे करके श्रावक भी अल्प समय के लिए श्रमणवत् बन जाता है। सामायिक वह अमोघ औषधि है जिसको धारण करने से समस्त आधियाँ नष्ट होकर जीवन में एक अपूर्व आनन्दानुभूति होती है। यही वह अमर-साधना है जिसके नित्य-प्रति सम्पादन से जीवन आध्यात्मिक ज्ञान की निधि से जगमगाने लगता है, उसमें अद्वितीय शांति अनुभव होने लगती है। पर यह तभी होता है जबकि साधना, पूर्ण रूप से दोष रहित हो, क्योंकि मन, वचन, कायादि योगों द्वारा लगने वाले दोष ही वे छेद हैं जो कि इस आध्यात्मिक लक्ष्मी को आत्म-निवास में नहीं रहने देते।

मन, वचन और काया ये कार्य सम्पादन के तीन साधन हैं। यदि इनका सदुपयोग किया जाय तो आत्मा में अद्भुत शक्ति का संचार हो सकता है और यदि इन्हीं को सांसारिक प्रवृत्तियों में लगाया जाय तो आत्मा पतन के गर्त में गिर सकती है। अतएव इस त्रिविधि शक्ति को व्यर्थ न गँवा कर, सामायिक रूपी अलौकिक धन की उपलब्धि से सफल बनाने में ही बुद्धिमत्ता है। त्रिविधि शक्ति को सही मार्ग में प्रवृत्त करें, इसके पूर्व यह जान लेना आवश्यक होगा कि इन शक्तियों के दुरुपयोगजन्य दोष कौन-कौन से हैं, जो हमारी साधना को मलिन कर सकते हैं।

ये दोष बत्तीस हैं। मन, वचन, काया के अनुसार इनका तीन भागों में वर्गीकरण किया गया है।

## मन के दस दोष-

**अविवेग जसोकित्ती, लाभत्थी गब्ब-भय-नियाण्टथी ।  
संसय रोस अविणओ, अबहुमाण ए दस दोसा भणियब्बा ॥**

**1. अविवेग (अविवेक)**-समय-असमय का विचार न रखकर अविवेक से सामायिक करना और शरीर एवं कुटुम्ब की बाधा का बिना ख़याल किये ब्रत करना अविवेक दोष है । सामायिक के स्वरूप व उद्देश्य को यथार्थ रूप में न समझना भी अविवेक दोष है ।

**2. जसोकित्ती (यशोकीर्ति)**-यश-कीर्ति की कामना से प्रेरित होकर सामायिक करना अथवा सामायिक में आत्म-प्रशंसा की चाह करना ठीक नहीं । ऐसा करने से सामायिक में राग एवं मोह की वृद्धि होती है, अतः यह सामायिक का दूसरा दोष है ।

**3. लाभत्थी (लाभार्थ)**-सामायिक करने से सांसारिक धन-जन आदि का लाभ होगा, मुकदमे में जीत हो जाएगी, इस प्रकार सांसारिक लाभ के लिए सामायिक करना भी ब्रत का दोष है ।

**4. गब्ब (गर्व)**-सामायिक की साधना करना आत्महित के लिए है, उससे यह समझना कि मैं बहुत बड़ा धर्मात्मा हूँ । मैं इतनी सामायिकें करता हूँ । मेरे बराबर शुद्ध सामायिक करने वाला और कौन है ? इस प्रकार के भाव लाना या अहंकार से सामायिक करना गर्व दोष है ।

**5. भय-राज भय, लोक भय या शिक्षक आदि के दण्ड भय से बचने के लिए सामायिक करना भय दोष है ।**

**6. नियाण्टथी (निदान)**-सामायिक करके प्रतिफल में किसी पदार्थ, ऐश्वर्य या सुख की अभिलाषा करना चिन्तामणि रत्न को कोड़ियों के बदले बेचना है । अनजान साधक सामायिक के बदले सांसारिक भोग-विलासों की कामना कर इस अखूट वैभव को व्यर्थ गँवा देता है । यह निदान दोष है ।

**7. संसय (संशय )-**मानसिक दृढ़ता व श्रद्धा की कमी के कारण सामायिक करते हुए भी इसकी महत्ता पर सर्वसाधारण को विश्वास नहीं हो पाता । मन में सदा एक सन्देह सा बना रहता है कि न जाने इसका फल प्राप्त होगा या नहीं ? ऐसे भाव लाकर सामायिक की महत्ता में सन्देहात्मक स्थिति उत्पन्न करना संशय दोष है ।

**8. रोस (रोष)-**लड़ाई-झगड़ा कर या रूठ कर सामायिक लेकर बैठना यह रोष दोष है । क्रोध की स्थिति में समत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती और समता के बिना सामायिक भी नहीं हो पाती ।

**9. अविणओ (अविनय)-**देव, गुरु, धर्म व सामायिक व्रत के प्रति आदर भाव न रखकर उपेक्षित भाव रखना अविनय दोष है ।

**10. अबहुमाण (अबहुमान)-**अनुत्साहपूर्वक बेगारी की माफिक सामायिक करना अबहुमान है, व्रत का अपमान है । कुली की तरह सामायिक को एक असहनीय भार समझना, कब समय व्यतीत हो और इससे निवृत्त होऊँ ऐसे भाव लाना, सामायिक में बार-बार घड़ी देखना, मिनिट-मिनिट गिनना व व्रत पूर्ण होते ही बन्धन-मुक्त पशु की तरह भागना अबहुमान दोष है ।

**वचन के दस दोष-**

कुवयण सहसागारे, सच्छंद-संखेव-कलहं च ।

विग्हा विहासोऽसुद्धं निरवेक्खो मुणमुणा दोसा दस ॥

**1. कुवयण (कुवचन)-**सामायिक काल में कुत्सित अर्थात् अश्लील, गन्दे या कषाय युक्त वचन बोलना कुवचन दोष है ।

**2. सहसागारे (सहसाकार)-**साधक को समय-असमय और परिस्थितियों का विचार कर ही वाणी का ताला खोलना चाहिए । बिना विचारे जो मन में आ जाय वैसा बोलना सहसाकार दोष है ।

**3. सच्छंद (स्वच्छन्द)**-सामायिक में राग, द्वेष, विषय-विकार-वर्द्धक मनमाने गन्दे गीत गाना एवं निरंकुश होकर बोलना स्वच्छन्द दोष है ।

**4. संखेव (संक्षेप)**—सामायिक या अन्य किसी सूत्र के पाठों को संक्षेप करके अपूर्ण उच्चारण करना, यथार्थ रूप में न पढ़ते हुए कुछ अक्षर छोड़ देना, कुछ पढ़ लेना, यह जिनवाणी का अपमान व सामायिक व्रत का दोष है।

**5. कलह (कलह)**—सामायिक में कलह पैदा करने वाले वचन बोलना, मर्मभेदी वचन बोलकर पुराने क्लेश जागृत करना तथा झगड़ा उत्पन्न करना, निंदा करना, सम्प्रदाय विशेष की प्रशंसा व निंदा करना आदि कलह दोष है।।

**6. विगहा (विकथा)**—सामायिक एक विशुद्ध आध्यात्मिक अनुष्ठान है जिसमें सिर्फ आत्मा सम्बन्धी चिन्तन, मनन व कथा करनी चाहिए। संसार सम्बन्धी कथा करना दोष रूप है। सांसारिक कथाओं को हमारे यहाँ विकथा कहा गया है। ये चार हैं—

- (1) **स्त्री कथा**—स्त्रियों की, राज-राजेश्वरियों, अभिनेत्रियों के रूप, सौन्दर्य व शृङ्गारादि की चर्चा करना।
- (2) **राजकथा**—राजनैतिक चर्चा, वाद-विवाद करना।
- (3) **भक्तकथा**—भोजन, खाने-पीने सम्बन्धी बातें करना।
- (4) **देशकथा**—देश-देशान्तर, ग्राम, नगर आदि की चर्चा करना।

**7. विहासो (हास्य)**—सामायिक में हँसी ठट्ठा करना, किसी की मजाक उड़ाना, व्यंग करना, कौतूहल करना व किसी को खिसियाने पर मजबूर करना हास्य दोष है।

**8. असुद्ध (अशुद्ध)**—सामायिकादि सूत्र पाठों में हस्त के स्थान पर दीर्घ, दीर्घ के स्थान पर हस्त, कम-ज्यादा मात्राएँ बोलना, शुद्धि की ओर ध्यान दिये बिना ही लापरवाही पूर्वक उच्चारण करना अशुद्धि दोष है।

**9. निरवेक्खो (निरपेक्ष)**—शास्त्र के दृष्टिकोण का विचार न करके बोलना, परस्पर असंगत विरोध-जनक और दूसरों को दुःख उपजाने वाले वाक्य कहना तथा जिनवाणी की उपेक्षा करना निरपेक्ष दोष है।

**10. मुणमुणा** (मुम्मण) – गुनगुनाते हुए इस प्रकार बोलना जिससे सुनने वाला पूरी तरह न समझ सके, मुम्मण दोष है।

**काया के बारह दोष-**

कुआसणं चलासणं चलदिट्ठी, सावज्जकिरियालंबणाकुंचणपसारणं ।  
आलस्स मोडण मल विमासणं, निद्वावेयावच्चत्ति बारस्स कायदोसा ॥

**1. कुआसण** (कुआसन) – सामायिक में पैर पर पैर चढ़ा कर बैठना, टेढ़ा-मेढ़ा या अन्य किसी अशिष्ट आसन से बैठना, गुरुजनों के प्रति, पीठ करके बैठना आदि ‘कुआसन’ दोष है।

**2. चलासण** (चलासन) – चलासन दो प्रकार से हो सकता है। स्वभाव की चपलता से बिना कारण बार-बार आसन बदलना, उठना-बैठना जीवधात का कारण है, अतः दोष रूप है। इसके अतिरिक्त डगमगाते हुए शिला, पाट आदि पर बैठने से उनके नीचे स्थित जन्तु कुचल जाते हैं; तथा जिस स्थान पर बैठक से बार-बार उठना पड़े, ऐसे स्थान पर बैठना भी उचित नहीं है अतः ये सब दोष रूप हैं।

**3. चलदिट्ठी** (चल दृष्टि) – चंचल दृष्टि रखना, बिना कारण ही इधर-उधर देखते रहना व अपनी चक्षु इन्द्रिय को वश में न रखना ये चल दृष्टि दोष में सम्मिलित हैं।

**4. सावज्जकिरिया** (सावद्य क्रिया) – सामायिक के समय में सावद्य यानी पापकारी या वर्जनीय कार्य करना सावद्य दोष है। जैसे हिसाब-लेखन, चेक पर हस्ताक्षर, सिलाई, कसीदा, अचित्त पानी से लेपन या स्नान कराना, बच्चे को खिलाना, गोद में लेना आदि गृह कार्य यह समझते हुए कि इनमें किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती है, करना सावद्य क्रिया दोष है।

**5. आलम्बण** (आलम्बन) – बिना किसी कारण के भीत, स्तम्भादि का सहारा लेकर बैठना आलम्बन दोष है। ऐसा करने से भीत, स्तम्भादि के

आश्रित अनेक जीवों की घात होती है तथा निद्रा व प्रमादादि दोषों की वृद्धि सम्भव है।

**6. आकुञ्चन प्रसारण (आकुञ्चन प्रसारण)**—बिना किसी विशेष प्रयोजन के हाथ—पैर व शरीर के अंगों को बार-बार फैलाना व सिकोड़ना ‘आकुञ्चन प्रसारण’ दोष है।

**7. आलस (आलस्य)**—सामायिक में अंग मरोड़ना, जम्भाइयाँ लेना, शरीर को इधर-उधर पटकना आदि आलस्य के उदाहरण हैं।

**8. मोड़न (मोड़ना)**—सामायिक में बैठे हुए हाथ—पैर की अँगुलियों तथा शरीर के अन्य भागों को चटकाना, मोड़न दोष है।

**9. मल**—सामायिक करते समय शरीर पर से मैल उतारना ‘मल’ दोष है।

**10. विमासण (विमासन)**—हथेली पर सिर रखकर, जमीन की तरफ दृष्टि रखकर या गाल पर हाथ लगाकर शोकग्रस्त, चिन्ता-निमग्न व्यक्ति की तरह चिन्ता के आसन से बैठना विमासन दोष है।

**11. निद्रा (निद्रा)**—सामायिक व्रत में बैठे-बैठे ऊँधना, नींद लेना आदि निद्रा दोष है।

**12. वैय्यावच्च (वैयावृत्त्य)**—सामायिक में दूसरों से अपनी सेवा करवाना, हाथ—पैरों के मालिश करना या दूसरे अवृत्ति की सेवा करना आदि वैय्यावृत्त्य दोष है। व्रतधारी की सेवा की जा सकती है।

उपर्युक्त दोष सामायिक की साधना को दूषित करते हैं। अतः सुज्ञ साधकों को इनका यथावत् स्वरूप समझकर इनसे बचने का प्रयास कर, मन, वचन व काया रूपी त्रिविध शक्ति को उत्कृष्ट संवर-धर्म की उपासना में लगाना चाहिए।



## सामायिक की दुर्लभता एवं महत्व

जैन धर्म में ‘सामायिक’ का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। यह सभी साधनाओं की भूमि है। पौषधादि सभी व्रत सामायिक से प्रारम्भ होते हैं। तीर्थঙ्कर भगवान् भी जब साधना-मार्ग में प्रवेश करते हैं तो सर्वप्रथम सामायिक चारित्र स्वीकार करते हैं। जैसे आकाश सम्पूर्ण चराचर वस्तुओं का आधार है वैसे ही सामायिक चरणकरणादि गुणों का आधार है।

सामायिकं गुणानामाधारः खमिव सर्वभावानाम् ।  
न हि सामायिकहीनाश्चरणादिगुणान्विता येन ॥

बिना समत्व के संयम या तप के गुण टिक नहीं सकते। हिंसादि दोष सामायिक में सहज ही छोड़ दिये जाते हैं। अतः आत्म-स्वरूप को पाने की इसे मुख्य सीढ़ी कह सकते हैं।

सामायिक-साधना से आध्यात्मिक आलोक प्रकट होता है। सामायिक ही वह साधना है जिसे सम्पन्न कर आत्मा परमात्मा, जीव शिव व भक्त भगवान् बन सकता है। भगवान् महावीर ने अपने दिव्य आघोष में कहा-

‘जे केवि गया मोक्षं, जेवि य गच्छति जे गमिस्संति ।  
ते सब्वे सामाइय, पभावेण मुण्येयव्वं ।  
किं तिव्वेण तवेण, किं च जवेणं किं चरित्तेण ।  
समयाङ्ग विण मुक्खो, न हु हुओ कहवि न हु होइ ॥’

अर्थात् भूत में जो भी साधक मोक्ष में गये, वर्तमान में जो जाते हैं और भविष्य में जायेंगे, वे सभी सामायिक के प्रभाव से ही। यह कार्य-सिद्धि

सामायिक से ही सम्भव है। सामायिक मुक्ति-मार्ग का आवश्यक पड़ाव है। अगर सम-भाव रूप सामायिक की प्राप्ति नहीं हुई है तो कोई व्यक्ति चाहे कितना ही तप तपे, कितना ही जप जपे, कितना ही स्थूल चारित्र (क्रिया काण्ड) पाले, मुक्ति की प्राप्ति के लिए सब व्यर्थ है।

सामायिक का साधक आध्यात्मिक विकास के क्षेत्र में पहली पंक्ति का सैनिक है। उसकी बराबरी न तो दानी और न ही तपस्वी कर सकता है। वह उन सबसे आगे है। जिनवाणी का दिव्य आघोष सुनिये, समझिए यह स्पष्ट रूप से सामायिक का महत्व प्रतिपादित कर रहा है तथा इसको अन्य कार्यों से श्रेष्ठतम् साबित कर रहा है-

दिवसे दिवसे लक्खं, देइ सुवण्णस्स खंडियं एगो ।  
एगो पुण सामाइयं, करेइ न पहुप्पए तस्स ॥

एक ओर एक व्यक्ति मुक्त हस्त से नित्य प्रति एक लक्ष स्वर्ण-मुद्राओं का दान करता है और दूसरी ओर एक व्यक्ति है जो मात्र दो घड़ी (48 मिनिट) सामायिक करता है तो दोनों में से सामायिक वाला व्यक्ति श्रेष्ठ है। लक्ष मुद्राओं का दान एक सामायिक की भी समानता नहीं कर सकता। दोहे के रूप में भी कहा है-

लाख खण्ड सोना तणी, क्रोड वर्ष दे दान ।  
सामायिक तुल्य नहीं, भाख्यो श्री भगवान ॥

वस्तुतः सामायिक, कर्म-रोग के विनाश के लिए रामबाण औषधि है। समभाव रूप सामायिक में संवर एवं निर्जरा दोनों का ही सुन्दर समन्वय है। संवर नए कर्मों के आवागमन पर रोक है, तो निर्जरा पूर्व संचित कर्मों का क्षय है। करोड़ों जन्मों तक निरन्तर उग्र तपस्या करने वाला साधक जिन कर्मों का क्षय नहीं कर सकता, उनको सामायिक का साधक मात्र आधे क्षण में ही क्षय करने में समर्थ है। तभी तो आचार्यों ने कहा है-

‘सामायिक-विशुद्धात्मा, सर्वथा घातिकर्मणः ।  
क्षयात्केवलमाप्नोति, लोकालोकप्रकाशकम् ॥’

अर्थात् सामायिक से विशुद्ध बना हुआ आत्मा, ज्ञानावरणादि चारों  
घनघाती कर्मों का मूलतः नाश कर सर्व लोकालोक को प्रकाशित करने वाले  
केवल ज्ञान को प्राप्त कर लेता है ।

तिव्वतवं तवमाणे, जं नवि निष्टव्वइ जम्मकोडीहिं ।  
तं समभाविअचित्तो, खवेइ कम्मं खणद्वेण ॥

अर्थात् करोड़ों जन्म तक निरन्तर उग्र तपश्चरण करने वाला साधक  
जिन कर्मों को नष्ट नहीं कर सकता, उनको समभाव-पूर्वक सामायिक करने  
वाला साधक मात्र आधे ही क्षण में नष्टकर डालता है ।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी कहते हैं-

सामाइअम्मि उकए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।  
एण कारणेण, बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥

अर्थात् सामायिक ब्रत भली-भाँति ग्रहण कर लेने पर श्रावक भी साधु  
जैसा हो जाता है, अतः आध्यात्मिक उच्च दशा को पाने के लिए अधिक से  
अधिक सामायिक करना चाहिए ।

सामाइय-वय-जुत्तो, जाव मणो होइ नियमसंजुत्तो ।  
छिन्नइ असुहं कम्मं, सामाइय जत्तिया वारा ॥

चंचल मन को नियंत्रण में रखते हुए जब तक सामायिक-ब्रत की  
अखंडधारा चालू रहती है, तब तक अशुभ कर्म बराबर क्षीण होते रहते हैं ।

सामायिक को चौदह पूर्वों का तथा द्वादशांगी का सार भी कहा गया है ।  
विशेषावश्यक भाष्य की गाथा 2796 में कहा गया है कि- ‘‘सामाइयं संखेवो

**‘चोदस्स पुव्वत्थपिंडोन्ति’** अर्थात् सामायिक नामक व्रत चौदह पूर्वों का सारभूत पिण्ड है। ‘तत्वार्थ सूत्र’ पर भाष्य में वाचक उमास्वाति ने सामायिक व्रत की महिमा पर प्रकाश डालते हुए बतलाया है कि मनुष्यता के पूर्ण विकास के लिए सामायिक एक सर्वोच्च साधन है और द्वादशांगी का सार है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामायिक एक अद्भुत साधना है। यह उत्थान का अलौकिक राजमार्ग है। सामायिक कोई ऐसी वस्तु नहीं जो मोल देकर क्रय की जा सके। दुनियाँ की कोई सम्पदा, राज्य या पद इसको क्रय नहीं कर सकता। सामायिक स्वयं ही अपने आपका मूल्य है। अर्थात् इसे वही प्राप्त कर सकता है जो इसकी साधना करे। ऐसी अनमोल दिव्य साधना है यह।

जिनवाणी का हमारे पर महान् उपकार है जिससे हमें इसका महत्व जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है तो क्यों न हम भी इस ओर अपने कुछ चरण आगे बढ़ायें व अपनी मंजिल को पाने की तैयारी करें। सतत साधना एक दिन अवश्य ही शुद्ध सामायिक की प्राप्ति करायेगी, भले ही प्रारम्भ में मन की चंचलता बाधक क्यों न हो। यही एक मात्र ऐसा उपाय है जो आने वाले समाज में धार्मिक निष्ठा, चारित्रिक दृढ़ता व मानवीय विश्वास तथा अनुशासन बनाये रख सकता है। यही विश्व शान्ति का सच्चा उपाय है।



## सामायिक का मूल्य

गृहीत, स्वीकृत साधना के प्रति सर्वतो भावेन समर्पित साधक साध्य को संप्राप्त कर लेता है। ब्रत लेना महत्त्वपूर्ण है और ब्रत की निरतिचार परिपालना उसमें चार चाँद लगा देती है। पूणिया श्रावक प्रतिदिन एक निर्दोष ‘सामायिक’ करते थे। वे निवृत्ति प्रधान श्रावक जीवन का पालन कर रहे थे। दोनों धर्मपरायण पति-पत्नी के मन में अतिथि संविभाग हेतु उत्कृष्ट भावना जगी सो दोनों एकांतर करने लगे। एक दिन, पति खाना-खाते, एक दिन पत्नी उसमें से भी साधु-भगवन्तों को बहराने व स्वर्धर्मी को खिलाने की पूर्ण भावना रखते थे।

एक दिन पूणिया श्रावक की पत्नी को चूल्हा जलाने हेतु अंगारे लाने थे तो वह पड़ौसी से बिना पूछे अंगारों के साथ एक कंडा (छणा) भी लेकर आ गयी। हालांकि यह एक व्यवहारिक कार्य था और कण्डे का कोई विशेष मूल्य भी नहीं होता है तथा उस श्राविका की कोई चोरी की भावना भी नहीं थी। पर बिना पूछे लाने से वह अदत्त (चौर्य) के रूप में आ गया। उस अदत्त कण्डे से बनाए गए भोजन को करने मात्र से पूणिया श्रावक का मन आज ‘सामायिक’ में नहीं लगा। कितनी सजगता, कितनी निर्दोष सामायिक।

पत्नी से वार्ता करने पर अदत्त कण्डे की बात सामने आयी। जरा विचार कीजिए अदत्त कण्डे से पके हुए भोजन को करने से भी सामायिक में सम्यक् रूप से मन नहीं लगा। आज व्यक्ति कितना अन्यायोपार्जित धन कमाकर उससे भोजन करता है। उसका सामायिक में मन कैसे लगे? सामायिक की शुद्धता कैसे हो?

पूणिया श्रावक की एक शुद्ध सामायिक की कीमत श्रेणिक राजा के

राज्य का पूरा वैभव भी नहीं चुका सकता। वह तो दलाली में भी पूरा नहीं पड़ता। प्रसंग इस प्रकार है-

भगवान ने श्रेणिक राजा को नरक टालने हेतु समाधान बताते हुए कहा-  
‘हाँ, अगर तुम पूणिया श्रावक की एक सामायिक मोल ले सको।’

भगवान महावीर से यह एक आशा की किरण पा मगध सम्प्राट् श्रेणिक उछल पड़े। अभी-अभी सम्प्राट् ने अपनी भावी नारकीय स्थिति के निवारण हेतु उपाय के लिए, भगवान से अत्यन्त विनम्र एवं दीनता पूर्ण अभ्यर्थना की थी।

श्रेणिक की खुशी का क्या पार था? उसने सोचा ‘यह तो एक बच्चों का खेल है। अभी जाता हूँ और श्रावकजी से एक सामायिक खरीद लाता हूँ। मुँह माँगा मोल दे दूँगा। बस फिर नरक से छुट्टी।’

श्रेणिक अत्यन्त उत्साहित होकर, श्रावक जी के घर की ओर दौड़े जा रहे थे। पर उन्हें क्या पता था कि सामायिक समभाव की साधना कोई वस्तु थोड़े ही है जो खरीदी जा सकती है। उस बेचारे सम्प्राट् को कौन कहे कि सामायिक एक महान् आत्म-साधना है।

श्रावक पूणिया ने देखा दरवाजे पर स्वयं पृथ्वीनाथ उपस्थित थे। दौड़ा आया। बड़े विनय से आदर स्वागत कर बिठाया तथा उनके आदेश की प्रतीक्षा में करबद्ध समक्ष उपस्थित रहा।

‘मुझे तुम्हारी एक सामायिक वाञ्छनीय है। बोलो कितने मूल्य पर मिल सकेगी?’ श्रेणिक ने कहा।

एक बिल्कुल नई व विस्मय पूर्ण बात सुनकर श्रावक जी का मौन रहना सर्वथा स्वाभाविक ही था। पर राजा को शायद यह बात खली।

‘तुम किसी बात की लज्जा मत करना। डरना भी नहीं। जो माँगा जायेगा वह मिलेगा। बोलो क्या चाहते हो, कह दो जी खोलकर?’ श्रेणिक का अधिकार मुखर था।

पर पूणिया क्या कहता ? वह सामायिक-विक्रेता तो था नहीं । शिष्टाचार वश बस नम्रता से उसने निवेदन किया कि-

‘सम्राट् ! अच्छा होगा, यदि मेरी सामायिक का मूल्य आप भगवान से पूछ दिरावें ।’

सम्राट् के पैर मुड़े, पुनः भगवान की ओर । पहुँच कर भाव-भक्ति युक्त सादर वन्दन के पश्चात् पूणिया साधक की बात चरण-कमलों में अर्ज की और प्रभु की ओर निहारा, आशा पूर्ण उत्सुक निगाहों से ।

भगवान मन ही मन मुस्कुराये ।

कुछ क्षण, श्रेणिक के बड़ी ही आकुलता व व्याकुलता से गुजरे और फिर भगवान की गम्भीर गिरा गूँज पड़ी-

‘श्रेणिक ! पूणिया श्रावक की सामायिक का मूल्य जानना चाहते हो तो सुनो । सैंकड़ों, हजारों, सुमेरु पर्वत सदृश स्वर्ण-हीरक के ढेर से सिर्फ एक सामायिक की दलाली का मूल्य भी न होगा ।’

सामायिक के मूल्य का अचान्मित कथन सुनकर श्रेणिक महाराज खिन्न मन हो गये ।

वस्तुतः पूणिया एक ऐसा ही अजब-गजब का साधक था । उसका जीवन भव्य था । सादगी व सरलता का तो वह अवतार था । आय के साधन अति सीमित थे । पर जीवन में साधना की अमिट सुवास थी । पूणिया की सामायिक का महत्व इसीलिये अधिक है कि वह समझाव की साधना है और उसकी आजीविका नितांत शुद्ध है । केवल सामायिक में बैठने का महत्व नहीं है । महत्व है तदनुरूप जीवन, शुद्ध आजीविका और पवित्र भावना का । जो ऐसा कर पाता है उसका जीवन सुधर जाता है ।

◆◇◆

## साधु और श्रावक की सामायिक

सामायिक साधना चेतना के विकास का उदात्त रूप है। आत्महित के प्रति सजग प्राणी ही सामायिक के प्रति सजग रहते हैं। गुणस्थान की दृष्टि से पाँचवें गुणस्थान से लेकर तेरहवें गुणस्थान के अंतिम समय तक एकमात्र सामायिक ब्रत की ही उत्तरोत्तर उत्कृष्ट साधना की जाती है। चौदहवें गुणस्थान में आत्मा जब शुद्ध, बुद्ध व परिपूर्ण होने की स्थिति को प्राप्त कर लेता है तब उसकी 'समभाव' की साधना पूर्ण हो जाती है और वह जीव स्वयं सामायिकमय हो जाता है। 'आवश्यक निर्युक्ति' में एक स्थान पर कहा गया है कि— “सामाइयभावपरिणइभावओ, जीव एव सामाइयं” अर्थात् आत्मा की स्वभाव परिणति हो जाने से आत्मा (जीव) ही सामायिक है।

आध्यात्मिक उन्नति की तरमतमता के कारण साधु व श्रावकों की धर्म साधना में अन्तर रहा हुआ है। लेकिन लक्ष्य दोनों का समान ही है। स्थानांग सूत्र के दूसरे स्थान में सामायिक साधकों की अपेक्षा दो भेद किये हैं—

अगारसामाइए चेव अणगार सामाइए चेव।

जो प्रव्रजित हो सकता है, उसके लिए भगवान ने अनगार-सामायिक का उपदेश दिया है और जो प्रव्रजित नहीं हो सकता है, उसके लिए अगार-सामायिक का उपदेश दिया है। यह चारित्र धर्म की प्रथम प्रत्याख्यान-भूमिका दो प्रकार से घटित होती है—सर्व-प्रत्याख्यान रूप में अनगार सामायिक और देश-प्रत्याख्यान रूप में अगार (श्रावक) सामायिक। सर्व-प्रत्याख्यानी अनगार-धर्म का आराधक है और देश प्रत्याख्यानी अगार-धर्म का।

**(1) अगार सामायिक**—अगार सामायिक साधक आरम्भ-परिग्रह का अंशतः ही प्रत्याख्यानी होता है। क्योंकि अभी उसकी घर की ममता छूटी नहीं है। पूर्ण रूप से आरम्भ-परिग्रह के प्रत्याख्यान के भाव होते हुए भी वह ऐसा प्रत्याख्यान लेने की शक्ति का अनुभव नहीं कर पाता है। परिस्थिति, शक्ति, विवशता आदि कई कारण गृह-त्याग में बाधक बन सकते हैं।

अतः जो घर छोड़कर प्रब्रजित नहीं हो पाता, उसके लिए उसकी शक्ति के अनुसार ऐच्छिक प्रत्याख्यान लेने का विधान है। सम्पूर्ण रूप से न कर पाये तो अंशतः ही प्रत्याख्यान करे। कुछ नहीं करने की अपेक्षा कुछ तो धर्म-आराधना करे। ऐसे साधकों के लिए सागर धर्म का उपदेश है। स अर्थात् सहित + अगार = घर यानी घर में रहते हुए धर्म-आराधना।

अगार सामायिक बताते हुए कहा-

सावद्यकर्ममुक्तस्य, दुर्धर्यानरहितस्य च ।  
समभावो मुहूर्तस्त्, व्रतं सामायिकाह्वयम् ॥

प्रारंभ में अपनी चित्तवृत्तियों को अशुभ कार्य की ओर जाते हुए रोकना चाहिये। लेकिन मन बहुत चंचल है, इसे स्थिर करना अति दुष्कर है। अतः 10-15 मिनिट के लिए आस्त्र मार्ग से रोका जाय तो यह ‘संवर’ कहलाता है। अभ्यास करते-करते इस संवर क्रिया को कम से कम 48 मिनिट तक (दो घड़ी या एक मुहूर्त) चालू रखना चाहिये, तब एक सामायिक का काल होता है। यह अगार सामायिक श्रावक की सामायिक होती है। यह सामायिक 5वें गुणस्थान में होती है। मर्यादित काल के लिए मर्यादित रूप से सावद्य योगों का त्याग इसमें होता है।

**(2) अनगार सामायिक**—जो घर-बार, धन-सम्पत्ति, कुदुम्ब-परिवार का सर्वथा त्याग करके सम्भाव की प्राप्ति के लिए अपने पूरे जीवन का उत्सर्ग

कर देते हैं और यावज्जीवन उसके लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं, उनकी सामायिक साधु की सामायिक कहलाती है।

अनगार अर्थात् अन् = नहीं हैं, जिसके + अगार = घर। जिसके घर नहीं हो, वह अनगार है। परन्तु 'अनगार' शब्द का इतना ही आशय नहीं है। बल्कि अनगार अर्थात् जो आत्मसाधना के लिए गृह को त्यागकर घर की वासना से मुक्त हो चुका है, ऐसा साधक। वस्तुतः ममत्व सहित घर का त्याग, परिवार का त्याग और आरम्भ-परिग्रह का त्याग ही अनगार सामायिक है।

इसके दो भेद हैं—(1) इत्वरिक और (2) यावत्कथित।

(1) इत्वरिक—अल्प समय के लिए सामायिक चारित्र ग्रहण करना इत्वरिक सामायिक चारित्र है। पहले और अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन काल में यह चारित्र होता है। इसका काल जघन्य सात दिन, मध्यम 4 महीने व उत्कृष्ट 6 माह होता है। इस काल के उपरान्त साधक यावत् जीवन सामायिक सहित छेदोपस्थापनीय चारित्र में प्रवेश कर जाता है।

(2) यावत्कथित—यावज्जीवन की सामायिक को यावत्कथित सामायिक चारित्र कहते हैं। अर्थात् जीवन पर्यन्त के लिए सामायिक चारित्र ग्रहण करना। यह चारित्र भरत-ऐरवत क्षेत्र में मध्य के 22 तीर्थङ्करों के शासन काल तथा महाविदेह क्षेत्र में पाया जाता है।

**साधु और श्रावक की सामायिक में अन्तर—**

लक्ष्य एक होते हुए भी दोनों साधकों की सामायिक साधना में दृष्टियों से अन्तर है, यथा—

(1) द्रव्य की दृष्टि से भेद—साधु की सामायिक जीवन पर्यन्त की होने से उसमें ही सारी दैनिक आवश्यक आहार, निहार आदि क्रियाएँ होती हैं। जबकि श्रावक की सामायिक में यह सब निषिद्ध है। निहार क्रिया की शंका होने पर विवेक पूर्वक उसका निराकरण किया जा सकता है।

**(2) क्षेत्र की दृष्टि से भेद-**साधु सामायिक साधना को जीवन पर्यन्त के लिए धारण करता हुआ, विहार आदि की क्रियाएँ एवं गोचरी की गवेषणा भी सामायिक में करता है। जबकि श्रावक सीमित काल की सामायिक एक शान्त स्थान पर करता है।

**(3) काल की दृष्टि से भेद-**साधु व श्रावक की सामायिक में कालापेक्षा अन्तर को विशेष आवश्यक भाष्य में बताया।

गिहिणा वि सव्ववज्जं दुविधं तिविधेण छिण्णकालं तं।

कातव्वमाह सव्वे को दोसो भण्णतेऽणुमती॥

गृहस्थ में परिपूर्ण सामायिक की सामर्थ्य नहीं होती। अतः गृहस्थ को भी ‘सर्व’ शब्द के उच्चारण से रहित 2 करण 3 योग से छिन्नकाल तक (दो घड़ी जितने समय तक) सामायिक की साधना करनी चाहिए। साधु की सामायिक जीवन्त पर्यन्त होती है। जबकि श्रावक की सामायिक एक मुहूर्त (2 घड़ी) अथवा 48 मिनिट की होती है।

**(4) भाव की दृष्टि से भेद-**साधु 3 करण 3 योग से सारे पापों का त्याग करता है। जबकि श्रावक 2 करण 3 योग से पापों का त्याग करता है।

गृहस्थ का आन्तरिक ममतारूप अनुमोदन चालू रहता है; अतः अनुमोदन का त्याग नहीं किया जा सकता।

अनुमोदन के 3 प्रकार हैं—(1) प्रतिसेवानुमोदन, (2) प्रतिश्रवणानुमोदन, (3) संवासानुमोदन। सामायिक में अन्यों द्वारा सावद्य कार्यों की स्वीकृति माँगने पर मौन स्वीकार कर अथवा संयमित भाषा में उनको अनुमति प्रदान कर देना प्रतिसेवनानुमोदन कहलाता है। पुत्र आदि किसी सम्बन्धी के द्वारा किये गये पापकर्मों को केवल सुनना और सुनकर भी उन कर्मों के करने से उनको नहीं रोकना प्रतिश्रवणानुमति है। पुत्र आदि अपने सम्बन्धियों के पापकार्य में प्रवृत्त होने पर उनके ऊपर सिर्फ ममता रखना अर्थात् न तो पाप कार्य को सुनना और सुनकर भी उसकी प्रशंसा न करना संवासानुमोदन है। श्रावक के सामायिक

में प्रथम दोनों अनुमोदन का भी त्याग होता है। केवल संवासानुमोदन को ही सेवता है। ऐसा सामायिक साधक अन्य सब श्रावकों में सामायिक का श्रेष्ठ साधक है।

**(5) गुणस्थानों की अपेक्षा से भेद-साधु की सामायिक के 6 से 14 गुणस्थान तक होते हैं। श्रावक 5वें गुणस्थान में रहकर सामायिक साधना करते हैं।**

**(6) पाठ-भेद-साधु के सामायिक ग्रहण करने का पाठ श्रावक के सामायिक ग्रहण करने के पाठ के समान ही है। कुछ अन्तर है—** (i) साधु करेमि भंते के पाठ में ‘सावज्जं’ के स्थान पर ‘सव्वं सावज्जं’ बोलते हैं। (ii) ‘जाव नियमं’ के स्थान पर ‘जावज्जीवाए’ बोलते हैं। (iii) ‘दुविहं तिविहेण’ के स्थान पर ‘तिविहं तिविहेण’ बोलते हैं। (iv) ‘न करेमि न कारवेमि’ के स्थान पर ‘न करेमि, न कारवेमि करंतं पि अनं न समणुजाणामि’ बोलते हैं। (v) ‘मणसा वयसा कायसा’ के स्थान पर ‘मणेण वायाए काएण’ बोलते हैं।

इस प्रकार कुछ अन्तरों के अलावा सामान्य अनेक अन्तर (वस्त्र, उपकरण आदि के विभिन्न प्रकार) हो सकते हैं। श्रावक को प्रतिपल भावना भानी चाहिए कि वह शीघ्र ही साधु की सामायिक को अंगीकार करें। भाष्य में कहा है—

**सामाइयम्मि तु कते समणो इव सावओ भवति जम्हा।  
एतेण कारणेण बहुसो सामाइयं कुज्जा॥।**

सामायिक करने पर श्रावक भी श्रमण के तुल्य हो जाता है। इसलिए श्रावक को अनेक बार (बार-बार) सामायिक करनी चाहिए।

श्रावक की सामायिक का लक्ष्य साधु की सामायिक ग्रहण करके अंत में सामायिक स्वरूप के अंतिम लक्ष्य मुक्ति को पाना है और साधु की सामायिक का लक्ष्य भी समता को निरंतर अभिवर्द्धित करते हुए पूर्ण समता रूप सिद्ध दशा को पाना है।



## आप्त-वचनों में सामायिक

**दोहा-** जिन पूजा से श्रेष्ठ है, सामायिक श्रेयकार ।  
 आज्ञा-मोक्ष, अनाज्ञा से, बढ़ जाता संसार ॥1॥

समता भाव धारण करे, जे देखे निज रूप ।  
 सामायिक तेने कहे, जो सुख-शान्ति स्वरूप ॥2॥

धर उर समता भाव, नित्य सामायिक करिए ।  
 पर्व चतुष्टय माँय, पाप तज पौष्ठ करिए ॥3॥<sup>1</sup>

जो समो सब्ब भूएसु, तसेसु थावरेसु य ।  
 तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि-भासियं ॥4॥<sup>2</sup>

अर्थात् जो त्रस-स्थावर सभी जीवों में सम होता है, उसकी सामायिक होती है ऐसा केवलियों ने कहा है ।

समता सर्वभूतेषु, संयमः शुभभावना ।  
 आर्त-रौद्र-परित्यागस्, तद्धि सामायिकं व्रतम् ॥5॥

अर्थात् सब जीवों के प्रति समता, संयम व शुभभावना हो एवं आर्तरौद्र ध्यान का त्याग हो तो वह सामायिक व्रत है ।

त्यक्तार्त-रौद्र-ध्यानस्य, त्यक्तः सावद्यकर्मणः ।  
 मुहूर्त्समतायास्तां, विदुः सामायिकं व्रतम् ॥6॥

अर्थात् आर्तरौद्र ध्यान का त्याग, सावद्यकर्म का त्याग तथा समता का एक मुहूर्त अभ्यास हो तो उसे सामायिक व्रत जानो ।

दिवसे-दिवसे लक्खं देइ, सुवणस्स खंडियं एगो ।  
 एगो पुण सामाइयं, न करेइ पहुप्पए तस्स ॥7॥

अर्थात् एक व्यक्ति एक लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान देता है और एक सामायिक करता है। दान वाला सामायिक वाले की बराबरी नहीं कर सकता।

सामायिके समारंभा, परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।  
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ॥८ ॥<sup>4</sup>

अर्थात् सामायिक में सभी आरंभ-परिग्रह नहीं होते, उस समय गृहस्थ भी वस्त्रधारी मुनि के समान यतिभाव को प्राप्त हो जाता है।

जे केवि गया मोक्षं, जे वि य गच्छन्ति जे गमिस्सन्ति ।  
ते सब्वे सामाइय-पभावेण मुणेयव्वं ॥९ ॥

अर्थात् जो कोई भी जीव मोक्ष में गये या जा रहे हैं तथा जायेंगे वे सब सामायिक के प्रभाव से ही जानने चाहिए।

किं तिब्बेण तवेण, किं च जवेण, किं चरित्तेण ।  
समयाइ विण मुक्खो, न हु हुओ कह वि न हु होइ ॥१० ॥

अर्थात् तीव्र तपश्चरण से क्या ? जप से क्या ? चारित्र से क्या ? सामायिक के बिना न तो किसी का मोक्ष हुआ और न होता है।

सामायिक-विशुद्धात्मा, सर्वथा घातिकर्मणः ।  
क्षयात्केवलमाप्नोति, लोकालोकप्रकाशकम् ॥११ ॥

सामायिक से विशुद्ध बना आत्मा सकस्त घातिकर्मों के क्षय से लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

सब्वं मे अकरणिज्जं पाव कम्मं ति कट्टु सामाइयं चरितं पडिवज्जइ ॥१२ ॥  
सभी अकरणीय पाप कर्मों का मैं त्याग करता हूँ, ऐसा विचार करके सामायिक चारित्र स्वीकार करता है।

सामाइयाइया वा वयजीवणिकाय-भावणा पढमं ।  
ऐसो धम्मोवाओ, जिणेहिं सब्वेहिं उवइट्टो ॥१३ ॥<sup>5</sup>

अर्थात् सामायिक आदि चारित्र, महाब्रत, षड्जीवनिकाय तथा भावना-इन प्राथमिक धर्मोचार्यों का सभी तीर्थङ्करों ने उपदेश दिया।

रागद्वेष विरहिओ समो ति अयणं अयोत्तिगमणंति ।

समगमणं ति समाओ स एव सामाइयं नाम ॥14॥<sup>6</sup>

अर्थात् राग द्वेष विरहित हो ‘सम’ रहना-माध्यस्थ भाव युक्त प्रवृत्ति सामायिक है।

अहवा सामाइयं सम्मत-नाण-चरणां तेसु तेहिं वा ॥

अयणं अओ समाओ स एव सामाइयं नाम ॥15॥<sup>7</sup>

अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र (सम) में प्रवृत्ति सामायिक है।

अहवा सामं मित्ती तत्थ अओ तेण वत्ति सामाओ ।

अहवा समस्साओ लाहो, सामाइयं नाम ॥16॥<sup>8</sup>

सब जीवों पर मैत्री भाव रखने को ‘साम’ कहते हैं और साम का लाभ जिससे हो वह सामायिक है।

सम्ममओ वा समओ सामाइयमुभय विद्धि भावाओ ।

अहवा समस्साओ, लाभो सामाइयं होइ ॥17॥<sup>9</sup>

सम्यक् अय अर्थात् श्रेष्ठ आचरण का नाम भी सामायिक है।

जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे णियमे तवे ।

तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि-भासियं ॥18॥<sup>10</sup>

अर्थात् जिसकी आत्मा संयम, तप, नियम में संलग्न हो जाती है उसकी शुद्ध सामायिक है।

सामाइयं संखेवो चोद्दस्स पुवत्थ पिंडो ति ॥19॥<sup>11</sup>

अर्थात् सामायिक चौदह पूर्व का सारभूत (पिण्ड) है।

सामाइयभावपरिणइ भावाओ जीव एव सामाइयं ॥20॥<sup>12</sup>

अर्थात् सामायिक भाव परिणति के कारण जीव (आत्मा) ही सामायिक है।

सावद्यकर्ममुक्तस्य, दुर्ध्यानरहितस्य च ।

समभावो मुहूर्तं तद् ब्रतं सामायिकं स्मृतम् ॥

अर्थात् सावद्य कर्म से मुक्त, दुर्ध्यान रहित का मुहूर्त तक सम भाव रूप  
ब्रत सामायिक ब्रत है।

सामाइयमाहु तस्स जं, जो अप्पाणभए ण दंसए ॥२१ ॥<sup>१३</sup>

अर्थात् सामायिक उसके कही गई है जो अपने में भय नहीं देखता है।

सामायिकं च मोक्षांगं, परं सर्वज्ञभाषितम् ।

वासी चन्दन-कल्पानामुक्तमेतन्महात्मनाम् ॥<sup>१४</sup>

सामायिक मोक्ष का परम् अंग है, ऐसा सर्वज्ञ भाषित है। यह उन महात्मा पुरुषों को प्राप्त होती है जो चन्दन वृक्ष की भाँति उसे काटने वाली कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित कर देते हैं अर्थात् अपकारी के प्रति भी उपकार करते हैं।

सामायिकब्रतस्थस्य गृहिणोपि स्थिरात्मनः ।

चन्द्रावतंसकस्येव, क्षीयते कर्म संचितम् ॥<sup>१५</sup>

अर्थात् सामायिक ब्रत में स्थित स्थिरात्मा गृहस्थ भी मुनि के समान संचित कर्मों का क्षय करता है।

- 
1. छह ढाला से
  2. आवश्यक निर्युक्ति, 798
  3. आचार्य हेमचन्द्र, योगशास्त्र
  4. रत्नाकरण्डक श्रावकाचार, 102
  5. आवश्यक निर्युक्ति, 271
  6. विशेषावश्यक भाष्य, 3477
  7. विशेषावश्यक भाष्य, 3479
  8. विशेषावश्यक भाष्य, 3481
  9. विशेषावश्यक भाष्य, 3482
  10. विशेषावश्यक भाष्य, 798
  11. विशेषावश्यक भाष्य, 2796
  12. आवश्यक निर्युक्ति
  13. सू.1/2/71
  14. हरिभद्रसुरि 'अष्टक प्रकरण' 29.1
  15. योगशास्त्र 3/83



## सामायिक में परम्परा-भेद और सहिष्णुता

श्वेताम्बर परम्परा में सामायिक के पूर्व वेश परिवर्तन आदि बहुत-सी बाह्य क्रियाएँ अपेक्षित मानी जाती हैं। दिग्म्बर परम्परा में बाह्य क्रियाएँ अति न्यून हैं। श्वेताम्बर परम्परा का मन्तव्य है कि भरत, चिलाती पुत्र आदि की सामायिक बिना पाठ और बाह्य क्रिया के हुई। वे अपवाद रूप हैं। अन्तर की विशेष योग्यता वाले बिना बाह्य विधि के भी सामायिक कर सकते हैं, किन्तु साधारण साधक के लिए बाह्य विधि भी आवश्यक है। आज विविध परम्पराओं के लोग जब एक जगह धर्म क्रिया करने बैठते हैं, तब भिन्न-भिन्न प्रकार की नीति-रीति को देखकर टकरा जाते हैं, वाद-विवाद में पड़ जाते हैं, जबकि धार्मिक मंच सहिष्णुता का पाठ पढ़ाने का अग्रिम स्थान है। लोकसभा में विभिन्न प्रकार की वेश-भूषा, साज-सज्जा, बोलचाल, खानपान और नीति-रीति के व्यक्ति एक साथ बैठ सकते हैं, तो फिर क्या लम्बी मुँहपत्ती और चौड़ी मुँहपत्ती वाले प्रेमपूर्वक एक साथ नहीं बैठ सकते ?

वीतराग के शासन काल में किसी भी सत्यप्रेमी को जो खुले मुँह बोलने में दोष मानता हो, भले वह मुँह के हाथ लगाकर, कपड़ा लगाकर या मुँहपत्ती बाँधकर यतना से बोलता हो तो एक साथ बैठ सकता है। जैसे मुँहपत्ती बाँधने वाले असावधानी से बचना चाहते हैं, वैसे ही उसे हाथ में रखने वाले भी खुले मुँह नहीं बोलने का ध्यान रखें तो विरोध ही क्या है ? विरोध असहिष्णुता से,

एक-दूसरे के दोष बताने में है। मुँहपत्ती बाँधने वाले को थूंक में जीवोत्पत्ति बताकर छुड़ाना और नहीं बाँधने वाले को उसकी परम्परा के विरुद्ध बलात् बन्धाना विरोध का कारण है। पसीने से गीले वस्त्र की तरह गीली मुँहपत्ती जब तक मुँह के आगे रहती है, भाप की गर्मी के कारण तब तक जीवोत्पत्ति की सम्भावना नहीं रहती। इस प्रकार दोनों के मन में जीव रक्षा का भाव है। हिंसा, असत्य, अदत्, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य आदि पाप कर्म का परित्याग भी दोनों का एक ही है। फिर काउसग में ‘इच्छाकारेण’ पढ़ा तो क्या और ‘लोगस्स’ पढ़ा तो क्या? इसमें आग्रह कर एक-दूसरे को भला-बुरा बताना, सम्भाव की साधना में विषम भाव पैदा करना है।

परम्पराओं में आचार्यों की दृष्टियों को समझने का यत्न करना चाहिए और देखना चाहिए कि काउसग आदि में कौन से पाठ कब कैसी स्थिति में चालू हुए और प्राचीनकाल में कैसे पाठ बोले जाते थे। ‘लोगस्स’ की परम्परा में कहा जाता है कि ‘इरियावहिया’ का पाठ पहले पढ़ चुके, अतः काउसग में उसकी पुनरावृत्ति न कर ‘लोगस्स’ पढ़ना चाहिए, क्योंकि इसमें पूर्ण सम्भाव में स्थित वीतरागों की स्तुति की गई है। दूसरी ओर ‘इरियावहिया’ पढ़ने वालों का कहना है कि रास्ते चल कर आये हैं, इसलिए गमनागमन की शुद्धि के लिए प्रथम इरियावहिया पढ़ें। उसके अनुसार कौन से दूषण लगे, इसका चिन्तन करने को काउसग में इरियावहिया का आलोचन किया जाता है।

सावत्थी का श्रावक पुष्कली पौष्पधशाला में शंख श्रमणोपासक के पास गया, तब ‘इरियावहिया’ प्रतिक्रमण का उल्लेख ‘भगवती सूत्र’ में आता है। इरियावहिया वाले भी सामायिक पारने के समय तो ‘लोगस्स’ करते ही हैं। कहीं दो लोगस्स के काउसग की भी परम्परा है। एक की सहेतुकता तो समझ

में आती है, पर दूसरे लोगों के लिए शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, फिर भी स्तवन की भावना से कोई करता है तो कोई अपराध जैसी बात नहीं है। अतः तन, मन और वाणी के संयम का अधिक ध्यान रखकर चलने का ही प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करने से कहीं किसी परम्परा वाले के साथ सामायिक के अवसर में संघर्ष और विवाद का कारण ही उत्पन्न नहीं होगा। इस प्रकार साधक विचार सहिष्णुता की भावना को बढ़ाते गया तो भावी पीढ़ी धर्म से दूर न भागकर अवश्य इस ओर आकर्षित हो सकेगी।



अध्याय द्वितीय

सामाजिक की व्यापकता



## सामायिक का जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव

जिस प्रकार रथ दो पहियों से चलता है एक से नहीं, इसी प्रकार साधना का रथ भी निश्चय और व्यवहार दोनों ही चारित्रों के पहियों से आगे बढ़ता है तथा चारित्रों के दोनों ही पहियों की धुरी सामायिक ही है। अतः सामायिक, चारित्र का मूलाधार है।

जिस प्रकार कृषक का कृषि करने का उद्देश्य अनाज प्राप्ति है, लेकिन अनाज के साथ घास अनायास ही उसे मिल जाता है। यह आनुषंगिक फल है। इसी प्रकार सामायिक का मुख्य लाभ तो मुक्ति या सच्चिदानन्द स्वरूप की प्राप्ति ही है, परन्तु इसके साथ आनुषंगिक फल के रूप में परिवार, समाज या विश्व का हित भी अनायास ही हो जाता है।

### विषम भाव के विष फल

सामायिक ‘समभाव’ का ही अपर नाम है, पर्यायवाची है। समभाव का आविर्भाव विषम भाव के अभाव या त्याग से होता है। विषम भाव समस्त दोषों की भूमि है। विषम भाव के रहते कामना, वासना, मोह-मूर्छा, ममता, अहंता, जड़ता, पराधीनता, आकुलता, निर्दयता, संकीर्णता, स्वार्थपरता, सुख लोलुपता आदि दोष उपजते, फलते-फूलते रहते हैं। इसलिये सामायिक हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर विशिष्ट प्रभाव डालती है।

### सामाजिक क्षेत्र में

व्यक्तियों का समुदाय ही समाज है। अतः जैसे व्यक्ति होते हैं अर्थात्

जो गुण-अवगुण व्यक्तियों में होते हैं उनके आधार पर ही समाज का निर्माण होता है। अतः सर्व सामाजिक बुराइयों व दोषों की जड़ समाज के सदस्यों की स्वार्थपरक संकीर्ण भावना ही है। जिसका मूल समभाव का अभाव व विषम-भाव का प्रभाव ही है। विषम-भाव से उत्पन्न संकीर्णता, स्वार्थपरता आदि दोषों से ग्रस्त व्यक्ति की दृष्टि सदैव स्वार्थ साधन पर रहती है, पर हित पर नहीं। फलतः वह समाज में ऐसे रीति-रिवाजों व प्रणालियों का प्रचलन करता है जिससे उसकी महत्वाकांक्षा व स्वार्थ की सिद्धि हो। दहेज, मृत्युभोज आदि इसी के रूप हैं। सामायिक से चिन्तन व स्वाध्याय होता है, जिनसे विवेक का उदय एवं समभाव को बल मिलता है, जो समस्त सुधारों की जड़ है। जब तक समाज के सदस्यों के अन्तस्तल का मैल सामायिक या समभाव से धुल नहीं जाएगा तब तक सामाजिक व्यवहार में भी समता नहीं आयेगी। ‘मँग से मँग बड़ा नहीं’, समाज में समता निर्देशक यह कहावत चरितार्थ नहीं होगी, समाज सुधार के लिए किये गए सब प्रयत्न निष्फल सिद्ध होंगे और सामाजिक बुराइयाँ बराबर रूप बदल-बदल कर प्रकट होती ही रहेंगी। कारण कि समस्त बुराइयों की जड़ विषम-भाव है, जिसके रहते ऐसा होना अवश्यम्भावी ही है। अतः सामाजिक बुराइयों के निवारण के लिए समाज सदस्यों के अन्तःकरण में समता को स्थान देना होगा जो सामायिक से ही सम्भव है।

### राजनीतिक क्षेत्र में

समाज पर चरितार्थ होने वाला सिद्धान्त राष्ट्र पर भी घटित होता है। कारण कि राष्ट्र का गठन भी वैसा ही होता है जैसा समाज का गठन। समाज अपेक्षाकृत छोटे आकार वाला व अल्प सत्ता वाला होता है। राष्ट्र बड़े आकार का व महासत्ता वाला होता है। आज ‘यथा राजा तथा प्रजा’ के बजाय ‘यथा प्रजा तथा राजा’ दूसरे शब्दों में ‘यथा जनता तथा नेता’ कहावत चरितार्थ होती है। कारण कि आज का सत्ताधारी नेता जनता का प्रतिनिधि होता है। वह जनता को अपनी श्रेष्ठ नीति के अनुकूल नहीं चलाता है प्रत्युत

जनता को पसन्द नीति के अनुकूल शासन चलाता है। अतः जनता की चारित्रिक बुराइयाँ राष्ट्र में समष्टि रूप में प्रकट होती हैं। यदि जनता में स्वार्थपरता, हिंसा, संग्रह वृत्ति, शोषण, वित्त-हरण के दुर्गुण हैं तो वे सब दुर्गुण राष्ट्रीय रूप में भी अवश्य प्रकट होते हैं। फलतः वह अन्य राष्ट्रों का शोषण व उत्पीड़न करता है। प्रतिक्रिया स्वरूप संघर्ष व संग्राम का जन्म होता है। पुरातनकाल से अद्यतन के सब युद्धों का कारण शोषण, अपहरण व महत्वाकांक्षा ही रहा है। इतिहास इसका साक्षी है।

राजनीतिक क्षेत्र में जनता में समता लाने व सम्पन्नता बढ़ाने हेतु मानव जाति द्वारा आज तक राजतन्त्र, प्रजातन्त्र, लोकतन्त्र, समाजवाद आदि विभिन्न पद्धतियों का सहारा लिया गया तथा साम, दाम, दण्ड, भेद आदि नीतियों में अपनाया गया, परन्तु सफलता किंचित् भी नहीं मिली और समस्याएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गईं।

राजनैतिक प्रणालियों की असफलता के कारण को जानने हेतु यदि गहराई में उतरा जाय तो स्पष्ट ज्ञात होगा कि इसका मूल जनता के अन्तस्तल पर आसन जमाये विषमय विषम-भाव ही हैं। यद्यपि उपर्युक्त राजनीतिक प्रणालियों में से अधिकांश का जन्म ही विषमता मिटाने हेतु हुआ है, फिर भी वे सफल नहीं हो पा रही हैं। इसका कारण यह है कि वे बाहरी व व्यवहारगत विषमताओं को मिटाने के लिए तो प्रयत्नशील हैं, परन्तु व्यावहारिक विषमताओं का वास्तविक व मौलिक कारण है मानव-हृदय में विद्यमान विषम भाव। इसे दूर करने की ओर इनका ध्यान नहीं गया है और जब तक मानव के अन्तःकरण में समभाव या समता को स्थान नहीं दिया जायेगा तब तक लाख प्रयत्न किये जायें, कैसी भी प्रणालियाँ अपनायी जायें, राजनीति के व्यावहारिक क्षेत्र में साम्य को सफलता मिलना सर्वथा असम्भव है। इसका उपचार है मानव जाति में समभाव अर्थात् सामायिक का प्रचार-प्रसार करना।

### आर्थिक क्षेत्र में

आर्थिक क्षेत्र में उत्पन्न समस्याओं का कारण भी आर्थिक विषमता ही है। आर्थिक विषमता का कारण है व्यक्ति, वर्ग, समुदाय या देश की स्वार्थ-संग्रह परक संकीर्ण वृत्ति। स्वार्थ व संग्रह परक वृत्ति का कारण है विषम भाव। जब व्यक्ति, वर्ग या देश का मुख्य लक्ष्य धन अर्जन करना हो जाता है और वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना, श्रम करना आदि गौण हो जाता है। तथा जब व्यक्ति, वर्ग या राष्ट्र, स्वार्थवश सारा लाभ स्वयं ही हड्डप लेता है, उसका समीचीन वितरण उपभोक्ताओं व उत्पादकों में नहीं करता है, तब लाभ श्रम के शोषण और धन के अपहरण का रूप ले लेता है। जब धन का अर्जन श्रम से वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाकर न किया जाकर धन-शक्ति, सत्ता तथा दूसरों की विवशता व दीनता से लाभ उठाकर किया जाने लगता है तब अप्रत्यक्ष रूप से धन की छीना-झपटी व लूट चलने लगती है। यही आर्थिक समस्याओं का कारण है। जिसका निवारण ऊपर से लादी हुई साम्यवादी, सम्पत्तिवादी आर्थिक प्रणालियों से कदापि सम्भव नहीं है। यह सम्भव हो सकती है आन्तरिक समभाव से, उपलब्ध सर्व हितकारी भाव व व्यवहार से। समभावी व्यक्ति सेवा भावी होता है, फलतः उसका उद्देश्य लाभ कमाना नहीं-अभाव मिटाना, धन उपार्जन नहीं-वस्तु उत्पादन, आदान नहीं-प्रदान, स्वार्थ नहीं-सेवा होता है। उसे आवश्यक धन की प्राप्ति तो आनुषंगिक फल के रूप में स्वतः हो जाती है।

### शारीरिक क्षेत्र में

शारीरिक क्षेत्र में सुधार का अर्थ है शरीर को विकारों व रोगों से बचाना तथा आरोग्य या स्वास्थ्य को प्राप्त करना।

स्वस्थ शब्द 'स्व' और 'स्थ' इन दो पदों से बना है। जिसका व्युत्पत्ति परक अर्थ होता है अपने में स्थित होना, समस्थिति में रहना चिकित्सा शास्त्र

के प्रख्यात प्रणेता श्री चरक ने—‘प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते’ कहकर अन्यान्य बातों के साथ आत्मा और मन की प्रसन्नता, निर्मलता को भी स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। होम्योपैथी के प्रवर्तक सेम्युअल हैनीमैन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में लिखा है कि—‘मानव शरीर में मन और मस्तिष्क की ही प्रधानता है, अगर इनको ठीक कर दिया जाय तो अन्यान्य अंग स्वतः ही अच्छे हो जाते हैं।’ यह कहकर सभी रोगों का उद्गम-स्थल मन को बतलाया है। आधुनिक संत श्री विनोबा भावे, ‘स्थितप्रज्ञ दर्शन’ में स्वास्थ्य का विवेचन करते हुए लिखते हैं, ‘स्वास्थ्य से अभिप्राय शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य से है। शारीरिक-स्वास्थ्य का अर्थ है धातु-साम्य रहना और मानसिक आरोग्य का अर्थ है चित्त की समता रहना और मानसिक शान्ति रहना।’ तात्पर्य यह है कि स्वास्थ्य का क्षेत्र केवल शरीर तक ही सीमित न होकर मन और अध्यात्म तक व्याप्त है। महात्मा गाँधी ने कहा है कि—‘नीरोग आत्मा का शरीर नीरोग होता है। नीरोग आत्मा वही होता है जिसका चित्त आसक्ति ग्रस्त या विषम भावों में विक्षुब्ध न हो। समभाव से युक्त हो।’

आशय यह है कि जिसका मन शुद्ध, निर्विकार, नीरोग है, उसके पाचक, स्नायु, अस्थि आदि संस्थान भी नीरोग होते हैं। उसका रक्त इतना शुद्ध तथा सक्षम होता है कि वह शरीर में उत्पन्न, विद्यमान एवं प्रवेश्यमान सभी प्रकार के कीटाणुओं को परास्त और विध्वस्त कर देता है। उसे रोग के कीटाणुओं के विनाश के लिए किसी दवा या इंजेक्शन की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः मानसिक निर्मलता अर्थात् समता से बढ़कर न तो कोई शक्ति प्रदायिनी दवा ही है और न रोग विनाशक अमोघ औषधि।

अभिप्राय यह है कि शारीरिक स्वास्थ्य भी मानसिक स्वास्थ्य अर्थात् समता पर ही निर्भर करता है। चित्त के विक्षुब्ध व विषम रहते शारीरिक स्वास्थ्य की आशा रखना धोखा खाना है।

### **मानसिक क्षेत्र में**

मानसिक क्षेत्र में विकृतियों एवं रोगों का कारण भी विषम-भाव ही है। विषम-भाव से मन में असंख्य आसक्ति युक्त भावों व वेगों का जन्म होता है जिससे चित्त अशान्त व विक्षुब्ध हो जाता है तथा वेगों की पूर्ति या तृप्ति में निरोध तथा अवरोध होने से उनका दमन होता है, जिससे वे ग्रन्थि का रूप ले लेते हैं। इन्हीं दमित इच्छाओं, कामनाओं, वासनाओं के परिणामस्वरूप अनेक मानसिक विकृतियाँ व बीमारियाँ होती हैं। इच्छाओं, कामनाओं के परिशोधन व समाप्ति के लिए अर्थात् चित्त शुद्धि के लिए मनोविज्ञान में तीन प्रणालियों का उल्लेख है यथा—(1) विकलनात्मक, (2) निर्देशनात्मक, और (3) निरसनात्मक। इन तीनों ही प्रणालियों के अन्तर्गम्भ में समभाव विद्यमान है।

आशय यह है कि चित्त शुद्धि भी समभाव के अभाव में संभव नहीं है। अतः मानसिक आरोग्य के लिए समभाव से बढ़कर कोई कारगर उपाय नहीं है।

### **आध्यात्मिक क्षेत्र में**

आध्यात्मिक दृष्टि से समभाव का कितना महत्त्व है, यह किसी से छिपा नहीं है। समभाव-सम्यग्दर्शन के अभाव में आध्यात्मिक क्षेत्र में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। विषम भाव ही आत्मिक विकार व बंधन के कारण हैं। अतः आत्मिक विकारों, आवरणों व बंधनों के लिए समभाव ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। तात्पर्य यह है कि आत्मा को निर्विकार व विशुद्ध बनाने में सामायिक का प्रधान स्थान है।

### **दार्शनिक क्षेत्र में**

अन्यान्य क्षेत्रों के समान दार्शनिक क्षेत्र में उत्पन्न उलझनों एवं समस्याओं का कारण भी विषम-भाव ही हैं। जब विचार क्षेत्र में संकीर्णता होती है और केवल स्व-विचार या अपनी दृष्टि को सत्य मानने या मनवाने का आग्रह होता

है तब विचार के क्षेत्र में उलझन का जन्म होता है जो विवाद या वितंडावाद का रूप ले लेता है। उलझनों को सुलझाने हेतु शास्त्रार्थ होते हैं, परन्तु परिणाम वैमनस्य एवं कटुता के अतिरिक्त कुछ नहीं निकलता। क्योंकि केवल अपने ही सिद्धान्त के सत्य होने का आग्रह रखने वाला व्यक्ति दूसरों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के सत्य पर निष्पक्ष दृष्टि से विचार करना नहीं चाहता है। उसका उद्देश्य अपने ही सिद्धान्त दूसरों को मनवाने का होता है, समझने का नहीं। अतः वह वस्तु-तत्त्व को समझ नहीं पाता है। कारण कि प्रत्येक तत्त्व, वस्तुतः अपने में अनन्त गुणों को संजोये होता है। जिन्हें समझने के लिए विविध विवक्षाओं एवं अपेक्षाओं का प्रयोग आवश्यक है। अतः दुराग्रह को त्यागकर निष्पक्ष, तटस्थ व समदृष्टि होकर विचार करने पर ही सत्य को समझा जा सकता है। दृष्टि के सम होने पर ही वस्तु या तत्त्व में निहित विविध व विरोधी धर्मों को विविध विवक्षाओं के माध्यम से युगपत् देखा जा सकता है। इसे ही दर्शन की भाषा में ‘स्याद्वाद’ कहा जाता है। समदृष्टित्व और स्याद्वाद सहचारी हैं। स्याद्वाद से सब दार्शनिक मतभेदों, उलझनों का अन्त हो समन्वय हो जाता है। अतः स्याद्वादी, समभाव या समदृष्टि व्यक्ति के लिए विभिन्न दर्शन सत्य को समझने में सहायक हो जाते हैं। दृष्टि से समभाव या सामायिक ही विवेक का द्वार खोल, सत्य-जगत में प्रवेश कराती है।

### कर्तव्य-क्षेत्र में

पहले कहा जा चुका है कि समभाव सब सावद्य योगों, पापों या दोषों को दूर हटाने वाला है। अतः समभाव युक्त की गई प्रवृत्ति निरवद्य होती है। ऐसी निरवद्य स्थिति, प्रवृत्ति ही सामायिक है और निरवद्य क्रिया या कार्य ही कर्तव्य की संज्ञा पाते हैं। कर्तव्य-परायणता में अपना हित तो है ही साथ ही सबका हित भी निहित है, अहित तो किसी का भी सम्भव नहीं है। कारण कि कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों द्वारा सभी के अधिकार सुरक्षित रहते हैं। किसी के भी अधिकार पर प्रहार नहीं किया जाता। जिससे किसी के भी अधिकार को आँच

न आवे, हित का व्याघात न हो, उससे किसी को भी भय, क्षय या हानि की आशंका नहीं होती है, अपितु सभी को प्रसन्नता होती है। अतः स्वभावतः ही उसे सबकी सद्भावना मिलती है। सभी उसके हित-चिन्तक होते हैं, कारण कि ऐसे व्यक्ति के हित में सभी का हित, समृद्धि में सभी की समृद्धि, सुख में सभी का सुख समाहित होता है। ऐसे व्यक्तियों का हित, सर्व हितकारी होता है जो समाज-सुधार का मूल है। समाज-सुधार का ही विशद रूप विश्व सुधार है। यह सर्वविदित सिद्धान्त है कि सर्व-हित में स्वहित निहित है। अतः सामायिक व्यष्टि, समष्टि एवं सृष्टि की दृष्टि से भी उपयोगी है।

समभाव की एक महान् देन है—आत्मीयता का विकास अर्थात् विश्व के सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान अनुभव करना। आत्मीयता या सर्वात्मभाव से उदारता व सेवाभाव का उदय स्वतः होता है। उदारता से करुणा तथा प्रसन्नता तथा सेवा से हितकारिता की वृद्धि होती है जो सभी के लिए उपयोगी है।

### नियम के रूप में

जैन समाज में नियम के रूप में अपनाया जाने वाला सामायिक का व्यावहारिक रूप भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे समता से आविर्भूत आनन्द का रसास्वादन तो मिलता ही है, साथ ही चिन्तन तथा स्वाध्याय के सारे लाभ भी सहज ही सुलभ हो जाते हैं। समता के संस्कार दृढ़ होते हैं। फलतः व्यक्ति स्वतः सत्कर्म में प्रवृत्त होता है। सत्कर्म के मधुर फल से जीवन मधु-मय बन जाता है तथा इससे प्राप्त सामर्थ्य से व्यक्ति अपने जीवन-रथ को प्रगति व मुक्ति के पथ पर आगे बढ़ाता चलता है।

जिस प्रकार समस्त दोषों, दुःखों, विकारों एवं बुराइयों की भूमि विषम-भाव हैं उसी प्रकार समस्त गुणों, सुखों, सुधारों, समृद्धियों एवं भलाइयों की भूमि समभाव है। समभाव की भूमि में स्वतः ही निष्कामता, निर्ममता,

निःस्वार्थता, नम्रता, सरलता, सहिष्णुता, त्याग, सेवा, संयम, परोपकार आदि समस्त सद्गुणों के पौधे पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होते हैं। जिनसे सम्पन्नता, सामर्थ्य एवं सुख की प्राप्ति तथा अभिवृद्धि होती है।

आशय यह है कि मानव समाज जब तक समभाव के महत्व को स्वीकार कर उसे अन्तःकरण में स्थान न देगा तब तक समस्याओं एवं बुराइयों का फिर वे चाहे राजनीतिक हों अथवा सामाजिक, पारिवारिक हों अथवा वैयक्तिक, आध्यात्मिक हों अथवा दार्शनिक, नैतिक हों अथवा आर्थिक, शारीरिक हों अथवा मानसिक; निवारण सम्भव नहीं है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि जब तक स्थूल जगत् सूक्ष्म जगत् में, और बाह्य जगत् अन्तर्जगत् में समता को स्थान नहीं देगा, तब व्यावहारिक क्षेत्र में सुधार के सब प्रयत्न उसी प्रकार व्यर्थ सिद्ध होंगे जिस प्रकार मधुर आमों की प्राप्ति के लिए आम का बीज तो बोया न जाय अपितु आम के वृक्ष की टहनी को ही काटकर उसे सींचकर फल प्राप्ति की आशा की जाय।

अभिप्राय यह है कि समभाव या सामायिक के अभाव में आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति तो दूर रही, भौतिक एवं व्यावहारिक क्षेत्रों में भी सुख, समृद्धि व सफलता की प्राप्ति असम्भव है तथा एक मात्र समभाव ही इन क्षेत्रों में उत्पन्न हुई बुराइयों व दोषों का नाश एवं समस्याओं का समाधान करने में समर्थ है।

◆◆◆

## ज्ञान, भविति व कर्म योग की साधना : सामायिक

सभी साधनाओं का लक्ष्य है साध्य की प्राप्ति । जो साधन, साध्य प्राप्ति कराने की क्षमता न रखता हो वह साधन नहीं कहा जा सकता । सभी प्राणियों का एक ही साध्य है—सुख-प्राप्ति । अतः जिससे सुख प्राप्त हो वही साधन है । व्यक्ति सुख-प्राप्ति हेतु असंख्य साधन अपनाते हैं, परन्तु सुख की प्राप्ति विरलों को ही हो पाती है । इसका कारण है व्यक्ति की साध्य या सुख विषयक भ्रान्ति । वह भ्रान्ति है प्राणी द्वारा, भोगोपभोग, विषय-कषाय आदि से प्राप्त होने वाले सुख को ही—जो वस्तुतः सुखाभास है—सुख मान लेना । जैसे चलचित्र पर दिखाई देने वाला जल अथवा मृग-मरीचिका में प्रतीत होने वाला जल, जल नहीं जलाभास है और उससे प्यास नहीं बुझायी जा सकती । इस प्रकार सुखाभास से सुख की प्राप्ति हो नहीं सकती ।

सुखाभास को सुख मान उस सुख-प्राप्ति के लिए किए गए साधन अभीष्ट फल न देने वाले व अकार्यकारी होने से असाधन ही हैं, असाधनों का साधना के क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है । साधना के जगत में असंख्य मार्गों में से आध्यात्मिक साधन ही सच्चे सुख को प्राप्त कराने वाले हैं ।

आध्यात्मिक साधना का सम्बन्ध है आत्मा से । आत्मा का साध्य है निर्विकार, शुद्ध परमात्मत्व की प्राप्ति । अतः परमात्म तत्त्व की प्राप्ति में जो साधन सहायभूत हों वे आध्यात्मिक साधन हैं । इन साधनों को वैदिक संस्कृति

में तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(1) ज्ञानयोग (2) भक्तियोग (3) कर्मयोग। आध्यात्मिक साधनों का कार्य आत्मा का परमात्मा से योग करा देना है। इसलिए आध्यात्मिक साधनों के लिए शब्द का जो प्रयोग होता है उससे ज्ञानात्मक साधना ज्ञानयोग, भावात्मक साधना भक्तियोग और क्रियात्मक साधना कर्मयोग कही जाती है। केवल वे ही ज्ञान, भाव एवं क्रियाएँ—जो आत्मा का परमात्मा से योग कराने में साधनभूत हैं, आध्यात्मिक साधना में स्थान पाते हैं।

आध्यात्मिक साधना का विवेचन करते हुए पूज्यपाद देवनन्दी कहते हैं—

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु ।  
उपेयात्त्र परमं मध्योपायाद् बहिस्त्यजेत् ॥

समाधितन्त्र-4

अर्थात् सर्व प्राणियों में तीन प्रकार की आत्मा है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। इन तीनों प्रकार की आत्माओं में से बहिरात्मा को छोड़ अन्तरात्मा द्वारा परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है।

आत्मा से बाहर अर्थात् शरीर, परिवार, संसार आदि पर पदार्थों या बाहरी पदार्थों में जिसकी आत्म-बुद्धि है, अपनत्व भाव है वह बहिरात्मा है। जो आत्मा को सर्व बाहरी या पर पदार्थों से भिन्न अनुभव करता है, बाहर से हटकर अन्तर की ओर गति करता है वह अन्तरात्मा है। आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था ही परमात्मा है। बहिरुखी वृत्ति बहिरात्मा की, अन्तरुखी वृत्ति अन्तरात्मा की तथा वृत्ति से अतीत अवस्था परमात्मा की द्योतक है। बहिरात्मभाव को अशुभ भाव, अन्तरात्मभाव को शुभ भाव व परमात्म भाव को शुद्ध भाव कहा जा सकता है। अशुभ भाव को त्याग कर, शुभ भाव को अपनाकर शुद्ध भाव प्राप्त करने की प्रक्रिया ही आध्यात्मिक साधना है।

शुभ की प्राप्ति अशुभ के त्यागने से होती है। अशुभ क्रिया को आगम में सावद्ययोग कहा गया है। सावद्य या सदोष क्रिया का त्याग ही सामायिक है। अतः सामायिक की साधना-आध्यात्मिक साधना है। सामायिक के मुख्यतः तीन रूप हैं—(1) बौद्धिक, (2) मानसिक, (3) कायिक। बौद्धिक समता बौद्धिक सामायिक है। बुद्धि का विषय है ज्ञान, मन का विषय है भाव व तन का विषय है क्रिया या कर्म। अतः बौद्धिक सामायिक की साधना को ज्ञानयोग, मानसिक सामायिक की साधना को भक्तियोग, कायिक सामायिक की साधना को कर्मयोग की साधना कहा जा सकता है।

### ज्ञान योग

शान्ति-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है निराकुलता। निराकुलता स्वभाव या समभाव में ही है, परभाव, विभाव या विषयभाव में नहीं। परभाव के कारण तो प्राणी पराधीनता, जड़ता, अभाव, नश्वरता, वियोग के भय में ही आबद्ध होता है जो दुःख का ही कारण है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि पर-पदार्थों की प्राप्ति-अप्राप्ति से सुख-दुःख होता भी है या नहीं?

(1) पर-पदार्थ जड़ हैं। यदि जड़ पदार्थ या अनात्म पदार्थ चेतन के सुख-दुःख के दाता बने तो उनकी शक्ति, महत्त्व व मूल्य चेतन से अधिक बढ़ जायेगा और वह सुख-दुःख प्राप्ति के लिए जड़ का दास बन जायेगा, जो चेतन के स्वभाव से ही विपरीत है।

(2) क्षीर-नीर के समान पर पदार्थ और आत्मा एक क्षेत्रावगाहन के रूप में भले ही मिल जाये, परन्तु स्वरूप से एकरूपता को प्राप्त नहीं होते। पर पदार्थ और आत्मा के मध्य भिन्नता बनी ही रहती है। अतः जो आत्मा से भिन्न है वह आत्मा को सुखी-दुःखी नहीं बना सकता है।

(3) आत्मा के सुख-दुःख का कारण पर को मानना, आत्मा को

पराश्रित बनाना है। पराश्रयता या पराधीनता में आबद्ध प्राणी कभी सुखी व सन्तुष्ट नहीं हो सकता है।

(4) पर नश्वर है, अतः उससे प्राप्त सुख भी नश्वर ही होता है, अतः नश्वरता या वियोग के भय से प्राणी सैदैव सशंकित, व्याकुल या दुःखी रहता है।

(5) पर पदार्थ से प्राप्त होने वाली सुख की प्रतीति प्रतिक्षण हास को प्राप्त होती है। जो सुख पर के भोग में पहले क्षण मिलता है वह दूसरे क्षण नहीं मिलता है।

आशय यह है कि पर पदार्थ सुख-दुःख के कारण नहीं हैं। सुख-दुःख का कारण है प्राणी की पर के प्रति रही हुई आसक्ति। इसे स्वीकार करना ही सम्यग्ज्ञान है। इस ज्ञान का आदर करना ही ज्ञान योग है। वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदि हमें सुखी-दुःखी बनाने में सर्वथा असमर्थ हैं। पर पदार्थों को आत्मा से भिन्न समझ उनसे प्रभावित न होने की प्रक्रिया को ही शास्त्रीय भाषा में भेद-विज्ञान कहा है। यही भेद-विज्ञान ज्ञानयोग का हार्द है व अन्तरात्म-ज्ञान है। भेद-विज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान का सार है।

ज्ञान योग की प्रक्रिया में पूर्व कर्मों व संस्कारों के कारण उत्पन्न हुई कामनाओं, वासनाओं एवं भोगों की इच्छाओं को अपने सुख-दुःख में असमर्थ एक-एक करके उन्हें काटना होता है। जब सर्व कामनाएँ कट जाती हैं तो आत्मा निष्काम अवस्था को प्राप्त हो जाती है। यह निष्काम, निर्विकल्प व शुद्ध अवस्था परमात्म अवस्था है। यह ज्ञान योग की चरम अवस्था है।

### भक्ति योग

आत्मा की भाव शक्ति का बहुत महत्त्व है। भाव के तीन रूप हैं—(1) अशुभ, (2) शुभ (3) शुद्ध। पर पदार्थों के भोगने का भाव अशुभभाव है। यही भाव का बहिरात्म रूप है। साधना जगत में यह त्याज्य है। परमात्मा के

प्रति प्रीति या आत्मीय भाव शुभ भाव है। यही भाव भक्ति कहा जाता है। भक्ति योग इसी भाव की साधना की प्रक्रिया है। जैसे चन्द्रिका का विकास चन्द्रकला के विकास का द्योतक है, इसी प्रकार आत्मीयता का विकास आत्म-विकास का द्योतक है। आत्मीयता के ही अपर रूप हैं प्रेम, करुणा, प्रमोद, आदि।

भक्त का आराध्यदेव सर्वगुण सम्पन्न होता है। किसी को भी अपना आराध्यदेव सदोषी व न्यून गुण वाला अभीष्ट नहीं होता है। उस आराध्य देव की भक्ति करके वह परमात्मा से संबंध स्थापित करता है।

भक्ति के मुख्य दो रूप हैं स्मरण और शरण। जो जिसे स्मरण करता है वही उसके अन्तःकरण पर अवतरण पाता है। विद्यार्थी इसी सिद्धान्त का उपयोग कर किसी पाठ को मस्तिष्क में स्थायित्व देने हेतु बार-बार स्मरण करते व रटते हैं। भक्ति के क्षेत्र में भी यही सिद्धान्त चरितार्थ होता है। अर्थात् यह आत्मा अपने में ही अपने स्वरूप की आराधना करके परमात्मा हो जाती है। जैसे बाँस का वृक्ष अपने को अपने से ही मथकर अग्नि रूप हो जाता है।

आशय यह है कि भक्त जब भगवान से तन्मय हो जाता है तो वह अपने में ही भगवान के दर्शन कर लेता है। स्वयं भगवान बन जाता है।

भक्ति का दूसरा रूप है—‘शरण।’ शरण की प्रक्रिया में भक्त अपने समस्त अहंत्व को गलाकर अकिञ्चन बनकर प्रभु की शरण ग्रहण करता है। अहंत्व ही समस्त दोषों की भूमि है। अतः अहंत्व के गल जाने से भक्त, निर्दोष अवस्था को प्राप्त करता है। यह निर्दोष अवस्था ही परमात्म अवस्था है। अतः भक्त भगवद् शरण को ग्रहण कर स्वयं भगवान बन जाता है।

भक्ति का विकास दो प्रकार से होता है—संकोच रूप में और विस्तार रूप में। संकोच रूप में भक्त अपने अहंत्व को संकुचित करते-करते तुच्छ व

अकिंचन बनाते-बनाते प्रभु में विलीन कर देता है और विस्तार रूप में भक्त अपनी आत्मीयता का विकास करता हुआ सर्वात्मभाव रूप परमात्मा को प्राप्त होता है। इस प्रकार भक्त दोनों ही प्रक्रिया से विभाव का अभाव कर परमात्म भाव का आविर्भाव करने में सफल होते हैं।

सारांश यह है कि भक्ति का अशुभ रूप मोह है, शुभ रूप आत्मीयता व शुद्ध व चरम रूप परमात्मा प्राप्ति है। सामायिक का अभीष्ट लक्ष्य भी तो यही है।

### कर्मयोग

काया, कर्म की प्रतीक है। सदेह प्राणी कर्म किये बिना रह नहीं सकता। खाना, पीना, उठाना, बैठना, श्वास लेना आदि कर्म उसके साथ लगे हैं। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि प्राणी तो कर्म किए बिना रह नहीं सकता और तत्त्ववेत्ताओं का मत है कि कर्म-त्याग के बिना मुक्ति मिल नहीं सकती, ऐसी दुविधामय स्थिति में किया क्या जाय?

यह सत्य है कि कर्म-त्याग से मुक्ति मिलती है। परन्तु कर्म-बंध का कारण कर्म न होकर कर्म के साथ लगा हुआ कषाय-भाव मोह या आसक्ति ही है। अतः कर्म बन्ध न हो इसके लिए आवश्यक है कि कर्म अनासक्ति पूर्वक किए जायें। यह तो हुई नवीन कर्म-बन्धन न होने की बात, परन्तु पूर्वोपार्जित कर्मों के नाश का क्या उपाय है?

पूर्वोपार्जित कर्मों का नाश कर्मयोग की प्रक्रिया से ही होता है। अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि कर्म से कर्म का नाश कैसे होता है? कहना होगा कि जैसे विष से विष दूर होता है, काँटे से काँटा निकलता है वैसे ही शुभ कर्म से अशुभ कर्म कटता है और अन्त में शुभ कर्म भी अकर्म अवस्था को प्राप्त हो जाता है। अथवा जिस प्रकार आग काष्ठ से उत्पन्न होती है व काष्ठ को भस्म करती हुई स्वयं भी नष्ट हो जाती है इसी प्रकार तन, मन, वचन से

उत्पन्न विवेक युक्त कर्म कर्मों को भस्म करते हुए तन, मन के बन्धन अर्थात् कर्म-बंधन को काट देते हैं साथ ही स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

कर्मयोग की साधना में शुभ व निष्काम कर्मों को ही स्थान है, सकाम कर्मों को नहीं। सकाम सावद्य कर्मों का परित्याग अर्थात् ‘सावज्जं जोगं पच्चक्खामि’ को ही सामायिक कहा गया है। अतः दूसरे शब्दों में कर्म योग की साधना सामायिक की साधना है।

### मनोविज्ञान : साधना

दोषों के शोधन की प्रक्रिया ही ‘साधना’ है। सभी दोषों या विकारों का शोधन आवश्यक है।

मनोविज्ञान में मन-शोधन की तीन प्रणालियाँ हैं यथा—(1) विकलनात्मक प्रणाली (2) निर्देशनात्मक प्रणाली (3) निरसनात्मक प्रणाली।

(1) **विकलनात्मक प्रणाली**—इस प्रणाली में अन्तःकरण के ज्ञात और अज्ञात क्षेत्र में प्रतिष्ठित कामनाओं, वासनाओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं, कुंठाओं, ग्रन्थियों का क्रमिक व्युत्थान कर उन्हें काटा या निःसत्त्व किया जाता है। इस प्रणाली में कामनाओं या मनोविकारों का एक-एक करके विकलन किया जाता है अतः इसे चित्त विकलन प्रणाली कहा जाता है। विकलन की यह प्रक्रिया भेद-विज्ञान या ज्ञान-योग की प्रक्रिया का ही एक अंग है। और ज्ञान-योग की साधना को बल देने वाली व आगे-बढ़ाने वाली है।

(2) **निर्देशनात्मक प्रणाली**—इस प्रक्रिया के प्रयोग से ही व्यक्ति सम्मोहित हो सम्मोहक व्यक्ति के निर्देश के अनुसार आचरण करने लगता है। इस प्रणाली का उपयोग कर साधक, अपने आपको परमात्म-गुणों का अर्थात् शुद्ध-बुद्ध, निरंजन आनन्दघन होने का निर्देश देता है। फलस्वरूप निर्देशन के अनुरूप ही उसे अपने में परमात्मा का दर्शन होता है तथा उसमें उन

गुणों की अभिव्यक्ति भी होती है। वह प्रक्रिया भक्ति-योग की साधना को बल देने वाली व आगे बढ़ाने वाली है।

(3) निरसनात्मक प्रणाली—कामनाओं के निरसन का समीचीन उपाय कर्मयोग की प्रक्रिया ही है। जिसमें व्यक्ति कामनाओं का भोग अनासक्त भाव से करता है, उसमें सुखानुभूति का रस नहीं लेता है। रस न लेने से उस कामना का निरसन हो जाता है तथा नवीन कामना का वपन नहीं होता है।

ज्ञानयोग की प्रक्रिया में विषमभावों को काटना होता है। भक्ति-योग की प्रक्रिया में विषमभावों को अशुभ से शुभ में परिणत कर उन्हें शिथिल बनाते हुए निःसत्त्व करना होता है और कर्म-योग की प्रक्रिया में विषमभावों को प्रगट कर उन्हें समभाव से भोगकर निरसन करना होता है। इस प्रकार इन तीनों ही योग-साधनाओं का कार्य, विषम-भाव का अन्त कर समभाव को प्राप्त करना है। समभाव की साधना सामायिक की साधना है अतः वे तीनों ही साधनाएँ सामायिक साधना के तीन रूप हैं।

◆◇◆

## विविध साधनाओं की भूमि : सामायिक

जीवन में विकारों के शोधन या शुद्धिकरण की प्रक्रिया को ही साधना कहा जाता है। जीवन के दो पक्ष हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य पक्ष का शोधन करने वाली साधनाएँ व्यावहारिक साधना और आभ्यन्तर पक्ष का शोधन करने वाली साधनाएँ आध्यात्मिक साधना कही जाती हैं।

आध्यात्मिक साधनाओं में मुख्य हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञान-दर्शन-चारित्र, दान-शील-तप-भाव, अहिंसा-संयम-तप, ज्ञान-दया, कर्म-क्षय, तत्त्वोपलब्धि प्रभृति।

उक्त सभी आध्यात्मिक साधनाओं की भूमि सामायिक कैसे है, इसका अनुशीलन किया जा रहा है।

सामायिक शब्द ‘सम्’ उपर्सग पूर्वक ‘अय’ धातु से बना है। ‘अय’ धातु के तीन अर्थ हैं—ज्ञान, गमन और प्रापण। ज्ञान विवेक का, गमन-क्रिया का और प्रापण-प्राप्ति का द्योतक है। ‘सम्’ उपर्सग सम्यक् या समीचीनता का द्योतक है। अतः सामायिक में सम्यग्ज्ञान, सम्यक् क्रिया, सम्यक् प्राप्ति अन्तर्निहित है। सम्यग्ज्ञान ज्ञानयोग का, सम्यक् क्रिया का विधि पक्ष कर्म योग का, भाव पक्ष भक्ति योग का निर्दर्शक है। तथा सम्यक् प्राप्ति, मुक्ति की अभिव्यंजक है। अतः धात्वर्थक दृष्टि से सामायिक शब्द स्वयं ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग की साधना तथा इनसे साध्य मुक्ति को अपने में सँजोये हुए है।

‘सामायिक’ शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ सम्यग्ज्ञान, सम्यक् क्रिया और सम्यक् प्राप्ति का द्योतक है। इनमें से सम्यग्ज्ञान, सम्यग्ज्ञान-दर्शन का, सम्यक् क्रिया सम्यक् चारित्र का, सम्यक् प्राप्ति मुक्ति का अभिव्यक्तक है। अतः सामायिक में ‘सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि मोक्षमार्गः’ साधना का यह सूत्र पूर्ण रूपेण समाहित है।

सामायिक के समता अर्थ में शील व भाव, सम्यक् क्रिया अर्थ में दान व तप निहित हैं। अतः दान, शील, तप, भाव रूप मोक्ष मार्ग की साधना का सूत्र सामायिक का ही अनुसरण करता है।

सामायिक के सम्यग्ज्ञान अर्थ में ज्ञान, सम्यक् क्रिया अर्थ में दया स्वतः समाहित हैं। अतः ‘पढमं नाणं तओ दया’, साधना का सूत्र भी सामायिक में अंतर्गम्भित है।

सामायिक के समता अर्थ से अहिंसा, सम्यक् क्रिया अर्थ से संयम और तप प्रतिफलित होते हैं। अतः ‘अहिंसा संज्ञमो तवो’ साधना का सूत्र भी सामायिक में ही सन्निहित है।

सामायिक कर्म क्षय की साधना में विशेष स्थान रखती है। कर्म आठ होते हैं—चार घाती और चार अघाती। वेदनीय, नाम, गोत्र एवं आयु अघाती कर्म हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय घाती कर्म हैं। अघाती कर्मों को बल घाती कर्मों से मिलता है। अतः घाती कर्मों के नाश हो जाने पर अघाती कर्मों का स्वतः उसी प्रकार अंत हो जाता है। जिस प्रकार कुम्हार के चाक को घुमाने वाले डण्डे के हटने पर चाक के घूमने का स्वतः अन्त हो जाता है। घाती कर्मों का नाश सामायिक या समभाव से होता है। सामायिक की भूमिका में उद्भूत ज्ञानयोग से ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय कर्म का, भक्तियोग से दर्शन मोहनीय कर्म का, कर्मयोग से चारित्र मोहनीय कर्म का,

समत्व से अन्तराय कर्म का अर्थात् आत्मा-परमात्मा के मध्य व्यवधान कारक घाती कर्म का नाश होता है। अतः सामायिक की साधना कर्मक्षय की साधना है।

तत्त्विक दृष्टि से भी सामायिक का अपना विशेष स्थान है। तत्त्व नौ हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। समभाव से अनुप्राणित ज्ञानयोग भेद-विज्ञान की प्रक्रिया से जीव को अजीव से भिन्न करता हुआ परमात्म अवस्था को प्राप्त कराता है। भक्तियोग पाप प्रकृतियों को पुण्य में परिणत कराता है तथा पुण्य-पाप कर्मों से अलग होता हुआ अपवर्ग प्राप्त कराता है। कर्मयोग या सम्यक् चारित्र आस्रव से छुड़ाता हुआ संवर-निर्जरा द्वारा बंध का विच्छेद कर मोक्ष में पहुँचाता है। इस प्रकार सामायिक-साधना ज्ञान, भक्ति, चारित्र के माध्यम से जीव का शुद्ध, आत्म-तत्त्व रूप तत्त्वोपलब्धि प्रदान करने वाली है।

अभिप्राय यह है कि सब की साधनाओं का विलीनीकरण सामायिक में होता है, अतः सामायिक को सब ही साधनाओं की भूमि कहा जाता है।

सारांश यह है कि सामायिक में सब साधनाएँ समाहित हैं। अतः सामायिक-साधना ही जीवन-साधना है। जीवन से सम्बन्धित समस्त साधनाएँ सामायिक से अनुप्राणित होकर व बल पाकर विकासमान होती हुई हितकारी व कल्याणकारिणी बनती हैं। सामायिक में मानव-जीवन का चतुर्मुखी विकास निहित है। जीवन में सामायिक को जितने अंशों में स्थान मिलता जायेगा जीवन उतने ही अंशों में सुखी व विकसित होता जायेगा। अतः सामायिक को जीवन में स्थान देने में ही मानव-जीवन की सफलता है।



## सामायिक और जीवन-मूल्य

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान की प्रगति ने मनुष्य को विभिन्न भौतिक सुख-सुविधाएँ प्रदान कर उसके जीवन को काफी आराम दिया है, किंतु विडम्बना यह है कि विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ मनुष्य अपनी मानसिक शांति भी खोता जा रहा है। पाश्चात्य देश विज्ञान की दौड़ में बहुत आगे निकल चुके हैं, किंतु वहाँ के जीवन में व्याप्त संत्रास, तनाव, कुण्ठा और अशांति से हम अपरिचित नहीं हैं। वहाँ की गलियों में गूँजता ‘हरे कृष्णा हरे रामा’ का नारा और आम जन-जीवन में बढ़ती हिप्पीबाद की प्रवृत्ति शायद उसी मानसिक शांति की खोज में है।

क्या ये बढ़ती भौतिक सुख-सुविधाएँ ही हमारे जीवन मूल्य हैं? क्या कारण है कि आज मनुष्य का जीवन इतना सस्ता और औपचारिक हो गया है? क्या कारण है कि आज विश्व में सर्वत्र विषमता की खाई और चौड़ी तथा गहरी होती जा रही है? व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य आपसी विश्वास तथा सौहार्द मात्र औपचारिक होते जा रहे हैं। मानवीय संबंधों में वैमनस्य तथा घृणा की दरार बढ़ती जा रही है।

प्रश्न उठता है इस स्थिति से कैसे उबरा जाय? वर्तमान जीवन में-व्यक्ति से लेकर राष्ट्र-स्तर तक विषमता के प्रसार को रोकने तथा आत्म-कल्याण से लोक-कल्याण की ओर अग्रसर होने की प्राथमिक शर्त है सामायिक को जीवन मूल्य बनाया जाय। आधुनिक जीवन की विविध त्रासदियों से मुक्ति का सरल-सुगम उपाय सामायिक है।

सामायिक का सीधा एवं सरल अर्थ है—समता। वह अनुष्ठान जिसका प्रयोजन जीवन में समता लाना है। यह समता वैयक्तिक जीवन से लेकर आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में भी व्याप्त हो—यही प्रयास करना श्रेयस्कर है। यह समता—भाव युग की आवश्यकता है। समता का अभाव विकृति, तनाव एवं हिंसक तत्त्वों को प्रोत्साहन देने के लिए उत्तरदायी है। सामायिक सही अर्थों में इस विषमता से समता की ओर गमन की विकास यात्रा है।

निश्चय ही सामायिक में अद्भुत शक्ति है। यह जीवन—परिवर्तनकारी पद्धति है जो जीवन में आत्मबल का संचार कर अध्यात्म—पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देती है।

समता के अभाव से व्यक्ति में अहं भाव का उदय होता है। अहं या ‘इगो’ मानव जीवन में कुण्ठा, निराशा, तनाव तथा निरर्थकता का भाव भरता है। इस अहं भावना के वशीभूत होकर व्यक्ति स्वयं को ‘श्रेष्ठ’ या ‘सुपर’ समझने लगता है तथा दूसरों को स्वयं के समक्ष तुच्छ महसूस करता है। इस कथित ‘सुपरलेटिव काम्पलेक्स’ से जब तक व्यक्ति मुक्त नहीं हो पाता तब तक वह समता की ओर बढ़ नहीं सकता। ऐसी स्थिति में हम उससे सहज, मानवीय मूल्यों या आदर्शों की अपेक्षा नहीं कर सकते। सामायिक एक ऐसी ‘कला’ है जो व्यक्ति के अहं को तोड़कर उसे नम्रता और संवेदनशीलता के पथ पर बढ़ने को प्रोत्साहित करती है तथा हृदय को कोमलता एवं सहानुभूति के प्रकाश से आलोकित करती है।

नवकार मंत्र में अपने अहं को तोड़कर जब व्यक्ति अरिहंतों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों तथा साधु—संतों के समक्ष नतमस्तक होता है तो मानो वह सहज मानवीय श्रद्धा व नम्रता के भावों से युक्त होकर मन की कलुषता को धो डालता है।

‘गुरु वंदन सूत्र’ व्यक्ति में गुरु के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने की भावना को बल देता है। गुरु के प्रति सम्मान व आदर का भाव प्रकट करने से जहाँ एक ओर व्यक्ति का अहं विगलित होता है, वह विनम्र बनता है, वहीं दूसरी ओर उसके अज्ञान का नाश होकर उसे सम्यक् जीवन दृष्टि विकसित करने की प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता है।

वर्तमान जीवन और समाज में हिंसा एवं निर्दयता का व्यापक प्रसार हो रहा है। विश्व राजनीति के रंगमंच पर शास्त्रों की बढ़ती होड़ और आक्रमण-प्रत्याक्रमण की प्रवृत्ति ने सर्वत्र असुरक्षा का भाव उत्पन्न कर दिया है। सारा विश्व आणविक युद्ध के कगार पर बैठा है जिसका विस्फोट कभी भी किसी भी मदांध सत्ताधारी के उन्माद से हो सकता है। मनुष्य स्वयं मनुष्य का शोषण करने में नहीं हिचकिचा रहा है। एक ओर जहाँ धी में चर्बी मिलायी जा रही है तो दूसरी ओर सौंदर्य-प्रसाधनों तथा अन्य वैज्ञानिक प्रयोगों के नाम पर खरगोशों, बंदरों आदि निरीह जानवरों पर नानाविध अत्याचार किये जा रहे हैं। मानवीय अधिकारों तथा व्यक्ति स्वातन्त्र्य का खुल्लम-खुल्ला अपहरण इस बात का स्पष्ट संकेत है कि मानव स्वयं अपनी सभ्यता को नष्ट करने को आतुर है, व्यग्र है।

ऐसी भयावह परिस्थिति में सामायिक का ‘इच्छाकारेण’ पाठ हमें सही जीवन जीने की कला सिखाता है। इस पाठ में न सिर्फ व्यक्ति स्वातन्त्र्य का प्रबल स्वर है, वरन् प्राणी मात्र की स्वतन्त्रता का भी जयघोष है। प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव की सुंदर अभिव्यक्ति यहाँ हुई है। एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चार इन्द्रिय तथा पाँच इन्द्रिय जीवों के प्रति विराधना से, जाने या अनजाने में, किसी प्राणी के दबने से या अन्य किसी विधि से किसी को तनिक भी कष्ट पहुँचे तो उसके प्रति क्षमा भाव है। कितना सुंदर रूप है अहिंसा भाव का। वस्तुतः अहिंसा का यही सूक्ष्म भाव आज के युग में वरेण्य है। इसी भाव

से जीवन यापन करते हुए हम हिंसा के स्थान पर अहिंसा को, कठोरता के स्थान पर हार्दिकता को, निर्दयता के स्थान पर स्नेह भाव को प्रतिष्ठित कर सकेंगे।

सामायिक साधना में विस्थापन नहीं, स्थापन है। कहा भी है—“ठाणाओ ठाणं संकामिया.....” अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर जीवों को दुर्भावना से रखा हो तो दुष्कृत पाप निष्फल हों। कितनी मार्मिक अभिव्यंजना है प्राणी मात्र के प्रति दया भाव की।

सामायिक-साधना व्यक्ति की बहिर्मुखी चेतना को अंतर्मुखी बनाती है। व्यक्ति के अतीत, वर्तमान व भविष्य में समन्वय स्थापित करती है। अतीत के पाप कर्मों की सम्यक् आलोचना करते हुए, वर्तमान जीवन के सुख-दुःख के प्रति समझाव प्रदर्शित करते हुए भविष्य के प्रति संकल्पबद्धता निश्चित करती है। इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति ‘करेमि भंते’ पाठ में अत्यन्त सहजता के साथ व्यक्त हुई है। साधक मन, वचन और काया से वर्तमान एवं भविष्य के प्रति अपनी पाप वृत्ति को त्यागने की बात कहता है। अतीतकृत पापों का प्रतिक्रमण करते हुए वह सावद्य पापकारी व्यापार के त्याग करने की प्रतिज्ञा करता है। इस पाठ का सबसे सुंदर स्थल वह है जहाँ वह मात्र एकांत में बैठकर आत्म साक्षी से ही पापों का प्रक्षालन नहीं करता वरन् गुरु चरणों में बैठकर गर्हा करता है। यह साधक का साहस है जो वह सार्वजनिक रूप से अपने पापों को प्रकट कर सर्वथा निष्पाप होने का प्रयास करता है।

‘नमोत्थुणं’ पाठ लोकसेवा की भावना का अनुपम उदाहरण है। इस पाठ में तीर्थङ्करों की वंदना के माध्यम से उनके लोक-कल्याणकारी आदर्श गुणों की स्तुति की गयी है। ये तीर्थङ्कर लोकहितकारी, मोक्ष मार्ग एवं सम्यक्त्व के प्रदाता, धर्म के उपदेशक, धर्म-नायक तथा धर्म-सारथि हैं। पुरुषों में श्रेष्ठ तथा लोक में उत्तम ये तीर्थङ्कर प्रकाशमान दीपक की भाँति लोक में उद्योत

करने वाले तथा अभय देने वाले हैं। ऐसे महान् गुणों से सुशोभित इन तीर्थङ्करों की आराधना हमें करनी है। आत्म-कल्याण तथा लोक-कल्याण की उदात्त भावनाओं का प्रेरक यह पाठ गहन चिंतन की अपेक्षा करता है।

आज की परिस्थितियों में यह आवश्यक हो गया है कि हम सामायिक को सही अर्थों में जीवन मूल्य बनायें। यह मूल्य बाजार में खरीदी जाने वाली वस्तु की भाँति यांत्रिक या भौतिक मात्रा न बने वरन् हमारे आचरण की कसौटी बने। सामायिक ऐसा मूल्य नहीं है जिसके बदले हम भौतिक धन या प्रतिष्ठा आदि खरीद सकें वरन् यह तो उस आध्यात्मिक सम्पदा का मूल्य आधार है, जिसके समक्ष अन्य सब वस्तुएँ तुच्छ प्रतीत होती हैं।

सामायिक को जीवन मूल्य के रूप में हम तभी अपना सकेंगे जब हम सामायिक को मात्र रूढ़ि रूप में करते ही नहीं रहे वरन् स्वयं सामायिक बनें। सामायिक बनने का अर्थ है समभाव में स्थित होना, आत्मरूप होना।



## सामायिक और स्वाध्याय

शरीरधारी जीव की क्रिया दो प्रकार की होती है—बाहरी क्रिया और भीतरी क्रिया। मन, वचन और काया की चेष्टाएँ बाहरी क्रिया और जानने तथा देखने रूप आत्मा का व्यापार भीतरी क्रिया है। इन क्रियाओं को शास्त्रीय परिभाषा में क्रमशः ‘योग’ और ‘उपयोग’ कहते हैं। योग के द्वारा जीव कर्म से स्पृष्ट होता है और यदि उस समय उपयोग बहिर्मुख होकर विकारों में बह जाता है तो जीव कर्मों से बद्ध हो जाता है। जीव अनादि से योग और विकृत चेतना के द्वारा कर्मों का, दुःख के हेतुओं का अर्जन करता आया है।

उपयोग का बहिर्मुख होकर, विकारों में बह जाना—समत्वविहीन दशा है—जीव का अपने आप में उलझना है। विकृत चेतना को ‘अशुद्ध उपयोग’ और विकृत चेतना से प्रेरित योग—पापमयी मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया को ‘सावद्ययोग’ कहते हैं। इस प्रकार ये द्विविध उलझने एक रूप ही भासित होती हैं।

### उलझन का क्रम

बाहरी क्रिया की उलझन में भीतरी क्रिया और भीतरी क्रिया की उलझन में बाहरी क्रिया निमित्त बनती रहती है। बाहरी क्रिया की स्वच्छन्दता से उपयोग का बहिर्गमन होता है। उपयोग के बहिर्गमन में लापरवाही के कारण विकार उत्पन्न होते हैं, जिससे उपयोग में फिसलन पैदा होकर मन, वचन और काया की अशुभ क्रिया में जीव की प्रवृत्ति होती है। विकार को ‘कषाय’ (क्रोध, मान, माया और लोभ) और ‘नो कषाय’ (हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद,

पुरुषवेद और नपुंसक वेद) कहते हैं। असावधानी को ‘प्रमाद’ और उपयोग की अशुभयोग से अनिवृत्ति को ‘अविरति’ कहते हैं।

इस प्रकार अशुद्ध उपयोग के तीन स्तर हैं—(1) उपयोग का बहिर्गमन या परपदार्थ का आस्वादन, (2) उपयोग के बहिर्गमन में लापरवाही और (3) अशुभ योग में प्रवृत्ति।

### सुलझने का क्रम

धारे का उलझना—उसकी स्वाभाविक दशा नहीं है। उसकी उलझन का निमित्त अन्य पदार्थ होता है। इसी प्रकार जीव की उलझन—उपयोग की अशुद्धि है, किन्तु पुद्गल के पर्याय कर्म और योग उसमें निमित्त हैं। अतः जड़ कर्म और योग, पर पदार्थ हैं और उनके निमित्त से उत्पन्न विकार पर-भाव हैं। उपयोग जीव का निजगुण है। उपयोग की मलिनता विभाव है और योग भी विभाव दशा है, जिनके द्वारा जीव की शुभाशुभ क्रिया व्यक्त होती है।

वस्त्र का मैलापन न वस्त्र से भिन्न है—न अभिन्न। यदि वस्त्र से मैलापन एकान्त रूप से भिन्न हो तो वस्त्र की स्वच्छता तिरोहित नहीं हो सकती और एकान्त रूप से अभिन्न हो तो वह वस्त्र से कभी छूट नहीं सकती। इसी प्रकार उपयोग (जीव) से विकार और योग को एकान्त रूप से भिन्न या अभिन्न (स्वभाव) मान लेना मिथ्या है। क्योंकि एकान्त रूप से भिन्नता या अभिन्नता में मुक्ति के प्रयास का अवकाश ही नहीं रहता। अतः विकार और आत्म-प्रदेशों के स्पन्दन जीव के ही हैं। परन्तु वे जीव से सम्बद्ध परद्रव्य—पुद्गल के निमित्त से हैं। पुद्गल द्रव्य और जीव द्रव्य का स्वभाव बिल्कुल भिन्न है। किन्तु जीव के निमित्त से पुद्गल में कर्म और योग रूप पर्याय उत्पन्न होते हैं। अतः वे पुद्गल के भिन्न—अभिन्न रूप हैं। ऐसे ही विकार और स्पन्दन भी जीव से भिन्नाभिन्न हैं। इस प्रकार की प्रतीति से जीव की उलझन अस्वाभाविक लगती है।

धागे की उलझन को अस्वाभाविक मानने पर और उलझन के बाह्य कारण को पर मानने पर ही धागे को सुलझाने की प्रवृत्ति हो सकती है। इसी प्रकार उपयोग की मलिनता और योग को पर-भाव मानने पर ही उपयोग-शुद्धि के लिए प्रवृत्ति हो सकती है। धागे को सुलझाने के लिए धागे को उलझन के बाह्य निमित्तों से अलग करना पड़ता है और सुलझाने में अँगुलियाँ आदि अनुकूल निमित्तों की मदद लेनी पड़ती है। वैसे ही जीव की उलझन को सुलझाने के लिए उपयोग को सावद्ययोग से हटाना पड़ता है और निरवद्ययोग स्वरूप मन, वचन और काया की निष्पाप क्रिया का सेवन करना पड़ता है।

#### सावद्ययोगविरति और स्वाध्याय में सम्बन्ध

सामायिक में उपयोग को सावद्य क्रिया से उलझना छुड़ाकर निरवद्ययोग अर्थात् निष्पाप क्रिया के द्वारा सुलझाया जाता है। निरवद्ययोग में स्वाध्याय प्रमुख क्रिया है। जिन-प्रज्ञप्त तत्त्व का विवेचन करने वाले ग्रन्थों का पठन-पाठन स्वाध्याय है। सावद्ययोगविरति को सामायिक कहा जाता है। सावद्ययोग की विरति, निरवद्ययोग के सेवन के बिना स्थिर नहीं रह सकती। तीन करण तीन योग से सावद्ययोग से विरत (साधु) के लिए दिन-रात में लगभग बारह घण्टे जितना काल स्वाध्याय के लिए नियत है। एक दिन-रात के लिए दो करण तीन योग से सावद्ययोग से विरत साधक (पौष्टि व्रत में स्थित श्रावक) के लिए भी ऐसा ही विधान है। एक मुहूर्त भर के लिए दो करण तीन योग से सावद्ययोग से विरत साधक (नववें सामायिक व्रत में स्थित श्रावक) के लिए स्वाध्याय का विधान क्यों न होगा? अवश्य होगा, क्योंकि सामायिक सहित स्वाध्याय के अवलम्बन से मोक्ष मार्ग की साधना सहज हो जाती है।

सामायिक में दुष्प्रणिधान अर्थात् जिनत्व की स्मृति को भङ्ग करने वाली मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया का अभ्यास, सामायिक का दूषण है और सुप्रणिधान अर्थात् जिनत्व के ध्येय को स्मृति में टिकाये रखने वाली

मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया का अभ्यास, यह सामायिक का भूषण है तथा स्वाध्याय सुप्रणिधान का महत्वपूर्ण साधन है।

स्वाध्याय सामायिक का शोधक है तो सामायिक स्वाध्याय की पृष्ठभूमि है। सामायिक संवर है और स्वाध्याय आभ्यन्तर तप। संवरयुक्त तप ही विशेष फलप्रद होता है और तपोमय संवर ही बलवान होता है। स्वाध्याय की रुचि के बिना सामायिक प्रवाहमय तरङ्गित जल पर चित्र बनाने की चेष्टा-सी क्रिया है और सामायिक या सम्यक् चारित्र-सपापक्रिया से विरति की रुचि के बिना स्वाध्याय बालक्रीड़ा मात्र है। सावद्ययोग विरति से शुद्ध ध्यान की योग्यता बढ़ती है और स्वाध्याय से-आत्मभाव के पोषक ग्रन्थों के पठन और चिन्तन-मनन से उत्तम ध्यान में आरोहण हो सकता है।

◆◆◆

## सामायिक : एक विचित्र साधना

एक समय महाराज गायकवाड़ जैसे किसी कलाप्रिय राजा की सभा में दो कारीगर आए। वे महाराज के समुख आकर खड़े रहे। महाराज ने भी उनकी ओर देखकर पूछा—तुम कौन हो? दोनों ने उत्तर दिया, हम कलाकार हैं। एक ने उत्तर दिया—मैं चित्रकार हूँ। जब महाराज ने दूसरे से पूछा तो उसने कहा मैं विचित्रकार हूँ।

महाराज सुनकर विचार में पड़ गये, और पूछने लगे, तुम्हारा काम क्या है?

चित्रकार बोला—मैं चित्र करता हूँ। तो विचित्रकार ने कहा कि मैं विचित्र करता हूँ। राजा सुनकर बहुत चकित हुआ और उसने खूब विचार के पश्चात् चित्रकार से कहा—

अच्छा तो मेरा यह लक्ष्मी विलास महल है। उसकी एक दीवार मैं तुम्हें सम्भलाता हूँ। तुम उस पर मन चाहे चित्र तैयार करो। फिर विचित्रकार की ओर देखकर बोले—तुमको मैं दूसरी दीवार देता हूँ। तुम भी उस पर विचित्र तैयार करो। दोनों ने महाराज की आज्ञा स्वीकार की ओर बोले—महाराज हमारा कार्य केवल 48 मिनिट में पूरा हो जायेगा। अतः उस समय आप काम देखने को अवश्य पधारें।

चित्रकार ने अपना कार्य शुरू किया। दीवार को सजा कर उसमें सुन्दर बगीचा, अच्छे-अच्छे वृक्ष, नदी, नाले, पर्वत और मनोहर झरने एवं तालाबों के दृश्य चित्रित किये। वन में अनेक वनेचर स्वेच्छा से घूमते दिखाये और

आकाश में पक्षी उड़ते दिखाये। दूसरी ओर विचित्रकार ने अपनी दीवार पर दाग साफ किये। भूमि की विषमता दूर की और हाथ में कोड़ा लेकर विचित्र रूप से घुटाई आरम्भ कर दी।

48 मिनिट के बाद महाराज अपनी रानी और मंत्री आदि परिवार को लेकर चित्र देखने पधारे। चित्रकार का कार्य देखकर बहुत प्रसन्न हुए। चित्रकार की कला में जीवन देखकर महाराज बहुत ही प्रभावित हुए।

दूसरी भित्ति पर विचित्रकार को काम दिया गया था। किन्तु बीच में पर्दा था, अतः महाराज बाजू से होकर विचित्रकार के काम को देखने लगे।

चित्रकार ने दीवार को इतना स्निग्ध और चिकना बना दिया कि दर्पण की तरह उसमें महाराज का प्रतिबिम्ब दिखने लगा। जब महाराज अपने प्रतिबिम्ब को देखकर आश्चर्य कर रहे थे, तो उसने बीच का पर्दा भी दूर कर दिया, तत्काल ही सामने चित्रकार द्वारा तैयार की गई दीवार का सारा प्राकृतिक सौन्दर्य उसमें प्रतिबिम्बित होने लगा। मालूम हो रहा था कि राजा एक आम्र वृक्ष के नीचे खड़े हैं। यह देखकर राजा एवं रानी को बहुत आश्चर्य हुआ।

चित्रकार और विचित्रकार की कला में जो भेद है वही भेद जगत के सब दर्शनों और अध्यात्मवाद में है। अध्यात्मवाद का प्रतिनिधि विचित्रकार है तो दर्शनों का प्रतिनिधि चित्रकार है। दर्शनों का कार्यक्षेत्र मस्तिष्क है, तो अध्यात्म हृदय की दीवार पर काम करता है। जो जीव विचित्रकार की तरह हृदय रूपी दीवार पर कषाय के खड्डों को साफ करता और विषम-भाव के दाग मिटाकर मनोभूमि को सम करता है, समझ में लाता है, उसी को सामायिक साधना कहते हैं।

सामायिक की साधना वह विचित्र कला है, जिसमें संसार के विभिन्न

चित्र अंकित करने के बदले केवल चित्त की भित्ति को सम किया जाता है। बुद्धि पर लगे हुए द्रोह, मोह के दाग साफ किये जाते हैं और ज्ञान के कौड़े से चित्र को चमकाया जाता है। चित्त के इस विमल दर्पण में आत्म देव का शुद्ध स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है। ज्ञान, विवेक और बुद्धि रूप परिवार के साथ स्वरूप का दर्शन कर महाराज चेतनराज आनन्द विभोर हो जाता है।

आत्मा की इस स्वरूप-रमण दशा में तन और मन की सारी क्रियाएँ अन्तर्मुखी होकर चलती हैं।



अध्याय तृतीय

सविधि सामायिक पाठ



## सामायिक पाठ विधि सहित

सामायिक साधना ग्रहण करने की विधि-सबसे पहले पूँजनी से स्थान को पूँज कर व आसन की प्रतिलेखना कर के आसन को बिछावें। बाद में सफेद चौल-पट्टा, दुपट्टा, मुँहपत्ति आदि सामायिक की वेशभूषा की प्रतिलेखना कर उसको धारण करें व मुँहपत्ति मुँह पर बाँधें। तत्पश्चात् गुरुदेव या सतियाँ जी हों तो उनकी ओर मुँह करके और नहीं हों तो पूर्व तथा उत्तर दिशा (ईशान कोण) की तरफ मुँह करके श्री सीमंधरस्वामीजी को निम्न गुरु वंदन सूत्र से तीन बार विधिवत् वन्दना करें।

### 1. गुरु वंदन सूत्र

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पञ्जुवासामि, मत्थएण वंदामि ।

शब्दार्थ-तिक्खुत्तो = तीन बार। आयाहिणं = दाहिनी ओर से। पयाहिणं = प्रदक्षिण। करेमि = करता हूँ। वंदामि = वन्दना करता हूँ। नमंसामि = नमस्कार करता हूँ। सक्कारेमि = सत्कार करता हूँ। सम्माणेमि = सम्मान करता हूँ। कल्लाणं = (आप) कल्याण रूप हैं। मंगलं = (आप) मंगल रूप हैं। देवयं = (आप) देव रूप हैं। चेइयं = (आप) ज्ञानवन्त हैं। पञ्जुवासामि = (मैं) आपकी पर्युपासना करता हूँ। मत्थएण = मस्तक झुकाकर। वंदामि = वन्दना करता हूँ।

विधि-इसके बाद नवकार मंत्र, ईर्यापथिक सूत्र बोलें तत्पश्चात् उत्तरीकरण सूत्र में झाणेण तक पढ़कर ईर्यापथिक सूत्र का काउसग्ग करें। काउसग्ग में तस्स मिच्छामि दुक्कडं के स्थान पर तस्स आलोउं कहें।

**पाठ विवेचन-**प्रस्तुत सूत्र, गुरु वन्दन सूत्र है। इसके अन्तर्गत गुरुदेव को वन्दना की गयी है। ‘गुरु’ शब्द में दो अक्षर हैं ‘गु’ और ‘रु’। ‘गु’ अक्षर अन्धकार का वाचक है तथा ‘रु’ नाश का। अतः गुरु शब्द का पूरा शाब्दिक अर्थ है अन्धकार का नाश करने वाला। यह अन्धकार कोई द्रव्य अन्धकार नहीं वरन् अज्ञान तथा मोह का भाव अन्धकार है। द्रव्य अन्धकार तो दीपक भी मिटा सकता है, पर भावान्धकार को मिटाने में गुरुदेव की आत्मीय शक्ति ही समर्थ है।

आध्यात्मिक-साधना के क्षेत्र में गुरु-पद का बड़ा महत्व है। अन्य कोई पद इसकी समानता नहीं कर सकता। गुरु हमारी जीवन नौका के खेत्रैया हैं। आध्यात्मिक जीवन-मन्दिर के वे प्रकाशमान दीपक हैं। उनकी दया दृष्टि से ही हमें यह ज्ञान-प्रकाश प्राप्त होता है, जिससे हम जीवन की विकटतम घाटियों को भी सानन्द पार कर सकते हैं। संसार के काम, क्रोध, मद, लोभ आदि के भयंकर आवर्तों में से हमको कुशलता पूर्वक पार उतारने में उनकी महती भूमिका होती है। विनयपूर्वक गुरुदेव को वन्दन करना ही इस पाठ का प्रयोजन है।

पाठ के प्रारम्भिक शब्द ‘तिक्खुतो आयाहिणं पयाहिणं करेमि’ वन्दन की विधि को स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करते हैं। फिर ‘वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि’ ये चार पद गुरुदेव के प्रति विनय, भक्ति और बहुमान व्यक्त करते हैं।

देखने में यद्यपि ‘वंदामि नमंसामि’ तथा ‘सक्कारेमि सम्माणेमि’ शब्द समानार्थक प्रतीत होते हैं। पर प्रत्येक शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न है। वंदामि का अर्थ वन्दन-अभिवादन करना, मुख से गुणान करना अर्थात् वाणी द्वारा स्तुति करना है। ‘नमंसामि’ का अर्थ नमस्कार करना है। नमस्कार मन और तन से होता है। यदि ऊपर से मस्तक झुक रहा है पर साधक के मन में श्रद्धा की बलवती तरंगें हिलोरें नहीं मार रही हो तो ऐसा नमस्कार निष्प्राण है, शून्य मात्र है।

सत्कार का अर्थ है—गुणवान् पुरुषों को वस्त्र, पात्र, आहार, आसन आदि देकर सत्कार करना। सम्मान का अर्थ है—गुणवान् पुरुषों को मन और आत्मा से बहुमान प्रदान करना।

‘कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं’ आदि पदों में परम पुनीत गुरुदेव के चरणों की विशेषता बतलाई गई है। ये गुण संक्षेप में इस प्रकार हैं—कल्लाणं का स्थूल अर्थ क्षेम, कुशल या शुभ होता है। गुरुदेव से हमें कल्याण-प्राप्ति के मार्ग का पथ-प्रदर्शन मिलता है। अतः उनके लिये इस विशेषण का उपयोग सर्वथा उपयुक्त है।

‘मंगलं’ का अर्थ शिव या प्रशस्त होता है। जिससे साधक का अहित दूर हो वही मंगल है। गुरुदेव ही साधक को हित का उपदेश देते हैं। जिसके द्वारा साधक, पूजक से पूज्य-विश्ववंद्य हो जाता है, अतः वे मंगल रूप हैं।

‘देवयं’ का अर्थ है देवता। देवता से यहाँ तात्पर्य सांसारिक भोग विलासी देवताओं से नहीं, वरन् दैविक गुणों से अलंकृत महापुरुषों से है। आचार्य हरिभद्र के अनुसार देव वे हैं जो अपने आत्म-स्वरूप में चमकते हैं। गुरुदेव ही ऐसे चमत्कारी पुरुष हैं। अतः वे धर्मदेव हैं।

‘चेइयं’ का अर्थ है ज्ञान। गुरुदेव ज्ञान गुण के भण्डार हैं तथा वे ही इस ज्ञान-ज्योति से अबोध व अज्ञानी आत्माओं को प्रकाशित करते हैं फिर ‘चित्ताह्लादकत्वात्’—वे चित्त को आह्लादित करते हैं अतः उन्हें चेइयं कहा गया है।

## संबंधित प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. वन्दन के कितने प्रकार हैं?

उत्तर वन्दन तीन प्रकार के होते हैं—उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य।

(1) ‘इच्छामि खमासमणो’ के पाठ से 12 आवर्तन के साथ वन्दन करना उत्कृष्ट वन्दन है। जब गुरुदेव के पास प्रायश्चित्त आदि करना हो या कोई विशिष्ट प्रसंग हो तो इस पाठ द्वारा वन्दन किया जाता है।

(2) तिक्खुतो के पाठ द्वारा वन्दन, मध्यम वन्दन है। साधारणतः यही परिपाटी वन्दन के लिए प्रचलित है। आमतौर पर गुरुदेव को इसी पाठ द्वारा वन्दन किया जाता है।

(3) केवल ‘मत्थएण वंदामि’ बोलना जघन्य वन्दन है।

**प्रश्न 2. गुरुदेव को तीन बार वन्दन क्यों ?**

उत्तर जैन धर्म का आधार गुण है न कि व्यक्ति का भौतिक पिण्ड या नाम या जाति विशेष। पंच महाब्रतधारी, पाँच समिति एवं तीन गुप्ति के पालक संत महात्मा को उनके जीवन में निहित विशिष्ट गुणों के कारण गुरु माना जाता है। उनमें तीन गुण मुख्य हैं— सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन व सम्यक् चारित्र। इन तीन गुणों के धारक हमारे गुरुदेव हैं, अतः उन्हें तीन बार वन्दन किया जाता है।

**प्रश्न 3. आवर्तन देने की विधि को सरल तरीके से कैसे समझ सकते हैं?**

उत्तर आवर्तन देने की विधि को सरलता से इस प्रकार समझा जा सकता है कि जैसे हम उत्तर या पूर्व दिशा में मुँह करके खड़े हैं अथवा गुरुदेव के समुख खड़े हैं, तब हमारे सामने घड़ी मानकर जिस प्रकार घड़ी में सूर्य धूमती है ठीक उसी प्रकार हमें भी आवर्तन देने चाहिए। जिस प्रकार मांगलिक कार्यों में आरती उतारी जाती है, मन्दिरों में परिक्रमा दी जाती हैं, उसी क्रम से

आवर्तन देने चाहिए। अन्य भी लौकिक उदाहरणों से हम समझ सकते हैं कि जैसे घट्टी चलाने की क्रिया, चरखा घुमाने की क्रिया, रोटी बेलने का क्रम, वाहनों की गति दर्शाने वाला मीटर जिस क्रम से आगे बढ़ता है, ठीक इसी प्रकार आवर्तन हमें अपने ललाट के मध्य से प्रारंभ करते हुए अपने दाहिनी ओर ले जाते हुए देने चाहिए।

**प्रश्न 4** वन्दन करने वाले को अपने बांये से दाहिनी ओर (**Left to Right**) ही आवर्तन प्रारंभ क्यों करने चाहिए?

**उत्तर** अपने बायें से दाहिनी ओर आवर्तन करना गुरुदेव के प्रति विनम्रता एवं समर्पण भाव का सूचक है, क्योंकि बांया अंग विनम्रता का प्रतीक माना जाता है। इसी कारण से नमोत्थुणं का पाठ बोलते समय भी नीचे बैठकर बायाँ घुटना ही खड़ा किया जाता है। अतः वन्दन करने वाले को दोनों हाथ ललाट के बीच में रखकर अपने बार्यों ओर से दाहिनी ओर (**Left to Right**) घुमाते हुए आवर्तन देने चाहिए।



## 2. नवकार मंत्र

णमो अरिहंताणं,  
णमो सिद्धाणं,  
णमो आयरियाणं,  
णमो उवज्ञायाणं,  
णमो लोए सव्वसाहूणं ।

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व-पावप्पणासणो ।  
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

शब्दार्थ-णमो अरिहंताणं = अरिहन्तों को नमन । णमो सिद्धाणं = सिद्धों को नमन । णमो आयरियाणं = आचार्यों को नमन । णमो उवज्ञायाणं = उपाध्यायों को नमन । णमो लोए सव्वसाहूणं = लोक के सब साधुओं को नमन । एसो = इस प्रकार यह । पंच णमुक्कारो = पाँच पदों का नमस्कार । सव्व = समस्त । पावप्पणासणो = पापों का विनाशक है । च = और । मंगलाणं सव्वेसिं = सब मंगलों में । पढमं = प्रथम । मंगलं = मंगल । हवइ = है ।

पाठ विवेचन-जैन परम्परा में नवकार मंत्र का सर्वोच्च गौरवपूर्ण स्थान है । इसका दूसरा नाम नमस्कार मंत्र भी है । इस सूत्र में 68 अक्षर हैं और पाँचों पद के 108 गुण हैं । इन पाँच पदों को पंच परमेष्ठी कहते हैं । ‘परमे’ अर्थात् परम पद (ऊँचे स्थान) पर ‘ष्ठिन्’ अर्थात् रहे हुए । अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, साधारण संसारी जीवों की अपेक्षा आध्यात्मिक दृष्टि से ऊँचे स्थान पर रहे हुए हैं, इसलिये वे परमेष्ठी कहलाते हैं । इनमें अरिहंत व सिद्ध देव हैं और आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ये तीन गुरु हैं ।

पंच परमेष्ठी को किया गया नमन आत्मा को कलिमल से दूर कर पवित्र करता है। इतिहास साक्षी है कि इस महान् मंत्र के स्मरण से सेठ सुदर्शन की सूली सिंहासन बन गयी, भयंकर विषधर सर्प पुष्पमाला में परिणत हो गया। वस्तुतः नवकार मंत्र इहलोक एवं परलोक सर्वत्र समस्त सुखों का मूल है।

नवकार मंत्र विश्व के समस्त मंगलों में श्रेष्ठ है। यह द्रव्य मंगल नहीं वरन् भाव मंगल है। दधि, अक्षत, गुड़ आदि द्रव्य मंगल कभी अमंगल भी बन सकते हैं, पर नवकार मंत्र कभी अमंगल नहीं हो सकता। यह परमोत्कृष्ट मंगल, शान्तिप्रदाता, कल्याणकारी एवं भक्तिरस में आप्लावित करने वाला है।

नवकार मंत्र यह प्रमाणित करता है कि जैन धर्म सम्प्रदायवाद तथा जातिवाद से परे होकर सर्वथा गुणवादी धर्म है। अतः इसके आगाध्य मंत्र में अरिहंत और सिद्ध शब्दों का प्रयोग है। ऋषभ, शांति, पार्श्व या महावीर जैसे किसी व्यक्ति विशेष का नहीं। जो भी महान् आत्मा कर्म शत्रुओं को पराजित एवं विनष्ट कर इन उत्कृष्ट पदों को प्राप्त कर ले, वही अरिहंत और सिद्ध हमारे परमपूजनीय महामहिम देव हैं। इसी प्रकार आचार्य, उपाध्याय व साधु के पदों में भी किसी व्यक्ति विशेष या सम्प्रदाय विशेष के नाम का उल्लेख नहीं है वरन् जो भी महापुरुष इन पदों के लिए आवश्यक गुणों से युक्त हों, वे देव और गुरु पद के योग्य एवं वन्दनीय माने गए हैं।

नवकार मंत्र में जिन पंच परमेष्ठी को वन्दन किया गया है, उनका स्वरूप इस प्रकार है-

1. अरिहंत-प्राकृत भाषा में अरिहंत, अरहंत एवं अरुहंत ये तीनों शब्द एकार्थक हैं। संस्कृत में इन तीनों का वाचक शब्द ‘अर्हत्’ है। अर्हत् का अर्थ होता है-योग्य। अरिहंत सर्वाधिक योग्य पुरुष होते हैं, क्योंकि वे चार घाती कर्मों का क्षय कर देते हैं। आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार अरिहंत में दो

शब्द हैं—अरि + हंत । ‘अरि’ का अर्थ है हानि करने वाला शत्रु तथा ‘हंत’ का अर्थ है नष्ट करने वाला । प्रश्न होता है शत्रु कौन से ? तथा यहाँ नष्ट करने या मारने का क्या तात्पर्य है ? यह मारना भी मुक्ति का रास्ता किस प्रकार है ? प्रत्युत्तर प्रस्तुत है कि आत्मा के असली शत्रु मानव नहीं, प्राणी नहीं, किन्तु अपने वे विकार हैं जो आत्मगुणों को क्षति पहुँचाते हैं । वास्तव में शत्रु वे ही हैं जो आत्मगुणों की हानि करने वाले हैं । तन व धन की हानि करने वाले नहीं, किन्तु जो काम, क्रोधादि विकार आत्मगुणों की हानि करते हैं, वे ही वस्तुतः आत्मा के शत्रु हैं । जो व्यक्ति कैवल्य प्राप्ति में बाधक इन घाती कर्मों को नष्ट कर देते हैं, वे ही सच्चे शत्रुओं को परास्त करने वाले महापुरुष अरिहंत हैं । घाती कर्म वे हैं जो आत्मा के सच्चे स्वरूप के प्रगट होने में बाधक हैं । घाती कर्म हैं—1. ज्ञानावरणीय, 2. दर्शनावरणीय, 3. मोहनीय व 4. अन्तराय कर्म । इनका क्षय होने से केवल ज्ञान, केवल दर्शन आदि अक्षय गुणों की प्राप्ति हो जाती है । अरिहंत प्रभु अठारह दोष रहित और बारह गुण सहित हैं ।

अरिहंत भगवान जिन अठारह दोषों से रहित हैं, वे निम्नलिखित हैं—

1. दानान्तराय, 2. लाभान्तराय, 3. भोगान्तराय, 4. उपभोगान्तराय,
5. वीर्यान्तराय, 6. हास्य, 7. रति, 8. अरति, 9. भय, 10. शोक, 11. जुगुप्सा, 12. मिथ्यात्व, 13. काम, 14. अज्ञान, 15. निद्रा, 16. अविरति,
17. राग एवं 18. द्वेष । दिगम्बर परम्परा में क्षुधा, तृष्णा, जरा जैसे शारीरिक दोषों को बताकर 18 बतलाये हैं । वस्तुतः यहाँ मानसिक दोष की ही अपेक्षा है । शरीर के दोषों से अर्हता में कोई कमी नहीं आती ।

अरिहंत भगवान के बारह विशिष्ट गुण होते हैं, जो—1. अशोक वृक्ष, 2. पुष्पवृष्टि, 3. दिव्यध्वनि, 4. चामर, 5. स्फटिक सिंहासन, 6. भामण्डल, 7. देवदुन्दुभि एवं 8. मनोहर छत्र । आठ मदों को गालने से प्राप्त इन आठों विभूतियों को पाकर भी अरिहंत महाप्रभु इनमें राग नहीं करते हैं, ये आठ गुण

आठ प्रतिहार्य कहलाते हैं, क्योंकि प्रतिहारों (राजा के सेवक) की तरह ये साथ रहते हैं, इन आठ गुणों के अतिरिक्त चार गुण हैं—9. अनन्त ज्ञान, 10. अनन्त दर्शन, 11. अनन्त चारित्र एवं 12. अनन्त बलवीर्य। ये आत्मिक गुण हैं। इनमें परिपूर्णता ही साध्य की प्राप्ति का प्रतीक है।

**2. सिद्ध-**जिन महान् आत्माओं ने अपना सकल कार्य सिद्ध कर लिया है वे ही सिद्ध हैं। आत्मा का निजी कार्य क्या है? आत्मा पर जो कर्म का मल लगा हुआ है और जो अपने असली स्वरूप को पहचानने में बाधक हैं उनको दूर कर आत्मा का वास्तविक स्वरूप प्राप्त करना ही आत्मा का स्वकार्य है। आत्मा का असली स्वरूप अरूपी, अविनाशी, अजर, अमर, ज्ञानस्वरूप एवं आनन्द रूप है। वैसे स्वरूप की प्राप्ति करने वाले ही सिद्ध हैं। पन्द्रह प्रकार से सिद्ध गति प्राप्त होती है—

1. तीर्थ सिद्ध,
2. अतीर्थ सिद्ध,
3. तीर्थङ्कर सिद्ध,
4. अतीर्थङ्कर सिद्ध,
5. स्वयं बुद्ध सिद्ध,
6. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध,
7. बुद्धबोधित सिद्ध,
8. स्त्रीलिङ्ग सिद्ध,
9. पुरुषलिङ्ग सिद्ध,
10. नपुंसकलिङ्ग सिद्ध,
11. स्वलिङ्ग सिद्ध,
12. अन्यलिङ्ग सिद्ध,
13. गृहस्थलिङ्ग सिद्ध,
14. एक सिद्ध एवं 15. अनेक सिद्ध।

सिद्ध भगवान के आठ अत्यन्त विशिष्ट गुण हैं—

1. अनन्त ज्ञान,
2. अनन्त दर्शन,
3. अव्याबाध सुख,
4. क्षायिक सम्यक्त्व,
5. अटल अवगाहना,
6. अमूर्तपन,
7. अगुरुलघु एवं 8. अनन्त आत्म सामर्थ्य।

**3. आचार्य-**यह पद गुरुपद में प्रमुख है। आचार्य का तात्पर्य है वे महापुरुष जो स्वयं पंचाचार का पालन करते हैं तथा दूसरों से भी पालन करवाते हैं। जो संघ का संचालन करते हैं। आचार्य समस्त श्रमण वर्ग के अग्रगण्य नेता होते हैं। उनकी आज्ञा से ही संघ का व्यवहार चलता है।

आचार्य की आज्ञा सर्वोपरि मानी गयी है। ये ही श्रमण संघ के प्राशासनिक कार्यों का नेतृत्व करते हैं। आचार्य के 36 गुण होते हैं जो निम्न प्रकार से हैं— पाँच आचार (ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार एवं वीर्याचार) का स्वयं पालन करे और दूसरों को पालन करने का उपदेश दे; पाँच इन्द्रियों के विषयों को जीतने वाले; नववाड़ सहित ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले; चार कषाय के टालने वाले; पाँच महाब्रतों के पालने वाले और पाँच समिति व तीन गुप्ति की शुद्ध आराधना करने वाले। ऐसे 36 गुण से सम्पन्न महापुरुष आचार्य कहलाते हैं।

**4. उपाध्याय**—उपाध्याय श्रमण वर्ग के शैक्षणिक कार्यों के संचालक होते हैं। ये 11 अंग, 12 उपांग, चरणसत्तरी एवं करण सत्तरी इन 25 गुणों से सम्पन्न व आगमों के पूर्ण ज्ञाता होते हैं। सूत्र व्याख्या के क्षेत्र में उपाध्याय का मत अधिकारी मत माना जाता है। उपाध्याय का कार्य स्वयं विमल ज्ञानादि प्राप्त करना तथा अन्य जिज्ञासुओं को प्रभु की वाणी का ज्ञान देकर उन्हें मिथ्यात्व से सम्यक्त्व में स्थिर करना है। शास्त्र-सम्मत उपदेश व प्रवचन द्वारा लोगों को सम्यक्त्व में स्थिर रखना तथा जिनवाणी की शास्त्र सम्मत व्याख्या करना ही उनका प्रमुख कार्य है। मतभेद की दशा में शास्त्रीय सत्य को जन-जन के मन में उतार कर मिथ्या मार्ग से बचाना उपाध्याय का मुख्य कार्य है।

**5. साधु**—जो महापुरुष अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह रूप पाँच महाब्रतों को तीन करण तीन योग से पालन करते हैं और श्रमणोचित गुणों से युक्त होते हैं, वे साधनाशील महापुरुष ही साधु एवं साध्वी कहलाते हैं। जो पाँच समिति, तीन गुप्ति का विधिवत् पालन करते हुए मोक्ष मार्ग की राह में आगे बढ़ते रहते हैं, वे साधु-साध्वी हैं। साधु के 27 गुण होते हैं। उन श्रमणोचित गुणों से युक्त साधु को ही बन्दनीय साधु-साध्वी कहते हैं। ये 27 गुण निम्नलिखित हैं—

पाँच महाब्रतों का पालन, पाँच इन्द्रियों पर विजय, चार कषायों पर

विजय, भाव सत्य, करण सत्य, योग सत्य, क्षमावंत, वैराग्यवंत, मन समाधारणता, वचन समाधारणता, काय समाधारणता, ज्ञान सम्पन्नता, दर्शन सम्पन्नता, चारित्र सम्पन्नता, वेदनीय सहिष्णुता एवं मारणांतिक कष्ट सहिष्णुता । उक्त गुणों के धारक संत-सती वर्ग होते हैं ।

### संबंधित प्रश्नोत्तर

**प्रश्न 1. मंत्र किसे कहते हैं ?**

**उत्तर** जिस सूत्र में कम शब्दों में अधिक भाव और विचार हों और जो कार्यसिद्धि में सहायक हो, उसे मंत्र कहते हैं ।

**प्रश्न 2. नवकार मंत्र का क्या महत्व है ?**

**उत्तर** नवकार मंत्र का अर्थ है—नमस्कार मंत्र । प्राकृत भाषा में नमस्कार को णमोक्कार कहते हैं । इसमें पाँच पदों को नमन किया गया है । इनमें से प्रथम दो देवपद (अरिहंत और सिद्ध) एवं शेष तीन गुरु पद (आचार्य, उपाध्याय एवं साधु) हैं । ये पाँचों पद अपने आराध्य या इष्ट हैं, इसलिए इन्हें पंच परमेष्ठी भी कहा गया है । इस मंत्र के उच्चारण से पापों का नाश होता है । यह मंगलकारी है ।

**प्रश्न 3. नवकार मंत्र मंगल रूप क्यों हैं ?**

**उत्तर** मं का अर्थ पाप है और गल का अर्थ है—गलाना । जो पाप को गलावे, वह मंगल है । नवकार मंत्र से पाप का क्षय होता है, पाप रुकते हैं, इसलिए नवकार मंत्र मंगल रूप है ।

**प्रश्न 4. नवकार मंत्र में कितने पद और अक्षर हैं ?**

**उत्तर** नवकार मंत्र में 5 पद और 35 अक्षर है । चूलिका को मिलाने पर कुल 9 पद और 68 अक्षर होते हैं ।

**प्रश्न 5. नवकार मंत्र में धर्मपद कौन सा है ?**

**उत्तर** नवकार मंत्र में ‘णमो’ शब्द धर्म पद है । ‘णमो’ विनय का प्रतिपादक है । विनय ही धर्म का मूल है ।

- प्रश्न 6.** नवकार मंत्र किस भाषा में है ?  
**उत्तर** नवकार मंत्र प्राकृत (अर्धमागधी प्राकृत) भाषा में है।
- प्रश्न 7.** अरिहन्त और सिद्ध में क्या अन्तर हैं ?  
**उत्तर** अरिहन्त भगवान् चार घनघाति कर्मो-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय का क्षय कर चुके हैं। अरिहन्त सशरीर होते हैं तथा तीर्थ की स्थापना करते हैं, उपदेश देते हैं और धर्म से गिरते हुए साधकों को स्थिर करते हैं, जबकि सिद्ध आठ कर्मों (1. ज्ञानावरणीय, 2. दर्शनावरणीय, 3. मोहनीय, 4. अन्तराय, 5. वेदनीय, 6. आयु, 7. नाम, 8. गोत्र) को क्षय करके सिद्ध हो गये हैं और वे सुखरूप सिद्धालय में विराजमान हैं। वे अशरीरी होने से उपदेश आदि की प्रवृत्ति नहीं करते।
- प्रश्न 8.** सिद्ध मुक्त हैं, फिर भी सिद्धों के पहले अरिहन्तों को नमस्कार क्यों किया गया ?  
**उत्तर** अरिहंत धर्म को प्रकट कर मोक्ष की राह दिखाने वाले और सिद्धों की पहचान कराने वाले हैं। अरिहंत सशरीरी हैं और सिद्ध अशरीरी, इसलिए परम उपकारी होने के कारण सिद्धों के पहले अरिहंतों को नमस्कार किया गया है।
- प्रश्न 9.** माला के मणियें 108 क्यों होते हैं ?  
**उत्तर** पंच परमेष्ठी में 108 गुण पाये जाते हैं, इस कारण से माला के मणियें भी 108 होते हैं। अरिहंत पद का सफेद रंग व 12 गुण, सिद्ध पद का लाल रंग व 8 गुण, आचार्य पद का पीला रंग व 36 गुण, उपाध्याय पद का हरा रंग व 25 गुण और साधु-साध्वी पद का काला रंग व 27 गुण होते हैं।

◆◇◆

### 3. ईर्यापथिक सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवं ! इरियावहियं पडिक्कमामि, इच्छं इच्छामि पडिक्कमितं । इरियावहियाए विराहणाए, गमणागमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा-उत्तिंग-पणग-दग-मट्टी-मक्कडा-संताणा-संकमणे, जे मे जीवा विराहिया, एगिंदिया, बेझंदिया, तेझंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्धविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

शब्दार्थ-भगवं = हे भगवन् । इच्छाकारेण = मेरी इच्छा है कि । संदिसह = आज्ञा दीजिए । इरियावहियं = मार्ग में आने जाने की क्रिया का । पडिक्कमामि = प्रतिक्रमण करूँ । इच्छं = (आज्ञा पाकर बोलता है) स्वीकार है । इच्छामि = चाहता हूँ । पडिक्कमितं = प्रतिक्रमण करना । इरियावहियाए = ईर्यापथिकी की । विराहणाए = विराधना से । गमणागमणे = जाने आने में । पाणक्कमणे = प्राणी के दबने से । बीयक्कमणे = बीज के दबने से । हरियक्कमणे = हरी वनस्पति के दबने से । ओसा = ओस । उत्तिंग = कीड़ियों के बिल । पणग = पाँच रंग की काई । दग = सचित्त पानी । मट्टी = सचित्त मिट्टी । मक्कडा-संताणा = मकड़ी के जाले (इनको) । संकमणे = कुचलने से । जे = जो । मे = मैंने । जीवा = जीवों की । विराहिया = विराधना की हो । एगिंदिया = एक इन्द्रिय वाले । बेझंदिया = दो इन्द्रियों वाले । तेझंदिया = तीन इन्द्रियों वाले । चउरिंदिया = चार इन्द्रियों वाले । पंचिंदिया = पाँच इन्द्रियों वाले जीवों को । अभिहया = सामने आते हुए को ठेस पहुँचाई हो । वत्तिया = धूल आदि से ढँके हों । लेसिया =

मसले हों। संघाइया = इकट्ठे किये हों। संघटिया = पीड़ा पहुँचे जैसे छुआ हो। परियाविया = कष्ट पहुँचाया हो। किलामिया = खेद उपजाया हो। उद्विया = हैरान किया हो। ठाणाओ = एक जगह से। ठाणं = दूसरी जगह। संकामिया = रखे हों। जीवियाओ = जीवन से। वरोविया = रहित किया हो। तस्स मिच्छा मि दुक्कडं = वह मेरा पाप मिथ्या हो।

**पाठ विवेचन-**विवेक धर्म का मूल है। ‘विवेगे धम्ममाहिए’। ईर्यापथिकी सूत्र जहाँ एक और विनय-भावना का रूप प्रकट करता है, वहाँ दूसरी ओर जैन धर्म की विवेक प्रधान सूक्ष्म-भावस्पंदित दयालुता की पवित्र भावना से ओत-प्रोत भगवती अहिंसा का मूर्त रूप भी प्रस्तुत करता है। इसमें गमनागमन के समय सूक्ष्म जीव से लेकर स्थूल जीवों के सूक्ष्मतम हिंसाजन्य पापों के लिए प्रायश्चित्त कर अपनी आत्मा को स्वच्छ निर्मल बनाने का पवित्र सन्देश है। सभी दर्शनों, धर्मों एवं सूत्रों में यह अपने आप में अनूठा है।

जरा गौर से देखें। सूत्रकार की दृष्टि कितनी पैनी है? पाठों का उच्चारण करते-करते सहज ही हृदय अहिंसा की मंगलमयी भावना से अनुपूरित हो जाता है-

‘इच्छाकारेण संदिसह भगवं, इरियावहियं पडिक्कमामि’

वाक्यांश में साधक, भगवान से या गुरु महाराज से गमनागमन में लगे हुए पापों की विशुद्धि हेतु आज्ञा लेने का उपक्रम करता है। विनय और नप्रता का कितना उदात्त भाव है कि यदि भगवन्! आपकी इच्छा हो तो मार्ग में चलने की क्रिया रूप पाप से निवृत्त होने के लिए प्रायश्चित्त करूँ? अपने पापों की आलोचना करने हेतु भी गुरुजन की स्वीकृति; कितना उदात्त आदर्श है? ‘इच्छं इच्छामि, पडिक्कमितुं, इरियावहियाए विराहणाए’ वाक्यांश में भगवान की आज्ञा शिरोधार्य कर इस इच्छा को पुनः दोहराया गया है।

‘पाणक्कमणे………मक्कडा संताणा संक्मणे’ वाक्यांश में सूक्ष्म

जीवों का उल्लेख है जैसे बीज, वनस्पति, ओस, कीड़ी, काई, जल, मिट्टी और मकड़ी के जाले आदि ।

फिर ‘जे मे जीवा विराहिया’ में जीवों के प्रति हुई विराधना-उन्हें दी गयी पीड़ा की ओर संकेत है । ये जीव कौनसे ? प्रत्युत्तर में सूत्रकार ने सम्पूर्ण जीवों को एक साथ लेने की दृष्टि से पाँच जातियों में जीव को बाँटा है । ये हैं- एकेन्द्रिय, द्वीइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ।

जीवों की हिंसा-विराधना किस प्रकार ? इसका समाधान तो अत्यन्त सूक्ष्म व पैनी दृष्टि से देखने योग्य है । ‘अभिहया………ववरोविया’ सूत्रांश में जीवहिंसा के दस प्रकार वर्णन किये गये हैं । इतनी सूक्ष्म हिंसा के लिए भी हार्दिक अनुताप । अहिंसा की कितनी बारीकी । किसी को मारना ही पाप नहीं वरन् किसी के साथ टकराना, उसे पीड़ा पहुँचाना भी पाप है । किसी भी जीव की स्वतन्त्रता में किसी भी तरह की बाधा डालना हिंसा है । अहिंसा के सम्बन्ध में इतना सूक्ष्म व विश्लेषणात्मक विवेचन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता ।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रकार से जीव व उनकी विराधना के भिन्न-भिन्न प्रकारों का उल्लेख कर हृदय से प्रायश्चित्त करते हुए यह कामना अभिव्यक्त की गयी है कि ‘तस्स मिच्छामि दुक्कडं’ अर्थात् उसका दुष्कृत-पाप मेरे लिये निष्फल सिद्ध होवे । पाप का कितना भय ? पापों का फल कितना भयावह है ? हलुकर्मी आत्मा को निश्चय ही इससे महान् भय होता है । वह प्रभु से इन पापों का कटु फल मिथ्या साबित होने की प्रार्थना करता है ।

पश्चात्ताप एवं आत्म-निरीक्षण से, गन्दे वस्त्र के साबुन द्वारा स्वच्छ हो जाने की तरह ही, आत्मदेव भी निर्मल, पाप-विमुक्त तथा स्वच्छ-विशुद्ध बन जाता है । वस्तुतः आलोचना करते समय साधक अपने पापों की गठरी खोल देता है । उसका बोझ हल्का हो जाता है । प्रायश्चित्त से साधक निकाचित व चिकने कर्मों के बंधन की श्रेणी से निकल जाता है । क्योंकि कर्म-बन्ध में भावों का महत्व ही अधिक है ।

## संबंधित प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. इच्छाकारेण के पाठ की विषय सामग्री क्या है ?

उत्तर इस पाठ की विषय सामग्री गमनागमन की क्रिया में लगे पापों की विशुद्धि से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत साधक, सामायिक में बैठने से पूर्व या पश्चात् आने-जाने या किसी कार्य को करते समय होने वाले पापों की पश्चात्ताप द्वारा विशुद्धि करता है।

प्रश्न 2. इस सूत्र के कितने नाम हैं व कौन-कौन से तथा क्यों ?

उत्तर (1) आलोचना सूत्र, (2) ईर्यापथिक सूत्र एवं (3) इच्छाकारेण का पाठ।

इसे आलोचना सूत्र कहा गया है, क्योंकि इसके अन्तर्गत साधक द्वारा अपने पापों की आलोचना की गई है। इसे ईर्यापथिक भी कहा गया है, क्योंकि इसके अन्तर्गत ईर्यापथ अर्थात् गमनागमन के मार्ग में लगने वाले पापों की आलोचना कर उससे पीछे हटने की क्रिया की जाती है। ‘इच्छाकारेण’ इस आदि पद के कारण सम्पूर्ण पाठ को इच्छाकारेण भी कहते हैं।

प्रश्न 3. इस सूत्र में जीवों की विराधना के कितने प्रकार बतलाए हैं ?

उत्तर इस सूत्र में जीव-विराधना के अभिह्या से जीवियाओ व वरोविया तक दस प्रकार बतलाये गये हैं।

प्रश्न 4. यह सूत्र इसी स्थान पर एवं प्रतिज्ञा ग्रहण करने से पूर्व ही क्यों ?

उत्तर पाप-विशुद्धि करने से पूर्व भगवान तथा गुरुदेव को बन्दन करने, उनका स्मरण कर मन को पवित्र बनाने व उनकी आज्ञा लेने की

आवश्यकता है। साथ ही यह सौजन्य एवं शिष्टाचार का तकाजा भी है। अतः आलोचना के पूर्व नमस्कार मन्त्र व गुरु वंदन-सूत्र के पाठों को स्थान दिया गया है।

इसके बाद जब साधक महापुरुषों का ध्यान और चिन्तन-मनन कर प्रतिज्ञा सूत्र में आबद्ध होता है तो यह आवश्यक है कि वह इसके पहले ही अपने मन-मन्दिर को स्वच्छ बना ले। एक साधारण किसान भी खेत में बीज डालने से पूर्व खेत में रहे हुए कंकर, पत्थर, घास-फूस आदि को हटाकर उसे साफ एवं समतल बनाता है। इसी भाँति सामायिक भी एक आध्यात्मिक कृषि है। प्रतिज्ञा सूत्र के वाचन द्वारा हृदय में साधना के बीज डालना है। इसके पूर्व साधक अपने आपको ईर्यापथ में लगे दोषों से मुक्त कर मन-मन्दिर को स्वच्छ एवं सम बनाने का उपक्रम करे, इसी लक्ष्य से इस सूत्र को प्रतिज्ञा-सूत्र में आबद्ध होने से पहले रखा है।

**प्रश्न 5.** क्या मात्र ‘मिच्छा मि दुक्कडं’ कह देने से पापों की विशुद्धि हो जाती है ?

**उत्तर** ‘मिच्छा मि दुक्कडं’ शब्द कोई ऐसा ताबीज या मन्त्र नहीं है जो बोलने मात्र से ही पाप-मुक्ति कर दे। पाप-मुक्ति के लिए ‘मिच्छा मि दुक्कडं’ शब्द का उच्चारण ही पर्याप्त नहीं है। महत्वपूर्ण है इस शब्द के पीछे रही हुई भावना, इसके द्वारा व्यक्त होने वाला पश्चात्ताप। आचार्य भद्रबाहु ने ‘मिच्छा मि दुक्कडं’ की बहुत ही सुन्दर व्याख्या की है।

‘मि’ ति मिउ-मद्वत्ते, ‘छ’ ति अ दोसाण छादणे होइ।  
‘मि’ ति अ मेराई ठिओ, ‘दु’ ति दुगंछामि अप्पाणं ॥1॥

‘क’ ति कडं मे पावं, ‘डं’ ति डेवेमि तं उवसमेणं।  
एसो मिच्छादुक्कडं, पयक्खरत्थो समासेणं ॥2॥

मि का अर्थ मृदुता (कोमलता अर्थात् अहंकार-त्याग)

छा का अर्थ दोष छादन - दोषों का त्याग ।

मि का अर्थात् मर्यादा का स्थिरीकरण ।

दु अर्थात् आत्मा को दुत्कार-फटकार ।

क अर्थात् कृत पापों की मन से स्वीकृति ।

डं का अर्थ है उन पापों का उपशमन ।

आचार्य भद्रबाहु कृत 'मिच्छा मि दुक्कड़' की यह व्याख्या उस शब्द की भावना को भली-भाँति व्यक्त करती है ।

**प्रश्न 6.** जब 'ठाणाओ ठाणं संकामिया' अर्थात् एक जीव को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाने में हिंसा है, तो रजोहरण द्वारा पूँजना उचित कैसे होगा ? क्योंकि इसके अन्तर्गत भी हम जीव को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखते हैं ?

**उत्तर** 'ठाणाओ ठाणं संकामिया' शब्दों का तात्पर्य दुर्बुद्धि या स्वार्थ से जीवों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाना है । शास्त्रकारों ने इसमें हिंसा का उल्लेख किया है । किन्तु रजोहरण द्वारा पूँजने से आशय जीवों को दुर्बुद्धि से हटाने या उन्हें कष्ट देने का नहीं वरन् उनकी रक्षा करने का है । जीवों को पैर से कुचल कर दबने से बचाने के आशय से अथवा दया भाव से ही साधक रजोहरण द्वारा पूँजने की क्रिया करता है, न कि किसी दुर्भावना से ।



## 4. उत्तरीकरण सूत्र

तस्स उत्तरीकरणेण, पायच्छित्करणेण, विसोहीकरणेण,  
विसल्लीकरणेण, पावाणं कम्माणं निग्धायणद्वाए, ठामि काउस्सगं ।

अन्नतथ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं,  
जंभाइएणं, उडुएणं, वायनिसगेणं, भमलीए, पित्तमुच्छाए । सुहुमेहिं  
अंग-संचालेहिं, सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं, सुहुमेहिं दिड्डि-संचालेहिं  
एवमाइहिं आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सगो ।  
जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, णमुककारेण, न पारेमि । तावकायं  
ठाणेण, मोणेण, झाणेण, अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ-तस्स = उसकी (दूषित आत्मा की) । उत्तरीकरणेण =  
उत्कृष्टता के लिए । पायच्छित्त = प्रायश्चित्त । करणेण = करने के लिए ।  
विसोही-करणेण = विशेष शुद्धि करने के लिए । विसल्ली-करणेण =  
शल्य रहित करने के लिए । पावाणं कम्माणं = पाप कर्मों का । निग्धायणद्वाए  
= नाश करने के लिए । ठामि = करता हूँ । काउस्सगं = कायोत्सर्ग ।  
अन्नतथ = इन क्रियाओं को छोड़ कर । ऊससिएणं = ऊँची साँस लेने से ।  
नीससिएणं = साँस छोड़ने से । खासिएणं = खाँसी आने से । छीएणं =  
छींक आने से । जंभाइएणं = जम्हाई आने से । उडुएणं = डकार आने से ।  
वायनिसगेणं = अधो वायु से । भमलीए = चक्कर आने से । पित्त = पित्त  
के कारण । मुच्छाए = मूर्छा से । सुहुमेहिं = सूक्ष्म रूप में । अंगसंचालेहिं  
= अंग के संचालन से । सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं = सूक्ष्म रूप में कफ के  
संचार होने से । सुहुमेहिं दिड्डिसंचालेहिं = सूक्ष्म रूप में दृष्टि का संचालन  
होने से । एवमाइहिं आगारेहिं = इस प्रकार के आगारों से । अभग्गो =

अखण्ड । अविराहियो = अविराधित । हुज्ज मे काउस्सगो = मेरा कायोत्सर्ग हो । जाव = जब तक । अरिहंताणं = अरिहंत । भगवंताणं = भगवन्तों को । णमुक्कारेण = नमस्कार करके । ण पारेमि = (कायोत्सर्ग को) नहीं पारूँ । ताव = तब तक । कायं = शरीर को । ठाणेण = स्थिर रख कर । मोणेण = मौन रखकर । झाणेण = ध्यान रखकर । अप्पाणं = अपनी आत्मा को । वोसिरामि = पापकारी कर्मों (कषाय आदि) से अलग करता हूँ ।

**पाठ विवेचन-**पाप-निवृत्ति और प्रायश्चित्त-पद्धति को आचार-पीठिका मिली है कायोत्सर्ग के रूप में । तस्सउत्तरी सूत्र इसी कायोत्सर्ग की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि है । इसमें साधक पाप-क्रिया से आत्मा को पृथक् करने और इसे पवित्र बनाने के लिए कायोत्सर्ग करता है । प्रस्तुत सूत्र के द्वारा आत्मा ईर्यापथिक करने के बावजूद भी शेष आत्मिक मलिनता एवं विषमता को दूर करने के लिए, विशिष्ट परिष्कार के लिए कायोत्सर्ग की साधना करती है ।

सूत्र के अग्रभाग ‘तस्स उत्तरी……………ठामि काउस्सगं’ में कायोत्सर्ग के उद्देश्य बताये गये हैं । कायोत्सर्ग के पाँच उद्देश्य हैं- 1. आत्मा की उत्कृष्टता, 2. प्रायश्चित्त, 3. विशेष विशुद्धि, 4. शल्य रहित होना और 5. पाप कर्मों का नाश ।

संस्कार (अशुद्धि निवारण) के तीन प्रकार बताये गये हैं-दोष मार्जन, हीनांगपूर्ति एवं अतिशयाधायक । प्रत्येक पदार्थ इन तीन संस्कारों से अपनी सत्य दशा में पहुँच पाता है । प्रथम दोष-मार्जन संस्कार, दोषों को दूर करता है । दूसरे हीनांगपूर्ति संस्कार (शेष दोषों को सर्वथा समाप्त कर) हीनताओं को मिटा पूर्णता का प्रतिष्ठापन करता है । तीसरा संस्कार दोष रहित हुए पदार्थ में विशेष गुण उत्पन्न करता है । आत्म-शुद्धि के लिए भी ये तीन संस्कार माने गये हैं । आलोचना एवं प्रतिक्रमण के द्वारा स्वीकृत ब्रत के आलस्य व

असमर्थतावश लगे दोषों, अतिचारों की विशुद्धि की जाती है। यह कार्य ईर्यापथिक सूत्र द्वारा किया जाता है। इसके बावजूद भी कुछ पाप मल शेष रह ही जाते हैं। कायोत्सर्ग द्वारा इन्हें भी दूर करने का प्रयास किया जाता है। यह संकल्प हम इस ‘तस्स उत्तरी’ सूत्र के पाठ से करते हैं। उत्कीर्तन सूत्र द्वारा श्रेष्ठ आत्माओं के गुणों का वर्णन करते हुए, उनके गुणों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

‘अन्नत्थ……..दिट्टिसंचालेहिं’ में इस कायोत्सर्ग की साधना के कुछ आगार हैं। यद्यपि कायोत्सर्ग का अर्थ ही शरीर की ओर से ध्यान हटाकर इसे पूर्णतया स्थिर कर आत्मिक प्रवृत्तियों में लगाना है। इसके द्वारा मन, वचन व शरीर में दृढ़ता का संचरण होता है, तथापि शरीर के कुछ व्यापार ऐसे हैं जिन्हें दृढ़ से दृढ़ साधक भी रोक नहीं सकता। इन क्रियाओं से भी ध्यान में विक्षेप होता है। अतः इस विक्षेप के लिए ब्रत व प्रतिज्ञा धारण करते समय इसमें कुछ आगार (छूटें) रखना आवश्यक है।

कायोत्सर्ग का अर्थ जैसा कि पूर्व विवेचन से भी स्पष्ट है—शरीर की सब प्रवृत्तियों को रोककर पूर्णतया निस्पन्द एवं निश्चल हो आत्मस्थ होना है। इसमें आत्मा बाह्य जगत् से सम्बन्ध हटाकर शरीर की ओर से भी पराङ्मुखी बन जाती है। किन्तु शरीर के कुछ कार्य—व्यापार ऐसे होते हैं जो बराबर चलते ही रहते हैं—उनमें से एक प्रकार के व्यापार स्थूल कहलाते हैं—जिनका रूप बाहर में प्रकटित होता है, जो ‘ऊससिएण से पित्तमुच्छाए’ तक नव है। किन्तु ‘सुहुमेहिं (1) अंग (2) खेल (3) दिट्टि संचालेहिं’ तक तीन स्वाभाविक शारीरिक प्रक्रियाएँ इस प्रकार से होती हैं कि साधक को उनका आभास हो जाता है और उसके फलस्वरूप ध्यान में बाधा अनुभव होती है। अतः वीतराग भगवन्तों ने जो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे, शरीर की उन क्रियाओं को ज्ञान में देखकर—जानकर तथा साधक आत्मा का कायोत्सर्ग उन कारणों की उपस्थिति में भी

अभंग एवं अविराधित रहे, इस हेतु तीनों को भी, स्थूल के साथ समाहित करते हुए आगारों की संख्या बारह निरूपित की है।

कायोत्सर्ग के दौरान (अन्तर्गत) अंगोपांग सूक्ष्मरूपेण हरकत में आ जाया करते हैं। जैसे-अङ्गुलियाँ हाथ एवं पावों में कम्पन होना, ऐंठन, जकड़न, बाँयटे आ जाना, अंग स्फुरण होना, निष्प्रयोजन ही गर्दन हिलने लगना, जिनका कि पूर्वाभास नहीं होता है। अचानक ही कफ की शिकायत हो जाना और सूक्ष्म रूप में कफ का संचार होने लग जाता है। खाँसी का तो ‘खासिएं’ के आगार के साथ पूर्व में उल्लेख दिया हुआ है, किन्तु खाँसी के साथ कफ के भी विघ्न की सम्भावना रहती है अतः ज्ञानी भगवन्तों ने आगार में उसे भी समाविष्ट किया है। ज्ञानी-जनों के द्वारा ज्ञान में जाना हुआ एवं प्रत्यक्ष अनुभूत तथ्य है कि दृष्टि संचरण के अन्तर्गत नेत्र भी कभी-कभी सूक्ष्म रूप में हरकत में आ जाते हैं। जैसे-आँख फड़कना, पलकें सामान्य से तीव्र गति में झपकना तथा नेत्र-संचरण में तीव्रता-मंदता की स्थिति आना आदि। इन सभी का सम्बन्ध शरीर से हैं। अतः साधक आत्मा को कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा के समय इन सूक्ष्म क्रियाओं का आगार रखने की आज्ञा फरमाई है। एतदर्थं इन आगारों का उल्लेख किया गया है।

‘एवमाइएहिं आगरेहिं’ शब्दों द्वारा इन शारीरिक क्रियाओं के अतिरिक्त भी अन्य सम्भावित विशिष्ट कारणों के लिए छूट का विधान किया गया है, जैसे राजा द्वारा बल प्रयोग या देव द्वारा बल प्रयोग और जल, अग्नि आदि का उपद्रव आदि।

‘अभग्नो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्नो’ द्वारा साधक यह स्पष्ट करता है कि इन उपर्युक्त क्रियाओं से जो कि मैंने आगार रूप में रखी हैं, ध्यान न तो टूटा हुआ ही माना जाय और न ही दूषित।

‘जाव अरिहंताणं………वोसिरामि’ पाठ में साधक कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा स्वीकार करता है। साथ ही वह इस प्रतिज्ञा की समाप्ति के लिए भी शब्दों का उल्लेख करता है कि जब तक मैं ‘नमो अरिहंताणं’ न कहूँ तब तक के लिए मैं कायोत्सर्ग करता हूँ और इसलिये मैं अपनी आत्मा को यानी कषाय आत्मा को, पापों से अलग करता हूँ।

### संबंधित प्रश्नोत्तर

**प्रश्न 1. कायोत्सर्ग क्या है ?**

**उत्तर**      कायोत्सर्ग में दो शब्द हैं—काय + उत्सर्ग। काय कहते हैं शरीर को और उत्सर्ग का अर्थ है त्यागना, छोड़ना। अतः कायोत्सर्ग का शाब्दिक अर्थ हुआ शरीर का त्याग। प्रश्न है कि शरीर त्याग तो भव समाप्ति के पूर्व नहीं किया जा सकता, जबकि हम कायोत्सर्ग तो अल्प समय के लिए करते हैं। तो क्या हम कात्योसर्ग में शरीर छोड़ने की क्रिया करते हैं ? नहीं, ऐसा समझना भ्रान्ति या भूल होगी। शरीर से यहाँ तात्पर्य शरीर की ममता से या शरीर की कुप्रवृत्तियों, आरम्भी-सांसारिक प्रवृत्तियों से है। कायोत्सर्ग में साधक इन सांसारिक, शारीरिक प्रवृत्तियों का तथा शरीर के प्रति ममत्व का त्यागकर अपने आपको आत्मिक सद्प्रवृत्तियों में संलग्न करता है।

**प्रश्न 2. इस सूत्र में कायोत्सर्ग के कितने आगार रखे गये हैं ?**

**उत्तर**      कायोत्सर्ग के 12 आगारों का उल्लेख है—1. उच्छ्वास, 2. निःश्वास, 3. खाँसी, 4. छींक, 5. जम्भाई, 6. डकार, 7.

अधोवायु, 8. चक्कर, 9. पित संचार, 10. सूक्ष्म अंग-संचालन,  
11. सूक्ष्म कफ संचार एवं 12. सूक्ष्म दृष्टि संचरण । ये सहज  
प्रवृत्तियाँ कायोत्सर्ग में आगार रूप होती हैं ।

**प्रश्न 3. इस पाठ का नाम उत्तरीकरण-सूत्र क्यों ?**

**उत्तर** इस पाठ में आत्मा को विशेष उत्कृष्ट बनाने के लिए कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा की जाती है, अतएव इस पाठ का नाम उत्तरीकरण-सूत्र रखा गया है ।

**प्रश्न 4. कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा द्वारा साधक ‘अप्पाणं वोसिरामि’ अर्थात् ‘आत्मा को वोसिराता हूँ’ ऐसा उच्चारण करता है, यह कैसे ?**

**उत्तर** ‘अप्पाणं वोसिरामि’ का शाब्दिक अर्थ आत्मा को वोसिराना नहीं, अपने आपको वोसिराना-छोड़ना है । साधक स्वयं को स्थिर रखकर, मौन एवं ध्यानपूर्वक अपने को कायोत्सर्ग में लगा देता है, तथा स्वयं के बाह्य व्यक्तित्व को भूल जाता है ।

अथवा ‘अप्पाणं’ से यहाँ तात्पर्य पापमय आत्मा से, देह की ममता से है । साधक इनको त्यागकर अपनी काया को स्थिर कर, वचन से मौन व मन से एकाग्र होकर उत्कृष्टता हेतु समर्पित हो जाता है ।



**विधि-ईर्यापथिक सूत्र** के काउस्सग्ग के पूर्ण होने के पश्चात् उनमो अरिहंताणं बोलकर काउस्सग्ग पाले । तत्पश्चात् काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ, उत्कीर्तन सूत्र तथा सामायिक प्रतिज्ञा सूत्र बोलें । सामायिक प्रतिज्ञा सूत्र में जावनियमं के बाद जितनी सामायिक लेनी हो ‘‘उतने मुहूर्त उपरान्त न पालूँ तब तक’’ ऐसा बोलकर शेष पाठ पूर्ण करें ।

## 5. कायोत्सर्व-शुद्धि का पाठ

काउरसग में आर्तध्यान, रौद्र ध्यान ध्याया हो, धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान नहीं ध्याया हो तथा काउरसग में मन, वचन और काया चलायमान हुए हों, तो तरस्स मिच्छा मि दुक्कड़ं ।

◆◆◆

## 6. उत्कीर्तन सूत्र

लोगर्स्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।  
अरिहंते कित्ताइस्सं, चउवीसंपि केवली ॥1॥  
उसभमजिअं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।  
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥2॥  
सुविहिं च पुष्फदंतं, सीअल-सिज्जंस-वासुपुज्जं च ।  
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥3॥  
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।  
वंदामि रिडुनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥4॥  
एवं मए अभिथुआ, विहूयरयमला पहीणजरमरणा ।  
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥5॥  
कित्तिय-वंदिय-महिया, जे ए लोगर्स्स उत्तमा सिद्धा ।  
आरुग्ग-बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥6॥  
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।  
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥7॥

**शब्दार्थ-**लोगस्स = लोक के । उज्जोयगरे = प्रकाश करने वाले ।  
**धर्मतित्थयरे** = धर्मतीर्थ के कर्ता । **जिणे** = रागद्वेष को जीतने वाले ।  
**अरिहंते** = अरिहंतों की । **कित्तड्स्सम्** = स्तुति करूँगा । **चउवीसंपि** = सभी  
 चौबीस तीर्थङ्करों की । **केवली** = केवल-ज्ञानियों की । **उसभं** = ऋषभ  
 देवजी को । **अजिअं** = अजितनाथजी को । **च** = और । **वंदे** = वन्दना  
 करता हूँ । **संभव** = संभवनाथजी को । **अभिणंदणं** = अभिनन्दनजी को ।  
**सुमङ् च** = और सुमतिनाथजी को । **पउमप्पहं** = पद्मप्रभजी को । **सुपासं**  
 = सुपार्श्वनाथजी, **जिणं** = जिनराज को । **च** = और । **चंदप्पहं** = चन्द्रप्रभजी  
 को, **वंदे** = वंदना करता हूँ, **सुविहिं** = सुविधिनाथजी को, **पुष्फदंतं** =  
 पुष्पदंतजी को । **सीअल-सिज्जंस** = शीतलनाथजी, श्रेयांसनाथजी ।  
**वासुपुज्जं च** = और वासुपूज्यजी को । **विमलमणंतं च जिणं** =  
 विमलनाथजी तथा अनन्तनाथजी जिनेश्वर को । **धर्मं संति च वंदामि** =  
 धर्मनाथजी और शांतिनाथजी को वन्दन करता हूँ । **कुंथुं अं च** = कुन्थुनाथजी  
 और अरनाथजी को । **मल्लिं वंदे** = मल्लिनाथजी को वन्दन करता हूँ ।  
**मुणिसुव्वयं नमिजिणं च** = मुनिसुब्रतजी और नेमिनाथजी को । **रिद्वनेमिं** =  
 अरिष्टनेमिजी को । **पासं तह वद्धमाणं च** = और पार्श्वनाथजी तथा वर्द्धमान  
 जी को । **वंदामि** = वन्दन करता हूँ । **एवं मए अभित्थुआ** = इस प्रकार मेरे  
 द्वारा स्तुति किये गये । **विहूयरयमला** = पापरूपी रज मल से रहित ।  
**पहीणजरमरणा** = बुढ़ापा और मृत्यु से रहित । **चउवीसंपि** = चौबीसों ही ।  
**जिणवरा** = जिनेश्वर । **तित्थयरा** = तीर्थङ्कर । **मे** = मुझ पर । **पसीयंतु** =  
 प्रसन्न हों । **कित्तिय** = वचनयोग से कीर्तित । **वंदिय** = काययोग से नमस्कृत ।  
**महिया** = मनोयोग से वंदित । **जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा** = जो लोक में  
 उत्तम हैं, वे सिद्ध । **आरुग** = आरोग्य । **बोहिलाभं** = बोधिलाभ को ।  
**समाहिवरमुत्तमं दिंतु** = उत्तम व श्रेष्ठ समाधि देवें । **चंदेसु निम्मलयरा** =  
 चन्द्रों से अधिक निर्मल । **आइच्चेसु अहियं** = सूर्यों से अधिक । **पयासयरा**

= प्रकाश करने वाले । सागरवर-गंभीरा = महासमुद्र के समान गम्भीर ।  
सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु = सिद्ध भगवान मुझे सिद्धि (मोक्ष) प्रदान करें ।

**पाठ विवेचन-**आलोचना व कायोत्सर्ग द्वारा आत्मा को अशुद्ध से शुद्ध, विषम से सम एवं प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर अग्रसर करके साधक, प्रभु स्तुति के लिए उपयुक्त आधारशिला तैयार करता है । इस आधारभित्ति के रखे जाने के पश्चात् ही उसका ध्यान प्रभु-भक्ति की ओर जाता है और वह शुद्ध-बुद्ध परमात्मा का स्मरण, चिन्तन व कीर्तन करता है । यह स्मरण, चिन्तन, कीर्तन का पुनीत कार्य, प्रस्तुत उत्कीर्तन सूत्र अर्थात् चतुर्विंशतिस्तत्व द्वारा किया जाता है । इस सूत्र के द्वारा भक्त, भगवान के प्रति अपने भक्ति-भाव का प्रदर्शन करता है ।

जैन समाज में इस सूत्र को अर्थात् लोगस्स को अत्यन्त श्रद्धास्पद माना है तथा इसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है । यह भक्ति-साहित्य की एक अमर एवं अलौकिक रचना है । भक्त साधक, जब इसका पाठ करता है तो उसका हृदय भक्तिरस से आप्लावित हुए बिना नहीं रहता । वह अनुभूति निश्चय ही अलौकिक आनन्द युक्त होती है जब भक्त अपने प्रभु की स्तुति में अपने आपको भूलकर उन्हीं के चरणों में समर्पित कर देता है ।

लोगस्स-सूत्र में वर्तमान चौबीसी के परम उपकारी वीतराग तीर्थङ्करों की स्तुति की गयी है । भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीसों तीर्थङ्कर हमारे इष्टदेव हैं । जिन्होंने विश्व को धर्म का मार्ग दिखलाया है, अहिंसा और सत्य की राह दर्शायी, ज्ञान-दर्शन की अनन्त ज्योति दिखलायी तथा इस संसार सागर से तिरकर उन्हीं के सम कर्ममुक्त हो, अपना कार्य सिद्ध करने की प्रेरणा दी । अतः हम पर उनका महान् उपकार है । इसलिये उनकी स्तुति करना और स्मरण करना हमारा कर्तव्य है ।

महापुरुषों का स्मरण हमारे हृदय को पवित्र बनाता है । वासनाओं की

अशान्ति को दूर कर अखण्ड आत्म-शान्ति का आनन्द देता है। भगवान का नाम, सांसारिक लालसाओं एवं विषय-वासना रूपी रोग की अमोघ औषधि है। भगवान के नाम में अपार, असीम बल है। इसके द्वारा भक्त सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

भगवान का निष्ठापूर्वक नाम लेते ही उनका दिव्य रूप, उनके अनन्त ज्ञानदर्शनादि गुण, प्राणिमात्र के कल्याण हेतु करुणा भावना व दया आदि हमारे सामने प्रस्तुत हो जाती हैं। मन का कैमरा जिस ओर अभिमुख होता है, तत्क्षण वैसे ही भाव-मानस पटल पर अंकित हो जाते हैं। वेश्या का नाम मन में विकारों की स्मृति कराता है तो सती का नाम लेते ही सदाचार की महिमा पर मस्तक स्वतः ही निष्ठा, श्रद्धा की रील प्रारम्भ कर देता है। महापुरुषों का नाम स्मरण, उनकी स्तुति व कीर्तन भी मन को पवित्र बनाये बिना नहीं रह सकता। अतः भगवान के नाम को केवल जड़ अक्षर वाला ही समझना भ्रान्ति है। ये अक्षर द्रव्यश्रुत द्वारा भावश्रुत जगाने में निमित्त हैं। इन चन्द अक्षरों में कर्मक्षय करने की शक्ति छिपी है।

सूत्रकार ने लोगस्स का प्रारम्भ ही भगवान की विशेषताओं से किया है। प्रथम गाथा में, उसने यह प्रकट करते हुए कि मैं चौबीस ही केवली भगवान की स्तुति करता हूँ, उन्हें चार विशेषणों से सम्बोधित किया है-

- (1) लोक में उद्योत करने वाले।
- (2) धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले।
- (3) जिन और
- (4) अरिहन्त।

(1) तीर्थङ्कर भगवान, अज्ञान अन्धकार से आच्छन्न विश्व में अपनी ज्ञानप्रभा युक्त किरणों से दिव्य प्रकाश करने वाले हैं। सूर्य, धराधाम पर भौतिक प्रकाश करता है, वैसे तीर्थङ्कर भगवान आध्यात्मिक गगन के दिव्य

सूर्य हैं। वे साधना द्वारा स्वयं केवलज्ञान, केवल-दर्शन की प्राप्ति कर इसका अलौकिक प्रकाश यत्र-तत्र बिखेरते हैं तो मिथ्यात्व व अज्ञान का अन्धकार यहाँ टिक नहीं पाता।

(2) तीर्थङ्कर भगवान धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले हैं। तीर्थ का अर्थ है-जिसके माध्यम से तिरा जाय। तीर्थ के साथ यदि धर्म को जोड़ दिया जाय तो तात्पर्य होगा-ऐसा धर्म जिसके द्वारा संसार सागर से तिरा जाय। ऐसा धर्म ही सच्चा तीर्थ है। चौबीस ही तीर्थङ्कर अपने-अपने समय में धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं। तीर्थ की स्थापना के कारण ही वे तीर्थङ्कर कहलाते हैं। तीर्थङ्कर भगवान चार तीर्थ के माध्यम से धर्म की स्थापना करते हैं। ये चार तीर्थ हैं-साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविका।

(3) तीर्थङ्कर भगवान को ‘जिन’ विशेषण से सम्बोधित किया गया है। ‘जिन’ का अर्थ है विजेता। प्रश्न है किस पर विजय? विजय शत्रुओं पर हासिल की जाती है। राग, द्वेष, कषाय एवं अष्ट कर्म ही आत्मा के शत्रु हैं। इन कषायों, विकारों एवं कर्मों पर विजय पाने वाला ही सच्चा विजेता है तथा यह विजय ही सच्ची विजय है। इनको जीतने से ही आत्मा जिन कहलाती है।

(4) चौबीस भगवान की जो चौथी विशेषता बताई गयी है वह है अरिहन्त। अरिहन्त का अर्थ है शत्रुओं का हन्ता। केवली भगवान चार घाती कर्म रूप आत्मिक शत्रुओं का नाश करने वाले हैं, अतः वे अरिहन्त कहलाते हैं।

प्रथम गाथा में भगवान के गुण दर्शकर सूत्रकार ने द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ गाथा में चौबीस ही तीर्थङ्कर भगवान के नामों का उल्लेख किया है। इसमें सभी तीर्थङ्करों के एक-एक नाम का ही उल्लेख है, पर नवमें सुविधिनाथजी के एक अपर नाम पुष्पदन्त का भी उल्लेख है। चरम तीर्थङ्कर महावीर का यहाँ वर्द्धमान नाम दिया है।

गाथाओं में भक्त पुनः भगवान की गुण-पूजा करता है तथा यह कामना अभिव्यक्त करता है कि ऐसे जो जिनवर हैं वे मुझ पर प्रसन्न होवें, तथा मोक्ष प्रदान करें।

पूर्व में चार विशेषण भगवान के बताने के बाद अगली गाथाओं में भगवान की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, वे निम्न हैं-

(5) **विद्युयरयमला**-आत्मा स्वभावतः अनन्त ज्ञान के प्रकाश से आलोकित है, किन्तु वर्तमान में इस पर पाप मल लगा हुआ है, जिससे इसकी तह में विद्यमान ज्ञान-ज्योति हमें अनुभूत नहीं होती। तीर्थঙ्कर भगवान इस पाप-मल से रहित हैं, अतः उन्होंने अपना स्वरूप प्रकट कर लिया है।

(6) **पहीणजरमरणा**-विश्व में सबसे बड़े भय दो हैं-जरा और मृत्यु। यह भय उन्हीं को है जिनके अभी कर्म शेष हैं। केवली भगवान सिद्ध होकर इन कर्म-बन्धनों से मुक्त हैं, अतः स्वतः ही वे इस जरा व मृत्यु के रोग से मुक्त हैं। वे न तो कभी वृद्ध होते हैं और न ही उन्हें अब कभी मरना है। वे इस जन्म-मरण के चक्र से परे हो गये हैं।

(7) **लोगस्स उत्तमा**-चौबीस ही तीर्थঙ्कर लोक में उत्तम हैं। वे मानवों में श्रेष्ठ व ज्येष्ठ हैं। लोक में उनकी बराबरी और कोई नहीं कर सकता।

(8) **कित्तिय-वंदिय-महिया-तीर्थঙ्कर** भगवान मेरे द्वारा कीर्तित, वंदित व पूजित हैं। अर्थात् मैं उनका कीर्तन, वन्दन व पूजन करता हूँ। वचन से उनके नाम व गुणों का स्मरण कीर्तन है। तन से उनको वंदन करना वंदन है तथा उन्हें पूज्य, स्मरणीय व स्तवनीय मानकर उनकी मन से महिमा करना पूजन है। पूजन से यहाँ तात्पर्य द्रव्य पूजा से नहीं, वरन् भाव पूजा से है। यहाँ द्रव्य पुष्पों की आवश्यकता नहीं, वरन् सद्भाव रूप गुण पुष्पों की आवश्यकता है। हमारे देव वीतराग एवं निरंजन हैं तो उनकी पूजा भी कितनी शुद्ध, भावमयी व आदर्श है।

**(9) चंदेसु निम्मलयरा-**तीर्थङ्कर भगवान चन्द्र से भी अधिक निर्मल हैं। उनकी कीर्ति भव्य जीवों के लिए चन्द्र किरणों से भी अधिक सुखद है। चन्द्र की ध्वल प्रभा में तो कालिमा का दाग है, पर भगवान का निर्मल ज्ञान प्रकाश पूर्ण है, उस पर किसी प्रकार की कालिमा का आवरण नहीं है।

**(10) आइच्चेसु अहियं पयासयरा-**तीर्थङ्कर भगवान सूर्य से भी अधिक प्रकाश करने वाले हैं। सूर्य तो द्रव्य अन्धकार को ही दूर करने में समर्थ है, जिसमें भी उसके प्रकाश पर कभी ग्रहण भी लग सकता है, पर केवली महाप्रभु विश्व से अज्ञान तिमिर को हटाकर ज्ञान के दिव्य प्रकाश से समूचे लोक को आलोकित करने वाले हैं। उनका प्रकाश असीम व अव्याबाध है।

**(11) सागरवरगम्भीरा-**तीर्थङ्कर भगवान सागरवत् गम्भीर हैं। जिस प्रकार सागर (समुद्र) में अनेकानेक नदी, नाले आदि मिलते हैं, फिर भी उसमें से पानी छलकता नहीं है। इसी प्रकार भगवान के भी अनुकूल प्रतिकूल कितने ही परीष्हह क्यों न आएं, पर वे किंचित् मात्र भी चलायमान नहीं होते हैं। जैसे कि भगवान महावीर ने चण्डकौशिक, संगमदेव, गोशालक आदि के महान् उपसर्गों को सहन किया था।

प्रभु-स्तुति के साथ ही साथ साधक कुछ कामनाएँ अभिव्यक्त करता है।

तित्थयरा मे पसीयंतु-भक्त यह प्रार्थना करता है कि ऐसे तीर्थङ्कर देवाधिदेव मेरे पर प्रसन्न हों। यद्यपि तीर्थङ्कर भगवान राग-द्वेष से रहित हैं अतः उनके किसी पर प्रसन्न या अप्रसन्न होने का सवाल ही नहीं उठता; तथापि इससे हममें सत्कर्म साधना की योग्यता आती है और हममें यह योग्यता आना ही तीर्थङ्करों का प्रसन्न होना माना गया है।

**2. आरुग्ग-**अर्थात् रोग रहित होना। रोग दो प्रकार के होते हैं। एक द्रव्य रोग और दूसरा भाव रोग। ज्वरादि द्रव्यरोग हैं। कर्म ही भाव रोग है,

जिससे समूचा संसार संत्रस्त है। भक्त भगवान से ‘आरुण्ड दिंतु’ कह कर कर्म रोग से मुक्ति प्राप्त करने की अभिलाषा अभिव्यक्त करता है। द्रव्यरोग जो कर्मरोग के कारण उत्पन्न होते हैं, कर्मरोग के समाप्त होने पर वे स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं।

**3. बोहिलाभं-**भक्त भगवान के समक्ष धर्म-प्राप्ति के लाभ से लाभान्वित होने की अभिलाषा अभिव्यक्त करता है। सच्चा साधक किसी भौतिक सामग्री की नहीं, वरन् धर्म जैसी अमूल्य आत्मिक पदार्थ की ही इच्छा करता है। उसे चाह है तो धर्म की। भगवान की स्तुति कर उनसे सांसारिक सुख सम्पत्ति व ऐश्वर्य की अभिलाषा करना भगवान की भक्ति नहीं, वरन् एक सौदा मात्र है। सच्चा भक्त ऐसा कभी नहीं करता।

**4. समाहिवरमुक्तमं दिंतु-**फिर भक्त उत्तम समाधि की इच्छा अभिव्यक्त करता है। समाधि का सामान्य आशय चित्त की एकाग्रता से है। जब साधक का हृदय इतस्ततः के विक्षेपों से परे हो, अपनी स्वीकृत साधना के प्रति एक रूप हो, वासना, विकारों व कषायों का भान ही भूल जाय तो यही सच्ची समाधि है। यह उच्च दशा की प्राप्ति मनुष्य का अभ्युदय कर अन्तरात्मा को पवित्र बनाती है। प्रभु के चरणों में अपनी साधना के प्रति सर्वथा उत्तरदायित्वपूर्ण रहने की माँग कितनी अधिक सुन्दर है। कितनी अधिक भावभरी है।

**5. सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु-**हम सबका अन्तिम उद्देश्य सिद्धि प्राप्ति है। अतः भक्त अन्त में यह अनुनय करता है कि सिद्ध प्रभु मुझे सिद्धि प्रदान करें। यद्यपि प्रभु स्वयं कुछ देते-लेते नहीं हैं, तथा न ही सिद्धि देने-लेने की वस्तु है, पर भक्ति की भाषा में ऐसा कहकर भक्त अपनी अटूट श्रद्धा व अपूर्व निष्ठा अभिव्यक्त करता है। सिद्ध मुझे सिद्धि प्रदान करें, ऐसा आशय लेने की अपेक्षा यह आशय अधिक युक्ति संगत होगा कि सिद्धों के आलम्बन से मुझे

सिद्धि प्राप्त हो। सिद्धों से यह याचना भक्त के चित्त को शुभता की ओर ले जाती है।<sup>1</sup>

### संबंधित प्रश्नोत्तर

**प्रश्न 1.** उत्कीर्तन सूत्र का दूसरा नाम क्या है और क्यों?

**उत्तर** इस पाठ का दूसरा नाम चतुर्विंशतिस्तव है, क्योंकि इसमें चौबीस तीर्थঙ्कर भगवान की स्तुति की गयी है।

**प्रश्न 2.** प्रस्तुत सूत्र में ‘महिया’ शब्द आता है जिसका अर्थ है पूजित; तीर्थঙ्कर भगवान किस प्रकार पूजित हैं? क्या पुष्पों द्वारा उनका पूजन होता है।

**उत्तर** उपर्युक्त वर्णित ‘महिया’ पद से द्रव्य पूजन का आशय नहीं है। तीर्थঙ्कर तो देवाधिदेव हैं। सामान्य मुनिराज के सम्मुख जाते हुए भी पाँच अभिगम पालन करने का विधान है, जिनमें से प्रथम सचित्त त्याग बताया है। फिर तीर्थঙ्कर तो विशिष्टतम साधु हैं। वे तो अहिंसा के अवतार हैं, उनके लिए पुष्प-पूजन का सवाल ही शेष नहीं रहता। जैसा देव हो वैसा ही पूजन किया जाता है जिसको जिस वस्तु से अत्यधिक प्रेम हो, उसको वही वस्तु भेट की जाती है। भगवान को तो आत्मिक गुण ही प्रिय हैं। उनका समूचा जीवन ही इनके विकास के लिए समर्पित होता है; देखिये एक आचार्य ने भगवान वीतराग के चरणों में कैसे सुन्दर पुष्प समर्पित किये हैं—

“ध्यान धूपं मनः पुष्पं, पंचेन्द्रिय हुताशनं।  
क्षमा जाप सन्तोष पूजा, पूजो देव निरंजनं ॥”

1. आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. के प्रवचनों की ‘प्रार्थना प्रवचन’ पुस्तक इस संदर्भ में पठनीय है।

भक्त हृदय कवि ने अपने आराध्य की अर्चना हेतु कितने अलौकिक आत्म-अनुभूतिदायक गुण पुष्पों का चयन किया है। वे कहते हैं—ध्यान ही धूप है, मन पुष्प हैं और पाँच इन्द्रियों का निग्रह ही अग्नि है। क्षमा, जाप एवं सन्तोष की पूजा है।

**प्रश्न 3. तीर्थङ्कर भगवान अरिहन्त हैं। प्रस्तुत सूत्र में उन्हें सिद्ध क्यों कहा ?**

**उत्तर** जो भूत पर्याय के तीर्थङ्कर थे, वर्तमान में वे सिद्धगति को प्राप्त कर चुके हैं। अपने समय विशेष की दृष्टि से भी वे चार घनघाती कर्मों का क्षय कर चुके होते हैं। अतः शेष चार अघाती कर्म उनके लिए बाधा रूप नहीं होते। चार घनघाती कर्मों का क्षय होते ही उनका संसार समाप्त प्रायः सा होता है, इस प्रकार भावी सिद्धत्व का वर्तमान में उपचार करके भी कहा जा सकता है। अतः उन्हें सिद्ध कहना अयुक्तिसंगत नहीं कहा जाता।



## 7. सामायिक प्रतिज्ञा सूत्र

करेमि भंते ! सामाइयं, सावज्जं जोगं, पच्चक्खामि । जाव नियमं पज्जुवासामि । दुविहं तिविहेणं । न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा । तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ—करेमि भंते ! सामाइयं = हे भगवन् ! मैं सामायिक ग्रहण करता हूँ । सावज्जं जोगं = सावद्य योग (पाप क्रियाओं) का । पच्चक्खामि = त्याग करता हूँ । जाव नियमं पज्जुवासामि = जब तक नियम का सेवन करूँ तब तक । दुविहं तिविहेणं = दो करण, तीन योग से । न करेमि = पाप कर्म करूँ नहीं । न कारवेमि = कराऊँ नहीं । मणसा वयसा कायसा = मन वचन और काया से । तस्स = उसका (पहले के पापकर्म का) । भंते ! = हे भगवन् ! पडिक्कमामि = प्रतिक्रमण करता हूँ । निंदामि = निन्दा करता हूँ । गरिहामि = गर्हा करता हूँ । अप्पाणं = अपनी आत्मा को । वोसिरामि = (कषाय आदि से) अलग करता हूँ ।

पाठ विवेचन—इरियावहियं—सूत्र द्वारा आलोचना, तस्स उत्तरी—सूत्र से विशिष्ट शुद्धि व लोगस्स द्वारा भगवत् स्तुति करके साधक जब अपनी आत्म-भूमि को राग-द्वेष रहित समतल, साधना योग्य बना लेता है, तब वह आध्यात्मिक साधना का इस प्रस्तुत सूत्र द्वारा बीजारोपण करता है ।

सामायिक ग्रहण करने का पाठ यों तो बहुत संक्षिप्त है, पर उसकी पूर्व भूमिका में जो अन्य चार पाठ आये हैं उनसे सूचित होता है कि साधक आत्मा को पवित्र बनाकर, विषय-कषाय की ज्वाला को शान्त कर इस ब्रत की ओर अग्रसर होता है । वैदिक विधि-विधानों में धर्मक्रिया के पहले बाह्य शारीरिक

शुद्धि को प्रमुख स्थान दिया गया है। पर यहाँ सामायिक-साधना में आरम्भ से ही शारीरिक शुद्धि को विशेष महत्व न देकर मानसिक पवित्रता पर अधिक बल दिया गया है। यही कारण है कि साधक इच्छाकारेण, तस्सउत्तरी, लोगस्स आदि सूत्रों द्वारा आत्मा की मलिनता को धोकर, पापकारी प्रवृत्तियों से पीछे हटकर प्रतिज्ञा करता है कि मैं सब सावद्य योगों का त्याग करके सामायिक ब्रत अंगीकार करता हूँ। जब तक इस नियम की प्रतिज्ञा का पालन करूँगा, तब तक न तो मैं स्वयं मन, वचन, काया से पाप में प्रवृत्त होऊँगा, न अन्य किसी से मन, वचन, काया द्वारा पाप कर्म कराऊँगा। यह ब्रत ग्रहण सांस्कृतिक, नैतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जैसा बीज हो और उसे जिस रूप में डाला जाय, वैसा ही कृषि का परिणाम आगे आने की सम्भावना रहती है।

यहाँ भी साधक त्याग व साधना के इन बीजों को किस प्रकार डालता है, यह द्रष्टव्य है। इसके लिये हमें प्रस्तुत सूत्र की आत्मा को टटोलना होगा, इसकी गहराइयों में झाँकना होगा।

सर्वप्रथम साधक ‘करेमि भंते सामाइयं’ शब्दों द्वारा भगवान व गुरु महाराज के समक्ष अपनी इच्छा प्रकट करता है। भगवान शब्द कितना भक्ति-भाव से परिपूर्ण है। इसका तात्पर्य है कि आप सुखदाता हो, कल्याणकारी हो, भय या भव का नाश करने वाले हो।

आगे के ‘सावज्जं जोगं पच्चक्खामि’ शब्दों में सामायिक का आशय निहित है। सामायिक में साधक क्या करता है? सावद्य योग का त्याग। सावद्य योग का त्याग ही तो सामायिक है। ‘करेमि भंते’ के पाठ में ‘सावज्जं’ शब्द केन्द्रीय शब्द है। पूरे पाठ का सार इस एक शब्द के साथ जुड़ा है। सावद्य में दो शब्द हैं—स+अवद्य। स अर्थात् सहित और अवद्य अर्थात् पाप। इस प्रकार सावद्य का अर्थ हुआ सपाप। जो भी कार्य सपाप है, पाप क्रिया का

बन्ध कराने वाला है, आत्मा का पतन करने वाला है, साधक के लिए सामायिक में उन सब का त्याग आवश्यक है, पर ध्यान रहे कि त्याग पापकारी कार्यों का है न कि जीव रक्षादि निर्दोष कार्यों का ।

‘सावज्जं’ का एक-दूसरा रूपान्तर है सावर्ज्य (स+आ+वर्ज्य) अर्थात् वे कार्य जो निन्दनीय हों । अतः साधक सामायिक में उन्हीं कार्यों का त्याग करता है जो निन्दनीय हैं । आत्मा को मलिन बनाने, निन्दित करने वाले कार्य कषाय हैं; अन्य कोई नहीं । अतः साधक सामायिक में उन कार्यों का जिनके मूल में कषाय भावना निहित है, त्याग करता है । सामायिक में इन कषायों का त्याग, सामायिक दशा को प्राप्त करने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कदम है ।

‘जावनियमं पञ्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा’ आदि शब्द सामायिक की प्रतिज्ञा में किये गये त्याग की अवधि व सीमा के परिचायक हैं । हम यहाँ जिस सामायिक की बात कर रहे हैं, वह श्रावक की देशविरति सामायिक है न कि श्रमण की सर्वविरति सामायिक । श्रावक को सावद्ययोग का त्याग तभी तक है जब तक कि उसके नियम है । पर इसका यह तात्पर्य तो कदापि नहीं समझना चाहिए कि नियम की अवधि के उपरान्त वह पाप कार्य करने को उन्मुक्त है । सामायिक शब्द का आशय व उद्देश्य संकीर्ण नहीं है । यह तो एक विस्तृत साधना है । जीवन में, दैनिक व्यवहार में समत्व की प्राप्ति ही इस साधना का उद्देश्य है, यह सामायिक के साधकों को स्पष्ट कर लेना चाहिये ।

श्रावक की सामायिक छह कोटि के त्याग वाली है । अर्थात् वह दो करण तीन योग से त्याग करता है । उसे मन, वचन व काया से पाप करने व कराने का त्याग है । अनुमोदन का श्रावक को त्याग नहीं है । मानव-मानस में प्रश्न उठ सकता है कि भला वह कैसी साधना है जिसमें साधक को पापकारी

कार्यों के समर्थन, अनुमोदन की छूट है। यह साधना है या साधना का उपहास है। श्रमण निर्गन्थों ने स्पष्ट किया—अय भोले साधकों! यहाँ अनुमोदन को त्याग से अलग रखना किसी छूट की लिहाज से नहीं, वरन् प्रतिज्ञा-संरक्षण की दृष्टि से है। श्रावक यद्यपि साधना-पथ का पथिक है तथापि वह गृहस्थ की भूमिका का प्राणी है। सामायिक में यद्यपि वह सावद्य योग का त्याग करता है, पर ममता का सूक्ष्म तार जो आत्मा से बँधा रहता है, वह अभी नहीं कट पाया। इसलिये सामायिक की प्रतिज्ञा में अनुमोदन का भाग खुला रखा गया है। इसका कोई विपरीत आशय लेना भूल भरा होगा।

अनुमोदना के भी तीन प्रकार होते हैं—(1) प्रतिसेवानुमति, (2) प्रतिश्रवणानुमति, (3) संवासानुमति। अपने या दूसरे के किये हुए भोजन आदि का उपयोग करना प्रतिसेवानुमति है। पुत्र आदि किसी संबंधी के द्वारा किये गये पापकर्मों को केवल सुनना और सुनकर भी उन कर्मों के करने से उनको नहीं रोकना प्रतिश्रवणानुमति है। पुत्र आदि अपने संबंधियों के पापकार्य में प्रवृत्त होने पर उनके ऊपर सिर्फ ममता रखना, अर्थात् न तो पापकार्य को सुनना और सुनकर भी उसकी प्रशंसा न करना संवासानुमति है। इन तीनों में से सामायिक में श्रावक को प्रथम दो अनुमोदना का त्याग होता है। अंतिम तीसरी संवासानुमति ही खुली होती है।

‘तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि’ वाक्यांश में साधक अपने द्वारा पूर्वकृत पापों की निन्दा, आलोचना व गर्हा करता है। निन्दा स्वयं की है, औरों की नहीं तथा पापों की ही निन्दा करनी है। महावीर सन्देश में कहा है—“घृणा पाप से हो, पापी से कभी नहीं लवलेश। यही है महावीर सन्देश।” दोषों की, पापाचरण की निन्दा करने से साधक अपने कर्मों की महान् निर्जरा करता है तथा आत्म-शुद्धि की ओर एक कदम सन्निकट पहुँचता है।

‘आत्म-दोषों की निन्दा करने से पश्चात्ताप का भाव जागृत होता है, पश्चात्ताप के द्वारा विषय-वासना के प्रति वैराग्य भाव उत्पन्न होता है और ज्यों-ज्यों वैराग्य भाव का विकास होता है, त्यों-त्यों साधक सदाचार की गुण श्रेणियों पर आरोहण करता है और जब गुण श्रेणियों पर आरोहण करता है तब मोहनीय कर्म का नाश करने में समर्थ हो जाता है। मोहनीय कर्म का नाश होते ही आत्मा शुद्ध, बुद्ध, परमात्म-दशा पर पहुँच जाती है।

जैन दर्शन ने साधक को निन्दा के साथ ही गर्हा की एक अन्य अनुपम भेट प्रदान की है। आत्म-शोधन के लिए गर्हा बहुत महत्वपूर्ण है, जहाँ निन्दा में साधक स्वयं एकान्त में बैठकर अपने पापों की निन्दा करता है, दूसरों के सम्मुख अपने पापों को प्रकट नहीं करता, वहाँ गर्हा में साधक गुरु के चरणों में आकर उनकी साक्षी से भी अपने पापों की आलोचना करता है। वह अपने पापों की गठरी गुरुदेव के चरणों में खोल देता है। गर्हा कोई आत्मबल का धनी व्यक्ति ही कर सकता है। प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा का ख्याल छोड़ सकने वाला व्यक्ति ही इसमें सक्षम हो सकता है। भगवान् महावीर के अनुयायियों के मन में ‘छिपाव’ नाम की कोई चीज़ नहीं होनी चाहिये। अपने दोषों को प्रकट करना भय का नहीं वरन् साहस का, लज्जा का नहीं वरन् स्वाभिमान का कार्य है।

अन्त में साधक आत्मनिंदा व गर्हा के बाद यह भावना अभिव्यक्त करता है कि वह ‘अप्पाणं वोसिरामि’ अर्थात् अपने आपको त्यागता है। यह कैसे? इसका स्पष्टीकरण हम तस्स उत्तरी-सूत्र के सन्दर्भ में कर चुके हैं। यहाँ इतना समझना ही पर्याप्त है कि यहाँ ‘अप्पाणं वोसिरामि’ से अभिप्राय अपने पूर्व के दूषित जीवन को छोड़ने से है।

## संबंधित प्रश्नोत्तर

**प्रश्न 1.** श्रावक की सामायिक कितनी कोटि से होती है ? क्या इस सम्बन्ध में कोई अन्य मत भी है ?

**उत्तर** श्रावक की सामायिक 6 कोटि ( $2 \text{ करण} \times 3 \text{ योग} = 6$ ) से होती है। इस सम्बन्ध में कहीं-कहीं 8 कोटि का भी उल्लेख किया गया है, पर यह 8 कोटि का भंग समझ में नहीं आता। 49 भाँगों में ऐसा एक भी भंग नहीं है जिसका 8 कोटि के साथ साम्य बैठ सके। 6 कोटि सामायिक का मत ही मान्य तथा तर्क संगत है।

**प्रश्न 2.** ‘जावनियमं’ का अर्थ है जब तक मेरे नियम है तब तक, फिर यह एक मुहूर्त अर्थात् 48 मिनट का विधान क्यों ? यह अवधि सामायिक करने वाले की इच्छा पर क्यों नहीं ?

**उत्तर.** सामायिक लेने वाले को जावनियमं के मुहूर्त का उल्लेख करना होता है। एक मुहूर्त 48 मिनट का होता है। हम छद्दस्थ हैं। छद्दस्थ की किसी एक विषय पर स्थिरता की उत्कृष्ट अवधि एक मुहूर्त मानी गयी है। अतः सामायिक रूप साधना का समय 48 मिनट से अधिक नहीं रखा गया। यदि किसी को अधिक समय भी साधना करना हो तो वह वैसे ही मुहूर्त की संख्या बोल कर एक से अधिक मुहूर्त तक सामायिक कर सकता है।

हम साधना-पथ के राही हैं। हमारा उद्देश्य उत्कृष्ट स्थिरता प्राप्त करना है अतः सामायिक का समय कम से कम 48 मिनट रखा गया है। ताकि साधक यह अनुभव कर सके कि मैं इतना आगे बढ़ा और इतना बढ़ना है।

**प्रश्न 3. योग किसे कहते हैं तथा ये कितने हैं ?**

**उत्तर** योग क्रिया के साधन हैं, जिनके द्वारा आत्मा क्रिया में जुड़ती है। ये मन, वाणी व काय के व्यापार ही योग कहलाते हैं।

**प्रश्न 4. करण किसे कहते हैं तथा ये कौन-कौन से हैं ?**

**उत्तर** क्रिया के रूप या प्रकार को करण कहते हैं। योग द्वारा जितने रूपों में क्रिया की जा सकती है, वे रूप ही करण कहलाते हैं-ये तीन होते हैं, जैसे-करना, करवाना तथा अनुमोदन करना।



**विधि-**सामायिक प्रतिज्ञा सूत्र के माध्यम से सामायिक की प्रतिज्ञा करने के पश्चात् बायाँ घुटना खड़ा करके दायाँ घुटना उल्टा कर नीचे दबाकर, बायें घुटने पर दोनों हाथ जोड़कर घुटने पर जोड़े हुए दोनों हाथ व उस पर मस्तक झुका कर दो बार शक्रस्तव प्रणिपात सूत्र का पाठ बोलें।

## 8. शक्रस्तव प्रणिपात सूत्र

नमोत्थु णं, अरिहंताणं भगवंताणं, आङ्गराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरीयाणं, पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहियाणं, लोगपईवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चकखुदयाणं, मगदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं धम्मवर-चाउरंत-चककवटीणं, दीवो त्ताणं, सरण गइ पझ्डाणं, अप्पडिहय-वरनाण-दंसणधराणं विअहुष्ठउमाणं, जिणाणं, जावयाणं, तिन्नाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं, मोयगाणं, सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मकखय-मव्वाबाह-मपुणराविति, सिद्धिगइ नामधेयं, ठाणं संपत्ताणं<sup>1</sup> नमो जिणाणं जिअभयाणं ।

शब्दार्थ-नमोत्थु णं = नमस्कार हो । अरिहंताणं भगवंताणं = अरिहन्त भगवन्तों को । आङ्गराणं = धर्म की आदि करने वाले । तित्थयराणं = चतुर्विध तीर्थ (संघ) की स्थापना करने वाले । सयंसंबुद्धाणं = स्वयं बोध को प्राप्त । पुरिसुत्तमाणं = पुरुषों में उत्तम । पुरिस-सीहाणं = पुरुषों में सिंह के समान । पुरिसवर = पुरुषों में श्रेष्ठ । पुंडरीयाणं = पुंडरीक कमल के समान । पुरिसवर = पुरुषों में श्रेष्ठ । गंधहत्थीणं = गंधहस्ती के समान । लोगुत्तमाणं = सम्पूर्ण लोक में उत्तम । लोगनाहाणं = सम्पूर्ण लोक के नाथ । लोगहियाणं = सम्पूर्ण लोक का हित करने वाले । लोगपईवाणं =

1. सिद्ध भगवान की स्तुति में ‘ठाणं संपत्ताणं’ पाठ बोला जाता है तथा अरिहंत देव की स्तुति में ‘ठाणं संपावित्कामाणं’ पाठ बोला जाता है ।

सम्पूर्ण लोक में दीपक के समान । लोगपञ्जोयगराणं = लोक में ज्ञान का प्रकाश करने वाले । अभयदयाणं = अभय देने वाले । चक्रखुदयाणं = ज्ञानरूपी चक्षु देने वाले । मण्गदयाणं = मोक्ष-मार्ग बताने वाले । सरणदयाणं = शरण देने वाले । जीवदयाणं = संयमी जीवन देने वाले । बोहिदयाणं = बोधि (सम्यकत्व) देने वाले । धम्मदयाणं = चारित्र रूपी धर्म के दाता । धम्मदेसयाणं = धर्म के उपदेशक । धम्मनायगाणं = धर्म के नायक । धम्मसारहीणं = धर्मरूपी रथ के सारथी । धम्मवर-चाउरंत-चक्रवट्टीणं = चारों गति का अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करने वाले । दीवो ज्ञाणं = दीप के समान रक्षक (आधारभूत) । सरण गड़ पट्टाणं = जीवों के लिए शरण, गति, आधार और प्रतिष्ठा देने वाले । अप्पडिहय = अप्रतिहत । वर = उत्तम । नाण = ज्ञान । दंसण = दर्शन के । धराणं = धारक । विअद्वृछउमाणं = छद्म भाव से रहित । जिणाणं = स्वयं रागद्वेष को जीतने वाले । जावयाणं = दूसरों को जिताने वाले । तिन्नाणं = स्वयं भवसागर से तिरने वाले । तारयाणं = दूसरों को तिराने वाले । बुद्धाणं = स्वयं बोध पाये हुए । बोहियाणं = दूसरों को बोध देने वाले । मुत्ताणं = स्वयं कर्मों से मुक्त । मोयगाणं = दूसरों को मुक्त कराने वाले । सब्बण्णूणं सब्बदरिसीणं = सर्वज्ञ, सर्वदर्शी । सिवमयलं = कल्याणकारी एवं अचल । अरुअं = रोगरहित । अण्णंतं = अनन्त । अक्रखयं = अक्षय । अब्बाबाहं = पीड़ारहित । अपुणरावित्ति = पुनरागमन रहित । सिद्धिगड़ नाम धेयं = सिद्धि गति नाम के । ठाणं संपत्ताणं = स्थान को संप्राप्त (सिद्ध) । ठाणं संपावित-कामाणं = स्थान प्राप्त करने के लिये कामना करने वाले (अरिहंत) । णमो जिणाणं = नमस्कार हो जिनेश्वर भगवान को । जिअभयाणं = जिन्होंने भय को जीत लिया ।

पाठ विवेचन—सम्यग्ज्ञान व सम्यक्-चारित्र की प्राप्ति के लिए साधक के हृदय में सम्यग्दर्शन अर्थात् श्रद्धा का अंकुरित होना आवश्यक है । श्रद्धाशून्य

हृदय में ज्ञान व चारित्र के कल्पवृक्ष पल्लवित नहीं हो सकते। इसलिये श्रद्धा पर शास्त्रों में अत्यधिक बल दिया गया है। भगवान के प्रति श्रद्धा जागृत होती है उनकी भक्ति से। सच्चा भक्त-साधक ही प्रभु के चरणों में अपने आपको समर्पित कर आगे की साधना कर सकता है। भक्ति का महत्त्व सामायिक के पाठों के क्रम से भी स्पष्ट है। सर्वप्रथम नमस्कार मन्त्र व गुरु वन्दन-सूत्र ये दोनों सूत्र भक्तियोग के परिचायक हैं। फिर ईर्यापथिक व उत्तरीकरण सूत्र के पश्चात् लोगस्स पुनः भक्ति सूत्र है। इस प्रकार भक्त, भगवान के चरणों में नतमस्तक हो, अपनी इच्छा भगवान के चरणों में अर्पित कर व्रत ग्रहण करता है। पूर्ण संयम का महान् कल्पवृक्ष सामायिक के बीज में ही छिपा है। यदि यह बीज सुरक्षित रहकर अंकुरित, पल्लवित व पुष्पित होता रहे तो एक दिन अवश्य ही मुक्ति का अमर फल प्रदान कर सकेगा। इसी भक्ति-भावना व सामायिक के अमृत बीज का सिंचन करने के लिए अन्त में पुनः भक्तियोग का अवलम्बन लिया जाता है। यह कार्य शक्रस्तव द्वारा सम्पन्न किया गया है।

नमोत्थु णं में मुख्य रूप से तीर्थङ्कर भगवान की स्तुति की गयी है। इस सूत्र में तीर्थङ्कर भगवान के विश्व हितकर निर्मल आदर्श गुणों का अत्यन्त सुन्दर ढंग से परिचय दिया गया है। तीर्थङ्कर भगवान की स्तुति के साथ ही साथ उनके महान् विशिष्ट सद्गुणों का वर्णन नमोत्थु णं की एक ऐसी निजी विशेषता है जो अन्य सूत्रों में नहीं है। नमोत्थु णं इस बात का परिचायक है कि गुणी की पूजा उसके गुणों के कारण है न कि लिङ्ग, जाति, वय, जन्म के कारण। नमोत्थु णं का आनन्द तो इसके शब्दों में ही सन्निहित है। जरा हम भी ध्यानपूर्वक इस आनन्द की अनुभूति करें।

इसमें प्रथम शब्द ‘नमोत्थु णं’ नमस्कार का सूचक है। बाकी अन्य पद यह बताते हैं कि नमस्कार किनको? मैं जिन्हें नमस्कार करूँ उनका स्वरूप क्या है? उनके गुण क्या हैं? ये प्रमुख गुण इस प्रकार हैं-

**1. अरिहंताणं (अरिहंत)**—तीर्थङ्कर भगवान ने अपने घाती कर्म, कषाय व विकार जो आत्म-गुणों की हानि करने वाले लुटेरे हैं, उन पर विजय प्राप्त कर ली है, अन्तर के दोषों को समूल नष्ट कर दिया है, अतः वे अरिहंत हैं।

**2. भगवंताणं (भगवान)**—भगवान शब्द श्रद्धा और विश्वास का सूचक है। आचार्य हरिभद्र के अनुसार जो महान् आत्मा पूर्ण ऐश्वर्य, पूर्ण वीर्य, पूर्ण यश, पूर्ण श्री, पूर्ण धर्म एवं पूर्ण प्रयत्न, इन छह पूर्णताओं से पूर्ण हैं, वही भगवान हैं। तीर्थङ्कर भगवान इन समस्त गुणों से युक्त हैं। इन गुणों में वे अद्वितीय हैं। अतः उन्हें भगवान कहना उचित ही है। जैन धर्म के अनुसार पूर्ण विकास पाने वाली आत्मा ही वस्तुतः भगवान है। हर आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। कहा भी है—‘अप्पा सो परमप्पा।’

**3. आङ्गराणं (आदिकर)**—तीर्थङ्कर भगवान अपने—अपने समय में धर्म का पुनः प्रवर्तन करते हैं तथा नये सिरे से शासन की स्थापना करते हैं। यद्यपि धर्म अनादि है, अतः धर्म की उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। तथापि यहाँ पर धर्म के व्यावहारिक रूप की अपेक्षा धर्मशासन की आदि मानी गयी है। तीर्थङ्कर धर्म को विधिपूर्वक नये रूप में प्रस्तुत करते हैं व श्रुतधर्म स्वरूप द्वादशांगी का नव-निर्माण करते हैं। उदाहरणार्थ भगवान महावीर ने पार्श्व प्रभु के चातुर्याम संवर धर्म के स्थान पर पंच महाब्रत रूप धर्म की स्थापना की है। मूलतः धर्म अपरिवर्तनीय व शाश्वत है। फिर भी स्वानुभूति के बल पर तीर्थङ्कर अपने शासन में धर्म का स्वतन्त्र प्रतिपादन करते हैं, अतः वे आदिकर कहे जाते हैं।

**4. तित्थयराणं (तीर्थङ्कर)**—अरिहन्त भगवान तीर्थङ्कर कहलाते हैं। इसमें दो शब्द हैं, तीर्थ + कर। तीर्थङ्कर का अभिप्राय हुआ तीर्थ के कर्ता। जिससे तिरा जाय वह तीर्थ है। तीर्थ तिरने का माध्यम है। यह संसार समुद्र महा विकराल है। इसमें काम, क्रोधादि कषाय रूपी अनेक भयावह जानवर हैं

तो विकार रूपी अनेक भँवर भी हैं, जिनके गर्त में फँस कर आत्मा अनन्तानन्त काल से भटक रही है। साधना-पथ की ओर अभिमुख आत्मा बीच में ही रह जाती है। ऐसे विकट समुद्र को पार करना साधारण साधक का काम नहीं है। तीर्थङ्कर भगवान ने इस समुद्र में भयमुक्त चार टापू-स्थान निश्चित किये हैं जो चार तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं—साधु, साध्वी, श्रावक व श्राविका। यह चतुर्विध तीर्थ संसार समुद्र के कर्म-प्रवाह से बचने के लिए द्वीप के समान है।

**5. स्वयं-संबुद्धाण् (स्वयं बुद्ध)**—साधारण साधकों को प्रतिबोध के लिए किसी निमित्त या गुरु की आवश्यकता होती है। उन्हें जीवन विकास में योग्य मार्गदर्शक के नेतृत्व की आवश्यकता होती है। किन्तु तीर्थङ्कर भगवान विशिष्ट व्यक्तित्व के धारक होते हैं। अतः उन्हें किसी निमित्त या गुरु की अपेक्षा नहीं होती। वे स्वयं समय पर मोह निद्रा से जागृत हो उत्थान की ओर अग्रसर हो जाते हैं। वे अपनी राह स्वयं ढूँढ़ते हैं। इसलिये उन्हें स्वयं सम्बुद्ध अर्थात् स्व से ही बोध प्राप्त होना कहा गया है।

**6. पुरिसुत्तमाणं (पुरुषोत्तम)**—तीर्थङ्कर भगवान सर्वोत्तम पुरुष हैं। कोई भी संसारी व्यक्ति उनके समकक्ष नहीं होता। अन्तर और बाह्य दोनों ही दृष्टियों से वे श्रेष्ठ व ज्येष्ठ हैं। तीर्थङ्कर भगवान के शरीर पर 1008 दिव्य उत्तम लक्षण होते हैं। उनके सौन्दर्य की सानी और कौन कर सकता है? निश्चय ही वे अद्वितीय एवं अनुपम हैं।

**7. पुरिससीहाणं (पुरुषसिंह)**—विश्व में सिंह सर्वदा ही अपने बल-पराक्रम एवं निर्भयता के लिए प्रख्यात रहा है। अन्य कोई प्राणी उसकी बराबरी नहीं कर सकता। इसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान भी अनन्त आत्मबल के धनी हैं। अहिंसा, अपरिग्रह व अनेकान्त उनके आत्मिक अस्त्र हैं। कोई भी व्यक्ति उनके इस बल के आगे मुकाबला करने का साहस नहीं कर सकता। उनके मन में न तो कोई भय है और न ही खतरा। अतः वे निर्भय

निर्द्वन्द्व हो विचरण करते हैं। इन दो गुणों के कारण ही उन्हें सिंह की उपमा दी गयी है।

**8. पुरिसवर-पुण्डरीयाणं (पुरुषवरपुण्डरीक)**—तीर्थङ्कर भगवान को पुण्डरीक कमल की उपमा दी गयी है। तीर्थङ्कर भगवान कमलवत् संसार समुद्र के कीचड़ से निर्लिप्त सदा शुचि-स्वच्छ रहते हैं। फिर पुण्डरीक कमल जिस प्रकार अन्यान्य कमलों की अपेक्षा सौन्दर्य व सौरभ में अतीव उत्कृष्ट होता है, उसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान मानव समुदाय के श्रेष्ठ कमल हैं। उनके अहिंसा, सत्यादि सद्गुणों की सौरभ उनके अपने समय में नहीं, बरन् हजारों लाखों वर्षों बाद आज भी जन-मानस को आह्वादित करती रहती है, हजारों भावुक हृदयों को अपनी महक से महका रही है। उनका जीवन पूर्ण वीतराग, निर्मल, शुद्ध और शुभ्र होता है।

**9. पुरिसवर-गंधहत्थीणं (पुरुषवर-गंधहस्ती)**—तीर्थङ्कर भगवान मानव जाति में गंध हस्ती के समान हैं। गंधहस्ती वीरता एवं सुगन्ध दोनों का ही धनी है। रणक्षेत्र में गंधहस्ती के आते ही अन्य हाथी भयभीत हो पलायन कर जाते हैं। वैसे ही तीर्थङ्कर भगवान भी असीम बल व अनन्त गुणों के निधान हैं। उनका पदार्पण होते ही मिथ्यामतियों का जोर समाप्त हो जाता है।

**10. लोगुत्तमाणं (लोकोत्तम)**—तीर्थङ्कर भगवान तीनों लोकों में उत्तम-श्रेष्ठ रत्न हैं। सुर, नर, किन्नर कोई भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता। उनके परम औदारिक शरीर के आगे देवताओं का वैक्रिय शरीर भी तुच्छ है। उनके ऐश्वर्य के आगे हजारों हजार इन्द्रों का ऐश्वर्य भी नगण्य है।

**11. लोग-नाहाणं (लोकनाथ)**—तीर्थङ्कर भगवान लोक के नाथ हैं। उनके ऊपर कोई नाथ नहीं है, अतः वे ही इस लोक के नाथ होने योग्य हैं। वे प्रेम, क्षमा और शान्ति के बल से विश्व का शासन करते हैं।

**12. लोग-हियाणं (लोक-हितकारी)**-तीर्थङ्कर भगवान समस्त विश्व का हित करने वाले हैं। उनके मन में न तो राग-द्रेष की भावना है और न ही किसी जाति, धर्म या पक्ष के प्रति व्यामोह की भावना। यद्यपि उन्होंने अपना कार्य सिद्ध कर लिया है, तथापि वे संसार दावानल में जलते हुए प्राणियों को देखकर असीम करुणा करते हैं तथा उन्हें सन्मार्ग दिखाकर बचाते हैं। तीर्थङ्कर भगवान ही ऐसे व्यक्ति हैं जो बिना किसी स्वार्थ या कामना के अन्यों का हित साधन करते हैं।

**13. लोग-पर्ड्वाणं (लोक प्रदीप)**-तीर्थङ्कर भगवान लोक में दीपक के समान हैं। दीपक स्वयं प्रकाश करने के साथ ही अन्य दीपों को भी अपने समान बना देता है। यह उसकी निजी विशेषता है। तीर्थङ्कर भगवान भी वे प्रदीप हैं जो भक्त को सदा भक्त ही नहीं रखना चाहते। वे भक्त को भी भगवान अर्थात् अपने समकक्ष बना लेते हैं। उनकी सेवा में आकर सेवक भी सेव्य और पुजारी भी पूज्य बन जाता है।

**14. लोगपञ्जोयगराणं (लोक प्रद्योतक)**-तीर्थङ्कर भगवान लोक में प्रकाश करने वाले हैं। जब धरातल पर अज्ञान अपना साम्राज्य स्थापित कर लेता है, विश्व मिथ्यात्व के आवरण में घिर जाता है, जनता सत्य-धर्म का मार्ग विस्मृत कर देती है तब तीर्थङ्कर भगवान अपने शुभ्र केवल-ज्ञान का प्रकाश फैलाकर, मिथ्यात्व तिमिर का निराकरण कर अपनी ज्ञान-प्रभा से त्रिलोक में धर्मोद्योत करते हैं।

**15. अभयदयाणं (अभयदाता)**-तीर्थङ्कर भगवान प्राणिमात्र को अभय देने वाले हैं। विरोधी से विरोधी के प्रति भी वे करुणा भाव ही रखते हैं। संसार के मोह-मिथ्यात्व रूप सघन वन में भटकते हुए भय संत्रस्त प्राणियों को सन्मार्ग पर लगा कर वे उन्हें चार गति के भय से मुक्त करते हैं। ऐसे अभयदाता तीर्थङ्कर भगवान का कितना महान् अनुकम्पापूर्ण कार्य है।

**16. चक्रबुद्याणं (चक्षुर्दाता)**—तीर्थङ्कर भगवान को नेत्रदाता कहा गया है। वे प्राणियों को ज्ञान-नेत्र प्रदान करते हैं। जब हमारी आँखों के समक्ष अज्ञान का जाला छाया रहता है और आत्मा के ज्ञान नेत्र सत्यासत्य की परख में असमर्थ हो जाते हैं, तब तीर्थङ्कर भगवान ही इस जाले को दूर कर विवेक शक्ति प्रदान करते हैं।

**17. मग्नदयाणं (मार्गदाता)**—हर आत्मा में ऊपर उठने की, मुक्ति-मंजिल प्राप्त करने की चाह है। वह अनेक बार इस हेतु प्रयास कर चुकी है। पर सही मार्ग के नहीं जानने से वह अपने मार्ग से भटक गयी है। विपरीत मार्ग पर गमन कर उसने अपनी यात्रा बढ़ा ली है। तीर्थङ्कर भगवान इस पथ-भ्रान्त यात्री को सही व लघुतम मार्ग बताते हैं। अतः उनको मार्गदाता कहा गया है।

**18. सरणदयाणं (शरणदाता)**—आत्मा के पीछे अनादि काल से कर्म लगे हुए हैं। ये कर्मशत्रु उसे निरन्तर सता रहे हैं। आत्मा उनसे पिण्ड छुड़ाना चाहती है, पर उनका कर्मजाल इतना गहन है कि उनसे छुटकारा पाने का कोई उपाय शेष नहीं रह जाता। ऐसी विकट दशा में तीर्थङ्कर भगवान ही उसे अपनी शरण में रखकर कर्म शत्रु को पराजित करने का उपाय सुझाते हैं और कर्मपाश से बचाते हैं। अतः वे शरणदाता हैं।

**19. जीवदयाणं (जीवनदाता)**—तीर्थङ्कर भगवान जीवनदाता हैं। वे मानव को असंयम-जीवन से उबार कर संयम का भाव-जीवन प्रदान करते हैं। ऐसा जीवन ही वस्तुतः सच्चा जीवन है।

**20. बोहिदयाणं (सम्यक्त्वदाता)**—जब विश्व में मिथ्यात्व तिमिर घनीभूत हो जाता है, मानव सत्यासत्य का भान भूल जाता है, वह कुदेव को देव, कुगुरु को गुरु व कुर्धम को धर्म मानने लग जाता है, तब ऐसी दशा में तीर्थङ्कर भगवान ही उसे सच्चा बोध कराते हैं। वे ही मानव को व्यवहार और

निश्चय सम्यक्त्व का पाठ पढ़ाते हैं। वे ही प्राणी को देव, गुरु व धर्म रूप तत्त्वत्रय का सच्चा बोध कराते हैं, अतः इन्हें बोधिदाता कहा गया है।

**21. धम्मदयाणं (धर्मदाता)**—तीर्थङ्कर भगवान ही धर्म के दाता हैं। यद्यपि धर्म देने-लेने की वस्तु नहीं है, पर तीर्थङ्कर भगवान अपने-अपने समय में सर्वप्रथम धर्म-प्रवर्तन करते हैं तथा जनता को सच्चा धर्म-श्रवण कराते हैं, अतः उन्हें व्यवहार में धर्मदाता कहा गया है।

**22. धम्मदेसयाणं (धर्मोपदेशक)**—तीर्थङ्कर भगवान एक मायने में अन्य केवलियों से विशिष्ट हैं। सामान्य केवली, कैवल्य-प्राप्ति के अनन्तर धर्मदेशना देते या नहीं भी देते हैं, पर तीर्थङ्कर भगवान कैवल्य-प्राप्ति के पश्चात् अपनी ज्ञानप्रभा चहुँ ओर प्रसारित कर जन-जन का कल्याण करते हैं। वे ग्राम-नगरों में विचरण कर अवश्य धर्मदेशना देते हैं। अतः उनको धर्मोपदेशक कहा गया है।

**23. धम्मनायगाणं (धर्मनायक)**—तीर्थङ्कर भगवान धर्म के नायक हैं। धर्म-संघ उन्हीं की आज्ञा से चलता है। उनके जीवनकाल में ही नहीं वरन् उनके निर्वणोपरान्त भी अन्य तीर्थङ्कर के जन्म तक उन्हीं का शासन चलता है। समस्त धार्मिक अनुष्ठान उनकी आज्ञा से ही किये जाते हैं।

**24. धम्मसारहीणं (धर्म रथ के सारथि)**—तीर्थङ्कर भगवान धर्म रथ के सारथि हैं। धर्म रूपी रथ पर साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका सवार हैं तथा तीर्थङ्कर भगवान इसके कुशल चालक हैं। रथ-संचालन, सारथि की कुशलता पर ही निर्भर करता है। तीर्थङ्कर देव से अधिक कुशल सारथि और कोई नहीं हो सकता।

**25. धम्मवर चाउरंत-चक्कवट्टीणं (धर्मवर-चतुरंत-चक्रवर्ती)**—तीर्थङ्कर भगवान ने नरक, तिर्यज्च, मनुष्य व देव इन चारों गतियों का अन्त

कर सम्पूर्ण विश्व पर अपना अहिंसा-सत्य रूप धर्म-साम्राज्य स्थापित किया है अतः वे धर्म के चक्रवर्ती कहलाते हैं। यह धर्मचक्र ही विश्व में सच्ची शान्ति स्थापित कर संसार को एक सूत्र में आबद्ध कर सकता है। वस्तुतः तीर्थंकर भगवान् चक्रवर्तियों के भी चक्रवर्ती हैं। चक्रवर्ती समाट् भी उनकी पदधूलि में मस्तक नमाकर अपने आपको धन्य समझते हैं।

**26. दीवोत्ताणं सरण गई पङ्गुणं (समुद्र में द्वीप के समान त्राणदाता एवं शरणगति प्रतिष्ठा रूप)**—तीर्थंकर भगवान् इस संसार समुद्र में द्वीप के समान हैं जहाँ आकर प्रत्येक प्राणी सुरक्षित रहता है। वे त्राणदाता रक्षक हैं। ऐसे परम उपकारी तीर्थंकर देव दूसरों के लिए शरण रूप हैं। वे गति एवं प्रतिष्ठा रूप हैं।

**27. अप्पडिहय-वर-नाण-दंसणधराणं (अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान, दर्शन धारक)**—तीर्थंकर भगवान् अप्रतिहत ज्ञान दर्शन के धारक हैं। उनका ज्ञान निर्बाध है। उनके ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। वह सर्वोत्कृष्ट, असीम व अनन्त है। विश्व के प्रत्येक रूपी-अरूपी पदार्थ को वे हस्त-आमलकवत् अर्थात् हाथ में रखे हुए आँवले के सदृश देखते हैं। उन्हें ज्ञान के लिए प्रयास कर जानने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक पदार्थ उनके ज्ञान-चक्षु के समक्ष ज्ञात होते हैं। वे प्रत्येक समय की प्रत्येक बात (भूत, भविष्यत् व वर्तमान सम्बन्धी) जानते हैं। स्पष्ट है कि जैन धर्म उसे ही अपना आराध्य स्वीकार करता है जो पूर्ण है। जिसमें अपूर्णता है वह आराध्य नहीं हो सकता, भले ही आराधक हो। तीर्थंकर का ज्ञान दर्पणवत् ज्ञेय का प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है।

**28. विअट्टुछउमाणं (छद्मरहित)**—तीर्थंकर भगवान् को सूत्रकार ने छद्म रहित कहा है। छद्म के दो अर्थ हैं—आवरण व छल। ज्ञानावरणीयादि घनघाती कर्म आत्मा के अनन्त गुणों पर आवरण करते हैं। तीर्थंकर भगवान् ने इस आवरण को सर्वथा हटा दिया है। दूसरे उनके जीवन में न तो कोई

छल-कपट है और न ही कोई दुराव-छिपाव। वे सबके लिए एक समान निश्छल हैं। वे स्वयं को प्राप्त परम सत्य को निश्छल हृदय से आबाल-वृद्ध सबके समक्ष प्रकट करते हैं। कपट की तरह उपलक्षण से क्रोध, मान, लोभ, कषाय से भी वे रहित हैं। अतः उन्हें छद्म रहित कहा गया है।

**29. जिणाणं जावयाणं (जिन व जापक)**—तीर्थङ्कर भगवान् स्वयं राग-द्रेष के विजेता हैं व दूसरों को भी इन राग-द्रेषादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करवाते हैं। वे पहले स्वयं विजयी होकर जनता को विजय का मार्ग बताते हैं।

**30. तिन्नाणं तारयाणं (तीर्ण व तारक)**—तीर्थङ्कर भगवान् स्वयं इस संसार समुद्र से पार हो गये हैं तथा दूसरों को भी संसार सागर से पार कराते हैं।

**31. बुद्धाणं बोहयाणं (बुद्ध व बोधक)**—तीर्थङ्कर भगवान् ने स्वयं सही बोध प्राप्त कर लिया है और वे दूसरों को भी सम्यक् बोध देते हैं।

**32. मुत्ताणं मोयगाणं (मुक्त व मोचक)**—तीर्थङ्कर भगवान् स्वयं कर्म-बन्धनों से मुक्त हैं व दूसरों को भी इन बन्धनों से मुक्त कराते हैं।

**विशेष-**क्रमांक 29, 30, 31, 32 में वर्णित तीर्थङ्कर भगवान् के ये गुण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये विशेषण तीर्थङ्कर पद की विशिष्टताओं के द्योतक हैं। स्वयं अपना कल्याण करना तथा अन्यों का भी कल्याण करना स्व-पर के उत्थान की यह भावना जैनत्व के भव्य उदात्त आदर्श को भली-भाँति अभिव्यक्त करती है। धर्म-प्रचार एवं जनकल्याण से भगवान् को न तो कोई व्यक्तिगत लाभ होता है और न ही उन्हें इसकी अपेक्षा है। उनके लिए यद्यपि कोई साधना शेष नहीं है, तथापि वे कैवल्य-प्राप्ति के पश्चात् भी मात्र विश्व-करुणा की भावना से तीर्थङ्कर नाम कर्म के भोग हेतु जनता को सन्मार्ग का उपदेश देते हैं।

**33. सव्वण्णूणं (सर्वज्ञ)**—तीर्थङ्कर सर्वज्ञ हैं। वे चर, अचर, भूत, भविष्यत्, वर्तमान के समस्त पदार्थों के ज्ञाता हैं। उनके लिए कुछ भी जानना शेष नहीं है।

**34. सव्वदरिसीणं (सर्वदर्शी)**—तीर्थङ्कर भगवान् सर्वदर्शी हैं। विश्व के समस्त रूपी—अरूपी पदार्थों को वे हस्तामलकवत् देखते हैं।

**35. सिवमयलमरुअमणंतमक्रखयमव्वाबाहमपुणराविति—सिद्धिगङ्ग नामधेयं ठाणं संपत्ताणं (संपावित्कामाणं)**—संपावित्कामाणं अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान् मोक्ष को प्राप्त करने वाले हैं, ऐसा वर्तमान तीर्थङ्कर की दृष्टि से कहा जा सकता है। जो तीर्थङ्कर मोक्ष में पधार गये हैं, उनके लिए ‘ठाणं संपत्ताणं’ अर्थात् मोक्ष स्थान को प्राप्त कर चुके; शब्द प्रयुक्त किया गया है।

इस पद में यह स्पष्ट किया गया है कि यह मोक्ष स्थान कैसा है? मोक्ष की कतिपय विशेषताएँ जो यहाँ व्यक्त की गयी हैं, निम्न हैं—

(अ) सिवं—कल्याणकारी, (आ) अयलं—अचल, स्थिर, (इ) अरुअं—रोग रहित, (ई) अणंतं—अनन्त (अन्त रहित), (उ) अक्रखयं—अक्षय—अविनाशी, (ऊ) अव्वाबाहं—अव्याबाध—बाधा रहित, (ए) अपुणराविति—पुनरागमन से रहित। सिद्ध गति में जाने के बाद आत्मा को पुनः संसार में आने व भटकने की कर्तई आवश्यकता नहीं है। यह ऐसा स्थान है जहाँ जीव जाता तो है, पर वहाँ से पुनः आता नहीं।

**36. जियभयाणं (भय विजेता)**—संसार में जन्म, जरा और मृत्यु के महान् भय हैं। अरिहन्त प्रभु ने इन पर विजय प्राप्त कर ली है और वे सर्वथा भयों से मुक्त हो चुके हैं।

अन्त में नमो जिणाणं द्वारा यह अभिलक्षित होता है कि ऐसे जो तीर्थङ्कर भगवान हैं, जो जिन भगवान हैं, उनको मेरा नमस्कार हो ।

### संबंधित प्रश्नोत्तर

**प्रश्न 1.** नमोत्थु णं के कितने नाम हैं और क्यों ?

**उत्तर** इस सूत्र के तीन नाम हैं-

- (1) नमोत्थु णं-भक्तामर स्तोत्र की भाँति प्रथम शब्द के आधार पर यह नाम प्रयुक्त किया जाता है ।
- (2) शक्रस्तव-प्रथम देवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्र ने अरिहन्त भगवान की स्तुति इस पाठ द्वारा की; अतः इसे शक्रस्तव भी कहा गया है ।
- (3) प्रणिपात सूत्र-प्रणिपात का अर्थ नमस्कार होता है । इसमें तीर्थङ्कर देव को नमस्कार किया गया है, अतः इसका प्रणिपात सूत्र के नाम से भी उल्लेख किया जाता है ।

**प्रश्न 2.** नमोत्थु णं पढ़ने की विधि क्या है ?

**उत्तर** राजप्रश्नीय आदि मूल आगम व कल्पसूत्रादि में जहाँ देवताओं द्वारा भगवान को नमोत्थुणं के पाठ से वन्दना का उल्लेख है, वहाँ दाहिना घुटना भूमि पर टेकने व बायाँ घुटना खड़ा कर दोनों हाथ अंजलिबद्ध कर मस्तक पर लगाने का विधान है । यह आसन विनय व नम्रता का सूचक है । वर्तमान में भी नमोत्थुणं पढ़ने की यही परम्परा प्रचलित है ।

**प्रश्न 3.** प्रस्तुत सूत्र में किसको वन्दना की गयी है ?

**उत्तर** प्रस्तुत सूत्र में तीर्थङ्कर देव की स्तुति की गयी है । इसका क्षेत्र

सामान्य केवलियों तक विस्तृत नहीं किया जा सकता, क्योंकि ‘तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंत चक्कवट्टीणं’ आदि विशेषण इसे केवल तीर्थङ्कर पद से मोक्ष पाने वालों तक ही सीमित करते हैं। तीर्थङ्कर की स्तुति में वर्तमान तीर्थङ्कर एवं सिद्ध दोनों का अन्तर्भाव हो गया है।

#### प्रश्न 4. नमोत्थु णं कितनी बार व क्यों ?

उत्तर इस सम्बन्ध में वर्तमान प्रचलित परम्परा दो बार नमोत्थु णं पढ़ने की है। पहले से सिद्धों को तथा दूसरे से अरिहन्तों को वन्दना की जाती है। गुजरात जैसे कुछ क्षेत्रों में तीसरा नमोत्थु णं धर्माचार्य को भी दिया जाता है।



सामायिक ग्रहण के पश्चात् समापन के काल तक की क्रिया :- अध्ययन, स्वाध्याय, ध्यान, जप आदि करना, माला व आनुपूर्वी फेरना तथा प्रार्थना, स्तवन आदि बोलना एवं प्रवचन सुनना।

**सामायिक साधना समापन विधि-**सामायिक सम्बन्धी दोष निवारणार्थ चउवीसत्थव करने की आज्ञा है लेकर नवकार मन्त्र, ईर्यापथिक सूत्र बोलें तत्पश्चात् तस्स उत्तरी के पाठ में ‘झाणेणं’ तक बोलकर ‘एक लोगस्स का काउस्सग’ ऐसा बोलकर अप्पाणं वोसिरामि बोलने के साथ विधिवत् उत्कीर्तन सूत्र का काउस्सग करें, काउस्सग पूर्ण होने पर ‘नमो अरिहंताणं’ ऐसा कहकर काउस्सग पालें, बाद में काउस्सग शुद्धि का पाठ व उत्कीर्तन सूत्र बोलकर विधिपूर्वक दो बार नमोत्थु णं देवें, बाद में सामायिक पारने व अन्य दोष निवारण हेतु निम्न सामायिक समापन सूत्र बोलें।

## 9. सामायिक समापन सूत्र

एयरस्स नवमरस्स सामाइय-वयरस्स पंच अइयारा जाणियव्वा,  
न समायरियव्वा, तं जहा-ते आलोउ-मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्प-  
णिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयरस्स सइअकरणया, सामाइयरस्स  
अणवट्टियरस्स करणया, तरस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥1॥

सामाइयं सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं, न तीरियं न  
किड्डियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणुपालियं न भवइ,  
तरस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥2॥

सामायिक में दस मन के, दस वचन के, बारह काया के, इन  
बत्तीस दोषों में से किसी दोष का सेवन किया हो तो तरस्स मिच्छा  
मि दुक्कडं ॥3॥

सामायिक में स्त्री कथा\*, भवत-कथा, देश कथा, राज कथा,  
इन चार विकथाओं में से कोई विकथा की हो तो तरस्स मिच्छा मि  
दुक्कडं ॥4॥

सामायिक में आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह  
संज्ञा, इन चार संज्ञाओं में से किसी भी संज्ञा का सेवन किया हो  
तो तरस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥5॥

\* बहिनें यहाँ पर “पुरुष कथा” बोलें।

सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार का जानते, अजानते, मन, वचन, काया से सेवन किया हो तो तरस्स मिछ्छा मि दुक्कड़ ॥६ ॥

सामायिक व्रत विधि से ग्रहण किया, विधि से पूर्ण किया, फिर भी विधि में कोई अविधि हुई हो तो तरस्स मिछ्छा मि दुक्कड़ ॥७ ॥

सामायिक में पाठ उच्चारण करते काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, हस्य, दीर्घ, कम-ज्यादा, आगे-पीछे, विपरीत पढ़ने-बोलने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से तरस्स मिछ्छा मि दुक्कड़ ॥८ ॥

शब्दार्थ-एयस्स नवमस्स = इस नवमें । सामाइय-वयस्स = सामायिक व्रत के । पंच अइयारा = पाँच अतिचार हैं । जाणियव्वा = (वे) जानने योग्य है । न समायरियव्वा = (किन्तु) सेवन करने योग्य नहीं । तं जहा = वे इस प्रकार हैं । ते आलोउं = उनकी आलोचना करता हूँ, मणदुप्पणिहाणे = मन में अशुभ विचार किये हों । वयदुप्पणिहाणे = अशुभ वचन बोले हों । कायदुप्पणिहाणे = शरीर से अशुभ कार्य किये हों । सामाइयस्स सइअकरणया = सामायिक की स्मृति न रखी हो । सामाइयस्स अणवट्टियस्स करणया = विधिपूर्वक सामायिक का पालन नहीं किया हो । तरस्स = वह । मिछ्छा = मिथ्या हो । मि = मेरा । दुक्कड़ = दुष्कृत, दोष ।

सामाइयं सम्मं = सामायिक व्रत को सम्यक् प्रकार । काएणं न फासियं

= काया से न स्पर्शा हो । न पालियं = न पाला हो । न तीरियं = पूर्ण न किया हो । न किद्वियं = कीर्तन न किया हो । न सोहियं = शोधन न किया हो । न आराहियं = आराधन न किया हो । आणाए = आज्ञानुसार । अणुपालियं न भवइ = पालन नहीं किया हो । तस्स मिच्छा मि दुक्कडं = मेरा वह पाप (दुष्कृत) मिथ्या हो ।

**पाठ विवेचन-** सविधि सामायिक व्रत ग्रहण के पश्चात् साधक निश्चित काल के लिए स्वीकृत सामायिक व्रत की सम्यक् प्रतिपालना में लीन हो जाता है। इस समय में वह अध्ययन, मनन-चिन्तन, स्तुति व ध्यानादि द्वारा सर्वतोमुखी साधना करता है। निश्चित काल व्यतीत हो जाने पर साधक समापन सूत्र द्वारा यह व्रत पारता है। साधक का यह कर्तव्य है कि वह सामायिक-काल में पापों व दोषों से बचने का भरसक प्रयास करे। फिर भी साधक आखिर साधक ही है। साधनाकाल में कुछ दोष अन्ततोगत्वा लग ही जाते हैं। उनके लिये सामायिक पारते समय आलोचना की जाती है। इस प्रायश्चित्त विधान में अपने दोषों को कुरेद-कुरेद कर देखने की प्रवृत्ति है। ऐसा नहीं है कि अपने दोषों को छिपाकर दूसरों पर उनको थोपने की वृत्ति या भावना हो। इस दोष-दर्शन की प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक प्रभाव साधक की आत्मा पर पड़ता है और वह उत्तरोत्तर दोष रहित बनती जाती है।

इस पाठ में सामायिक व्रत में लगने वाले दूषणों का उल्लेख करते हुए इनके लिये प्रायश्चित्त किया गया है। व्रत चार प्रकार से दूषित हो सकता है। वे प्रकार हैं- अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार। मन में शुभ भाव विनष्ट हो, उनके स्थान पर अशुभ भावों की उत्पत्ति तथा अकृत्य करने का संकल्प उदित होना अतिक्रम है। अकृत्य को करने के लिए साधन जुटाना

व्यतिक्रम है। इससे आगे बढ़कर अकृत्य को कार्य रूप में परिणत करने हेतु आगे बढ़ना आदि अतिचार है व अकृत्य का सेवन करना अनाचार है। कहा भी है-

**दोहा- अतिक्रम इच्छा जानिए, व्यतिक्रम साधन संग।**  
**देश भंग अतिचार है, अनाचार सर्व भंग ॥**

मन की विमलता नष्ट होने को, अतिक्रम है कहा,  
अरु शीलचर्या के विलंघन को, व्यतिक्रम है कहा।  
हे नाथ ! विषयों में लिपटने को, कहा अतिचार है,  
आसक्त अतिशय विषय में रहना महाऽनाचार है ॥

साधक को अनाचार सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। उसको अतिचार तक के दोषों से भी बचने का प्रयास करना चाहिये। अतिक्रम और व्यतिक्रम जब तक मन में दृढ़ता का अभाव है, सम्भव है। अधिक दुष्परिणमन की दशा में अतिचार भी लगना कदाचित् सम्भव है। सामायिक के इस समापन-सूत्र में इन्हीं अतिचारों के सेवन की आलोचना की गयी है। अतिचारों की आलोचना के साथ अतिक्रम व व्यतिक्रम की आलोचना स्वतः हो जाती है। सामायिक व्रत के पाँच अतिचार हैं-

**(1) मण्डुप्पणिहाणे** (मन दुष्प्रणिधान)-मन की सांसारिक, भौतिक संकल्प विकल्प की ओर गति, सामायिक का प्रथम अतिचार है।

**(2) वयदुप्पणिहाणे** (वचन दुष्प्रणिधान)-सामायिक के काल में विवेकशून्य, अशुभ, सांसारिक विषयों से सम्बन्धित वचन बोलना, द्वितीय अतिचार है।

**(3) कायदुप्पणिहाणे** (काय दुष्प्रणिधान)-शरीर की अस्थिरता व कुचेष्टाएँ, विवेक रहित हलन-चलन आदि तीसरा अतिचार है।

जहाँ सूत्र के प्रथम भाग में अकृत्य सेवन की आलोचना की गयी है, वहाँ द्वितीय भाग में कृत्य के असेवन की भी आलोचना की गयी है। सामायिक में प्रभु का कीर्तन करना चाहिये तथा इसका सम्यक् शुद्ध रीति से आराधन किया जाना चाहिये। सामायिक का समय पूर्ण होने तक (वीतराग देव की आज्ञा से) ब्रत का पवित्र भावना के साथ अनुपालन करते हुए यह प्रयास करना चाहिए कि सामायिक का व इसकी भावना का जीवन के साथ स्पर्श हो, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सामायिक का प्रभाव परिलक्षित हो।

◆◇◆

अध्याय चतुर्थ

सामायिक : जिज्ञासा-समाधान



## जिज्ञासा-समाधान

**प्रश्न 1.** सभी अतिचारों और दोषों से रहित सामायिक होना कठिन है तो सदोष सामायिक करने से तो न करना ही अच्छा है ?

**उत्तर** निर्दोष सामायिक करना कठिन भले ही हो, पर यह असंभव नहीं है। सांसारिक व्यवहार को चलाने के लिए तथा क्षण भंगुर जीवन को सुखी बनाने के लिए जो लोग बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हैं, क्या वे आत्मा के शाश्वत कल्याण के लिए दो घड़ी भी सचेत, सजग एवं तत्पर नहीं रह सकते ? विवेकवान व्यक्ति के लिए ही निर्दोष सामायिक कर पाना सम्भव है। हमें इसके लिए सतत जागृत रहकर अभ्यास करना चाहिये।

दूसरे, जब तक हमें पूर्ण निर्दोष सामायिक कर पाने की शक्ति प्राप्त न हो, तब तक हम सामायिक साधना न करें, यह विचार विवेक शून्य है। क्या मिष्ठान का इच्छुक उसके अभाव में रोटी भी छोड़ देगा ? अतएव कदाचित् पूर्ण शुद्ध सामायिक न बन सके तो भी वर्तमान सामायिक में शुद्धता का लक्ष्य रख कर धीरे-धीरे गलती निकालते चलें, लगने वाले दोषों के लिये प्रायश्चित्त करें और शुद्ध सामायिक करने का अभ्यास करते रहें। ऐसा करने से अन्ततः किसी समय शुद्ध सामायिक भी प्राप्त हो सकेगी। शोध करने वाला स्नातक भी प्रारम्भ में स्लेट पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ खींचते हुए अपनी शिक्षा प्रारम्भ करता है।

**प्रश्न 2.** दिन भर पाप करके एक सामायिक कर भी लें तो क्या लाभ है ? जबकि दिनभर के पाप कर्म तो ज्यों के त्यों बने हैं ?

**उत्तर** दो घड़ी की सामायिक के आदर्श को हम जीवन-व्यवहार में उतारें। पर अभी हम क, ख, ग की कक्षा में हैं। सामायिक के आदर्शों पर नहीं चल पा रहे हैं; तथापि यदि दो घड़ी सम्यक् आराधना में व्यतीत करेंगे तो समझना चाहिये कि 48 हाथ डोरी में से 46 हाथ तो कुए में डाल दी, पर अभी दो हाथ डोर हाथ में हैं। यदि दृढ़तापूर्वक प्रयास करें तो क्या इस 46 हाथ डोर को कुए से नहीं निकाल सकते? ठीक इसी प्रकार दो घड़ी के लिए सम्यक् रूपेण सामायिक करने वाला साधक अपनी इस जमा पूँजी के बल पर अपना रत्नत्रय रूप माल पुनः प्राप्त कर सकता है।  
यदि एक कुली के सिर पर बेतोल वजन रखा हो और उसमें से कुछ को कम कर लिया जाय तो क्या उसे हल्केपन की स्थिति अनुभव नहीं होती? इसी प्रकार सामायिक दिन भर किए गये पापों की गठरी के भार को कम कर देती है।  
फिर यह बात भी है कि हमारी सामायिक एक ट्रेनिंग है। सतत सामायिक के सम्पर्क में आने वाली आत्मा एक न एक दिन अपने जीवन-व्यवहार में शुद्धि प्राप्त करने में अवश्य सफल होती है।

**प्रश्न 3.** बारह व्रतों में सामायिक नवमाँ व्रत है। फिर प्रथम आठ को स्वीकार किये बिना ही सामायिक का अनुपालन कर सकते हैं क्या?

**उत्तर** बारह में से कोई भी व्रत बिना किसी क्रम के 49 भांगों (तीन करण तीन योग से बनते हैं) में से किसी भी भंग से ग्रहण किया जा सकता है। प्रतिक्रमण सूत्र में भी ‘अद्वाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र’ के पाठ में कहा है—‘श्रावक एक व्रतधारी यावत् बारह व्रतधारी’।

दूसरी बात, प्रथम से अष्टम व्रत तक सभी यावज्जीवन होते हैं, इसलिए अगर इतनी शक्ति न हो तो नवमाँ व्रत जो कम से कम 1 मुहूर्त का होता है वह तो आसानी से धारण किया जा सकता है।

तीसरे, सामायिक की साधना से राग-द्वेष घटने पर अहिंसा, सत्य आदि का पालन आसान हो सकता है। इसलिए मूल व्रतों की योग्यता पाने हेतु भी सामायिक व्रत का साधन आवश्यक है।

**प्रश्न 4. सामायिक में यदि लघुनीत (पेशाब) की शंका हो तो क्या करना चाहिये ?**

**उत्तर** सामायिक में यदि लघुशंका करने जाना पड़े तो दिन के समय पूँजनी और रात्रि के समय रजोहरण/डांडिया साथ लेकर तथा रात्रि में बदन और सिर पर कपड़ा ओढ़कर जाना चाहिये। जाते समय तीन बार “आवस्सही” बोलना चाहिये। दिन को जीवरक्षा की दृष्टि से नीचे देखकर और रात्रि के समय पूँजकर जाना चाहिये। सामायिक में मूत्रघर, नाली, गटर आदि को वर्ज कर जहाँ खुली जमीन हो वहाँ पर भी जीव-जन्तु, धान्य, बीज और हरी वनस्पति न हो वहाँ, शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा लेकर नीचे यतनापूर्वक दिन को देखकर व रात्रि को पूँजकर लघु शंका करनी चाहिये। लघुशंका के पश्चात् अपने स्थान पर आकर तीन बार ‘निस्सही’ बोलना चाहिये। फिर इच्छाकारेण पाठ का कायोत्सर्ग करना चाहिये। इसी प्रकार बड़ी नीत से निपटना पड़ जाय तो गर्म पानी या धोवन पानी से शुचि करनी चाहिये। यदि निर्दोष साधन उपलब्ध नहीं हो तो दोषपूर्ण साधनों के उपयोग का प्रायश्चित् ग्रहण करना होता है।

प्रथम तो साधक को इन क्रियाओं से निपट कर ही सामायिक करनी चाहिये; क्योंकि कई स्थानों पर खुली जमीन नहीं मिलती। फिर टट्टी, पेशाब आदि को रोकना भी उचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि शंका रोकने से जहाँ एक ओर मन बार-बार उस ओर जाना सम्भव है तो दूसरी ओर इससे अनेक रोग भी उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए वर्षा होने पर साधु-साध्वी आहार के लिए तो नहीं निकलते, किन्तु दीर्घ शंका निवारण के लिए जाना पड़े तो जा सकते हैं।

**प्रश्न 5. रात्रि में शरीरादि ढँककर जाने का क्या कारण है?**

उत्तर सूक्ष्म अप्काय (पानी) दिन-रात हर समय बरसता रहता है। दिन में तो सूर्य की गर्मी के कारण नीचे आने के पहले ही वह सूख जाता है। किन्तु रात्रि की शीतल वेला में वैसा नहीं होने से उस पानी के जीवों की हमारे शरीर की गर्मी से सीधी हिंसा न हो, इस हेतु कपड़े द्वारा शरीर व सिर को ढँककर जाते हैं। इसी कारण रात्रि को सामायिक में खुली जगह अर्थात् बिना छपरे बैठना भी निषिद्ध माना गया है।

**प्रश्न 6. सामायिक में कफ, श्लेष्म (नाक का मल) त्याग की भी क्या कोई विधि है?**

उत्तर सामायिक में कफ व श्लेष्म को भी यतनापूर्वक ही डालना चाहिए। ज्यादा ऊँचाई से व बिना देखे वैसे ही डालने पर उससे दबकर चींटी, मक्खी आदि जन्तु मर सकते हैं, इसलिए पहले नीचे जमीन को देखकर व रात्रि के समय पूँजकर नीचे होकर (झुककर) डालना चाहिए। फिर हो सके तो उस पर राख या

अचित्त मिट्टी डाल दी जाय, जिससे बाद में उससे चींटी आदि  
उलझ कर नहीं मरे और किसी का पैर भी नहीं भरे ।

**प्रश्न 7.** सामायिक में रुपया, पैसा, ज़ेवर (चैन, अँगूठी आदि)  
आदि पास में रख सकते हैं या नहीं ?

**उत्तर** वैसे तो ये सभी वस्तुएँ परिग्रह में गिनी जाती हैं और परिग्रह  
नामक पाँचवें पाप का सामायिक में त्याग होता है, इस कारण  
इन्हें पास में रखना कल्पनीय नहीं है । तथापि निकाल कर या  
उतारकर अलग रखना परिस्थितिवश सम्भव न हो तो इनका  
आगार रखकर सामायिक ग्रहण करना चाहिये । पर रुपयों का  
लेन-देन तो कदापि नहीं करना चाहिए ।

**प्रश्न 8.** सामायिक में सेल घड़ी, गाड़ी की रिमोट चाबी, मोबाइल  
आदि को साथ में रख सकते हैं या नहीं ?

**उत्तर** वर्तमान युगीन प्रचलित कई उपकरण जो गृहस्थ जीवन की  
अनिवार्य आवश्यकता बन गई है, जैसे-सेल की घड़ी, गाड़ी  
की चाबी, रिमोट कंट्रोल, मोबाइल सेल फोन आदि । सामायिक  
की साधनारत-साधक को इन्हें अपने पास रखना कल्पनीय नहीं  
है । कारण कि इनमें विद्युत सेल का उपयोग होने से तेजस्काय  
का संघट्ठा लगता है । शुद्ध सामायिक के साधक को इन वस्तुओं  
के धारक व्यक्ति से संस्पृष्ट होना भी प्रतिसेवना का कारण  
बनता है । अतः सामायिक में वर्जनीय माना गया है । जहाँ स्थानक  
में सामायिक करनी हो वहाँ इन्हें काउण्टर पर जमा करा देना  
चाहिए या फिर अलग व्यवस्था करनी चाहिए ।

सामायिक में टी.वी. चालू हो तो उसे देखते हुए भी सामायिक

नहीं करना चाहिए, चाहे उस पर आस्था, पारस, अरिहंत, जिनवाणी आदि चैनलों पर प्रवचन ही क्यों नहीं आ रहे हो ।

**प्रश्न 9.** सामायिक में वचन और काया को तो फिर भी वश में किया जा सकता है पर मन को वश में रखना कैसे सम्भव हो सकता है ?

**उत्तर** यह ठीक है कि मन का स्वभाव चंचल होने से उसका स्थिर होना कठिन है, फिर भी अगर धार्मिक पुस्तकों का वाचन, नवीन ज्ञानार्जन, धार्मिक चर्चा, वार्ता और धर्मोपदेश आदि करने व सुनने में मन को जोड़ दिया जाय तो उसका इधर-उधर भटकना बन्द होगा और कुछ न कुछ नई जानकारी भी बढ़ती रहेगी । श्रुतज्ञान में अनुप्रेक्षा मन के स्थिरीकरण का बहुत ही सरल और सही मार्ग है । स्वाध्याय के लिए विविध प्रकार का उत्तम साहित्य उपलब्ध है, जिसका पारायण कर मन को स्थिर किया जा सकता है । सामायिक में प्रत्यक्ष देखा जाता है, माला फेरने, स्तवन गाने अथवा अन्य प्रवृत्ति करने में उतनी तल्लीनता नहीं आती जितनी स्वाध्याय से आती है । स्वाध्याय में मन, मस्तिष्क, जिहा, आँखें और काया का संयोजन आवश्यक रूप से रहता है । इस साधना में आसन स्थिर, वाणी नियन्त्रित और मन एकाग्र होता है ।

**प्रश्न 10.** सामायिक व पौष्ठ में क्या अन्तर है ?

**उत्तर-** श्रावक-श्राविकाओं की सामायिक केवल एक मुहूर्त यानी 48 मिनट की होती है, जबकि पौष्ठ कम से कम चार प्रहर का (लगभग 12 घण्टे का) होता है । सामायिक में निद्रा और आहार का त्याग करना ही होता है, जबकि पौष्ठ चार और उससे

अधिक प्रहर का होने से रात्रि के समय में निद्रा ली जा सकती है। प्रतिपूर्ण पौष्टि में तो दिन में भी चारों आहारों का त्याग रहता है, जबकि देश पौष्टि के ग्यारहवें पौष्टि में तो दिन में चारों आहार का त्याग होता है किंतु दसवें पौष्टि में दिन में अचित्त पानी ग्रहण किया जा सकता है। रात्रि में तो उक्त सभी में चारों आहार का त्याग ही होता है।

**प्रश्न 11.** पहले सामायिक ली हुई हो और पीछे पौष्टि की भावना जगे तो, सामायिक पालकर पौष्टि ले या सीधे ही ?

**उत्तर** पौष्टि सीधे ही लेना चाहिए, क्योंकि पालकर लेने से बीच में अव्रत लगता है। कदाचित् पालते-पालते उसकी भावना मन्द भी हो सकती है।

**प्रश्न 12.** पौष्टि लेने के पश्चात् सामायिक का काल आ जाने पर सामायिक पालें या नहीं ?

**उत्तर** सामायिक विधिवत् न पालें, क्योंकि पौष्टि चल रहा है। सामायिक-पूर्ति की स्मृति के लिए नमस्कार मन्त्र आदि गिन लें।

**प्रश्न 13.** पौष्टि में सामायिक करें या नहीं ?

**उत्तर** पौष्टि में सावद्य योगों का त्याग होने से सामायिक की तरह ही है, परन्तु निद्रा, आलम्बन आदि इतने समय तक नहीं लूँगा, आदि के नियम कर सकते हैं।

**प्रश्न 14.** सामायिक में कपड़े उतारने की क्या कोई आवश्यकता नहीं? क्योंकि सामायिक के पाठ में ऐसा कोई विधान नहीं है।

**उत्तर** यह ठीक है कि पाठ में विधान नहीं है, परन्तु सब विधान पाठ में हो ही, यह भी कोई नियम नहीं है। उपासकदशांग-सूत्र में कुण्डकौलिक श्रावक के अध्ययन में वर्णन आया है कि ‘उसने नाम-मुद्रिका और उत्तरीय अलग पृथ्वी-शिला पर रखकर भगवान महावीर के पास धर्म-प्रज्ञप्ति स्वीकार की।’ यह धर्म प्रज्ञप्ति सामायिक के सिवाय और क्या हो सकती है? नाम-मुद्रिका और उत्तरीय उतारने का क्या प्रयोजन? स्पष्ट ही उक्त पाठ सामायिक की ओर संकेत करता है तथा सामायिक के पूर्व कपड़े उतारने की परम्परा बहुत प्राचीन भी है। अतएव गृहस्थवेषोचित वस्त्र उतारना ठीक ही है। सामायिक में नीचे चोलपट्टा एवं ऊपर दुपट्टा धारण करना होता है।  
वस्त्र और गहना आदि का त्याग पुरुष-वर्ग के लिए ही विहित है। स्त्री-जाति के लिए ऐसा कोई विधान नहीं है। स्त्री की मर्यादा वस्त्र उतारने की नहीं है। अतएव वे वस्त्र पहने हुए ही सामायिक की आराधना करें, तो कोई दोष नहीं है। जिन-शासन का प्राण ही अनेकान्त है। प्रत्येक विधि-विधान, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि को लक्ष्य में रखकर अनेक रूप माना गया है।

#### **प्रश्न 15. सामायिक स्वयं ग्रहण करें या दूसरों से पच्चक्खान लेवें?**

**उत्तर** सामायिक दोनों रूप से ग्रहण की जाती है। जब गुरुजन को अनुकूलता हो, अन्य जनों को विक्षेप न हो और स्वयं को भी सामायिक ग्रहण करने का पाठ याद न हो, तब गुरुजनों से सामायिक प्रतिज्ञा लेनी चाहिए और जब गुरुदेवों को अनुकूलता न हो, व्याख्यानादि चल रहे हों और अन्य श्रोता आदिजनों को

व्याख्यान-श्रवण में विक्षेप हो, तब स्वयं ही सामायिक की प्रतिज्ञा ग्रहण करना उचित है।

**प्रश्न 16. सामायिक को सामायिक कहते हैं या मुहूर्त ?**

**उत्तर** एक मुहूर्त के या एक सामायिक के प्रत्याख्यान माँगने वाले दोनों जन, 'एक मुहूर्त की सामायिक' की प्रतिज्ञा माँगते हैं। परंतु 'एक मुहूर्त की सामायिक' के पच्चक्खान दीजिए-इतना बोलने में अधिक बोलना पड़ता है। इसलिए संक्षेप में कोई मुहूर्त तो कोई सामायिक बोलता है। परंतु आशय दोनों का एक ही है। अतः मुहूर्त या सामायिक दो में से कोई भी शब्द बोले, वह गलत नहीं है।

**प्रश्न 17. सामायिक में खाने-पीने के त्याग का पाठ तो है नहीं, फिर खाने-पीने में क्या बाधा है ?**

**उत्तर** यह बात सही है कि सामायिक के प्रतिज्ञा-सूत्र में आहार-प्रत्याख्यान का उल्लेख नहीं है। क्योंकि सामायिक प्रतिज्ञा-सूत्र की रचना साधु के दीक्षा-सूत्र के समान ही है। मात्र करण-योग और काल-मर्यादा का ही अंतर है। इसलिये इसमें आहार-प्रत्याख्यान का उल्लेख नहीं है। परंतु कम समय की साधना को पूर्ण शुद्ध रखने के उद्देश्य से परंपरा से आहार-प्रत्याख्यान इसमें गर्भित है-यह समझना चाहिए।

**प्रश्न 18. सामायिक में गुरु महाराज आदि शिष्टजनों का विनय करना चाहिए या नहीं ?**

**उत्तर** गुरुजन दो प्रकार के हैं-साधु-साध्वी आदि तथा दूसरे असंयत सांसारिक गुरुजन। इनमें सामायिक साधक धार्मिक या धर्म-आराधक गुरुजन का विनय-बहुमान कर सकता है।

किंतु असंयत-सांसारिक-गुरुजन का अपने ब्रत की मर्यादा व गरिमा रखते हुए विनय कर सकता है अर्थात् उनकी ओर पीठ नहीं देना, उनका अपमान हो ऐसा कार्य नहीं करना, बिना हाथ जोड़े जय जिनेन्द्र करना आदि। परंतु ‘आओ पधारो’ आदि कहना, उन्हें आसन देना, प्रणाम करना आदि विनय बहुमान नहीं करना चाहिए।

**प्रश्न 19.** सामायिक साधक अब्रती, नेता, तपस्वी आदि का माला, शाल आदि से बहुमान कर सकते हैं क्या ?

**उत्तर** नहीं, ऐसा करना उचित नहीं है। इस विषय में वर्तमान में बहुत विकृति आ गई है। वस्तुतः सामायिक वाला न तो ऐसा सम्मान किसी का करे और न अपना स्वीकार ही करे। बिना सामायिक वालों का सम्मान करने से असंयत का सम्मान होता है और अपना सम्मान स्वीकार करने से परिग्रह स्वीकार करने का दोष लगता है तथा परिग्रह-संज्ञा का पोषण होता है।

**प्रश्न 20.** तप आदि की बोली से तपस्वी का सम्मान सामायिक साधक कर सकता है क्या ?

**उत्तर** तपस्वी के तप के सम्मान में तप की बोली बोलता है तो सामायिक वाले की सामायिक में कुछ दोष लगने की संभावना प्रतीत नहीं होती। किंतु माला, शाल आदि से तपस्वी का सम्मान नहीं करना चाहिए। ऐसे ही पौष्ठ आदि में समझना चाहिए।

**प्रश्न 21.** सामायिक में रुपये-पैसे, बर्तन आदि की भेंट स्वीकार कर सकते हैं क्या ?

- उत्तर** सामायिक में वर्तमान में प्रश्न-मंच आदि के कारण पैसे आदि की भेंट पुरस्कार के रूप में ली-दी जाती है। परंतु सामायिक में ऐसी भेंट स्वीकार करने से सामायिक का स्वरूप विकृत होता है। इसलिए सामायिक में ऐसी भेंट स्वीकार करना-अनुचित है, दोष है।
- प्रश्न 22.** एक सामायिक में दूसरी सामायिक मिलाने के प्रत्याख्यान लिए जा सकते हैं क्या? तथा कब तक लिए जा सकते हैं?
- उत्तर** एक सामायिक में दूसरी सामायिक लेने की परंपरा प्राचीन समय से चली आ रही है। मान लो कि एक सामायिक के बाद ज्ञान-ध्यानादि में दूसरी सामायिक का काफी समय बीत गया है। फिर सामायिक वाले को ध्यान आने पर वह दूसरी सामायिक के प्रत्याख्यान ले सकता है और उसमें व्यतीतकाल उसमें गर्भित कर सकता है, क्योंकि उसने प्रत्याख्यान पाले नहीं हैं और बीता हुआ समय सामायिक में ही गया है।  
 यदि दूसरी सामायिक का पूरा समय व्यतीत हो जावे तो वह पहली सामायिक में दूसरी सामायिक मिला सकता है क्या? इसके समाधान में बताया कि दूसरी सामायिक का भी काल व्यतीत हो गया तो वह दूसरी सामायिक मिलाकर तत्काल ही पारने लग जाता है। अतः उसे सामायिक का सामाइयस्स अणवट्टियस्स करण्या-नामक पाँचवाँ अतिचार लगता है। हाँ, लगभग 10-15 मिनिट शेष हो, तब तक वह दूसरी सामायिक के प्रत्याख्यान ले तो दोष लगने की संभावना नहीं रहती।  
 एक सामायिक की थी, दूसरी सामायिक का समय भी पूरा बीत

गया। अब वह तीसरी सामायिक लेना चाहता है तो वह एक सामायिक में दो सामायिक मिलाकर तीन सामायिक के प्रत्याख्यान ले सकता है। क्योंकि साधक अगला पूरा मुहूर्त सामायिक में ही व्यतीत करेगा। इसलिए अतिचार लगने की संभावना नहीं लगती।

**प्रश्न 23.** सामायिक में सामायिक की वृद्धि करने पर विधि भी करनी पड़ती है क्या ?

**उत्तर** सामायिक बढ़ाने के पूर्व की कुछ विधि नहीं है। सामायिक बढ़ाने के लिए सामायिक प्रतिज्ञा-सूत्र से ही सामायिक की प्रतिज्ञा ली जाती है। जितने मुहूर्त की पूर्व की सामायिक की है, उस संख्या में मिलाई जाने वाली सामायिक की संख्या जोड़कर पूरी संख्या बोली जाती है। जैसे किसी के तीन सामायिक हैं, उसमें दो और बढ़ानी हो तो इस प्रकार प्रतिज्ञा ली जाती है-

करेमि भंते ! सामाइयं । सावज्जं जोगं पच्चक्खामि ।  
तीन में दो मिलाकर जाव पंच-मुहूर्तं पञ्जुवासामि... (पूरा पाठ)

प्रत्याख्यान लेने के बाद दो णमोत्थुणं देने की परंपरा है। सम्प्रति कोई-कोई इसका निषेध भी करते हैं।

**प्रश्न 24.** सामायिक में रात्रि में बाहर निकलने के लिए कुछ विधि करनी होती है क्या ?

**उत्तर** शारीरिक आदि कारण से बाहर निकलना हो तो उपाश्रय में दाण्डिया (श्रावक के रजोहरण) से पूँजकर चलना चाहिए। द्वार से बाहर निकलने पर अपने दुपट्टे से सिर एवं शरीर ढँकना चाहिए। बाहर जाते समय तीन बार आवस्सही कहना चाहिए। उपाश्रय में

पुनः प्रवेश के समय तीन बार निस्सीहि कहना और उपाश्रय में अपने आसन पर आ जाने के बाद इरियावहिय का ध्यान करना चाहिए।

**प्रश्न 25. क्या सामायिक में आहार दान (गोचरी) किया जा सकता है क्या ?**

**उत्तर** सामायिक में सावद्ययोग के प्रत्याख्यान होते हैं, इसलिए सचित पदार्थों को दान में देने की बात तो दूर रही, परंतु उनका स्पर्श भी नहीं किया जा सकता है और ब्रत-विहीन को आसन देना भी वर्जित है तो दान देने की प्रवृत्ति कैसे हो सकती है।

अब रही अनगार (साधु) को आहार-दान देने की बात। सामायिक करने वाले को सामायिक के समय के लिए सभी पदार्थों का त्याग हो जाता है। इसलिए इतने समय के लिए वे पदार्थ उसके नहीं रह जाते हैं। इसलिए सामायिक-ब्रतधारी, घर वालों से अनुमति लेकर मुनिराज के योग्य आहार-दान दे सकता है।

**प्रश्न 26. सामायिक करने वाले विद्युत-प्रकाश और पंखे तले बैठ सकते हैं क्या ?**

**उत्तर** घर में या स्थानक में भी स्वयं विद्युत-प्रकाश करके या करवाकर बैठे वह उचित नहीं है। उस समय विद्युत-प्रकाश में कुछ पढ़ना आदि भी उचित नहीं है। क्योंकि इससे परम्परा विकृत होती है। पंखे के तले या सामने बैठना भी सरासर गलत है। पंखे से निरंतर आरंभ हो रहा है। साधक को देह की साता का अभ्यास छोड़ना चाहिए।

**प्रश्न 27.** दीक्षा प्रसंग, जयंती, वर्षीतप पारणे आदि के प्रसंग में अतिथि आदि के लिए सामायिक वालों से ऊँचे आसनों पर व्यवस्था की जाती है, गादी-तकिये लगाए जाते हैं—  
यह ठीक है क्या ?

**उत्तर** सामायिक वालों का स्थान मुनियों के सम्मुख ही होना चाहिये । फिर सामायिक वाले ही उस सभा के वास्तविक सभासद होते हैं । उनसे किसी अन्य का आसन उच्च नहीं होना चाहिए । ऐसा अनुचित व्यवहार करना—व्यवस्थापकों के अज्ञान का सूचक है । असंयतों के लिए गादी-तकिए आदि लगाने से, मात्र सामायिक वालों की ही नहीं, मुनियों की भी आशातना होती है ।

**प्रश्न 28.** सामायिक करने वालों के जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नज़र नहीं आता । फिर ऐसी सामायिक करने से क्या लाभ ?

**उत्तर** एकांत रूप से ऐसी बात नहीं है । जो सामायिक करता है तो उसके हृदय में जिन-आज्ञा के प्रति बहुमान उत्पन्न होता है और मुझे अपने जीवन को पवित्र बनाना है, ये भाव उत्पन्न होते हैं । ये भाव ही उच्च साधना के बीज बन जाते हैं और उत्कृष्ट आराधना की भूमिका का निर्माण करते हैं ।

**प्रश्न 29.** क्या सामायिक में योगासन, प्राणायाम आदि उचित हैं ?

**उत्तर** अधिकांशतः गृहस्थ प्रवृत्ति में ही रहता है । वह सामायिक में ही सावद्य-योग से निवृत्त होता है । वह थोड़ी-सी देर के लिए की गई सामायिक में भी देह-चिंता से निवृत्त नहीं हो तो उसकी सामायिक सार्थक कैसे होगी ?

साधु यदि आज की उलझन भरी सावद्य-चिकित्सा से बचने के लिए आसनादि करते हैं तो उनका उद्देश्य अपनी साधना की निर्दोषता का ही है। अतः उनके द्वारा आसनादि करना अनुचित नहीं है। परंतु श्रावक अल्प समय की सामायिक में मात्र स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए ही आसनादि करता है तो वहाँ साधना का उद्देश्य ही नहीं रह पाता है।

**प्रश्न 30.** अब्रती सामायिक आदि के प्रत्याख्यान करा सकता है क्या ?

**उत्तर** जिसे सामायिक आदि और अन्य प्रत्याख्यानों के पाठ याद हों, वह मात्र अब्रती सम्यग्दृष्टि हो, ऐसा संभव नहीं है। उसे कुछ-न-कुछ ब्रत, नियम या प्रत्याख्यान हो सकते हैं, अतः वह अब्रती नहीं, ब्रताब्रती होता है और सामायिक लेने वाला भी ऐसा ब्रताब्रती हो सकता है। इस प्रकार दोनों समान कक्षा के साधर्मी होते हैं। अतः वे परस्पर प्रत्याख्यान लें तो कुछ बाधा दिखाई नहीं देती है। परंतु अब्रती सामायिक के प्रत्याख्यान बढ़ा नहीं सकता है। सामायिक वाला कुछ विशेष ब्रती है। इसलिए वह स्वयं ही सामायिक को बढ़ा ले, यही अच्छा है।

**प्रश्न 31.** सामायिक में सचित्त जल, हरी वनस्पति, अग्नि (बिजली) आदि के स्पर्श हो जाने पर क्या करना चाहिए ?

**उत्तर** सामायिक साधना में उक्त सभी के स्पर्श होने का त्याग होता है। अतः इनका प्रायश्चित्त ग्रहण किया जाना चाहिये। उक्त परिस्थिति के उत्पन्न होने के पीछे साधक की परिस्थिति देखकर प्रायश्चित्त

दिया जाता है। सामान्य रूप से संघटा होने पर प्रायश्चित्त सामान्य होगा। जान-बूझकर करने पर प्रायश्चित्त ज्यादा हो सकता है।

**प्रश्न 32.** सामायिक में अखबार, मैगजीन आदि क्यों नहीं पढ़ना चाहिए, जबकि ये भी ज्ञानवर्धक होते हैं?

**उत्तर** सामायिक आत्म-उत्थान की साधना है। श्रावक को वैसे भी आत्म-साधना का समय कम मिलता है। उसमें भी अखबार, मैगजीन जिसमें कि चार प्रकार की विकथाओं का ही विशेष वर्णन होता है। विकथा करने से सामायिक का मूल लक्ष्य परिवर्तित हो जाता है और सामायिक में तो आत्म-साधना ही लक्ष्य है। अतः सामायिक के समय में इनको पढ़ना त्याज्य ही है।

**प्रश्न 33.** सामायिक में यदि किसी की सेवा करनी पड़ी तो कर सकते हैं क्या?

**उत्तर** अब्रती की सेवा करने का तो सामायिक में मना ही है। सामायिक वाले की सेवा करने में बाधा नहीं है। संवर वाले की सेवा में विशेष विवेक की आवश्यकता है, क्योंकि उनका त्याग छोटा है। उनके अति आवश्यक होने पर ब्रती होने की अपेक्षा सेवा की जा सकती है।

**प्रश्न 34.** सामायिक में किसी गिरते हुए को उठाना, किसी को चोट लगने पर सेवा करना आदि कार्य कर सकते हैं क्या?

**उत्तर** श्रावक अनुकम्पा रहित नहीं होता है, अतः अति आवश्यक होने पर सेवा करके बाद में उसमें लगे दोष का शुद्धिकरण किया जा सकता है।

**प्रश्न 35. सामायिक में बेहोश हो जाने वाले के ऊपर सचित्त जल के छीटे दे सकते हैं क्या ?**

**उत्तर** यह कार्य अवृत्ति ही कर सकता है, परंतु यदि वहाँ कोई भी उपस्थित नहीं हो और अचित्त जल भी नहीं हो तो अनुकरण उक्त प्रतिसेवन करनी पड़े तो बाद में शुद्धिकरण करना आवश्यक है।

**प्रश्न 36. सामायिक में संसार/स्कूल की पढ़ाई कर सकते हैं क्या ?**

**उत्तर** सामायिक में स्कूल या संसार की पढ़ाई नहीं करनी चाहिये। क्योंकि यह सावद्य अध्ययन कहलाता है। ग्रन्थों में आर्य रक्षित का उदाहरण आता है। उसकी सभी प्रकार सांसारिक कलाओं के अध्ययन को उसकी माता ने संसार बढ़ाने वाली विद्या कहा। इसलिए सामायिक में तो संसार घटाने वाले धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना ही श्रेष्ठ है। संवर में भी संसार की पढ़ाई करना उचित नहीं है।

**प्रश्न 37. सामायिक में विशेष दुर्घटना के समाचार अवगत होने पर सामायिक पूर्ण हुए बिना सामायिक पार कर जा सकते हैं क्या ?**

**उत्तर** श्रेष्ठ तो यही है कि समता का परिचय देवें। लेकिन समाधि भाव भंग होता हो तो पारकर जावें और बाद में प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि कर लेवें।

**प्रश्न 38. सामायिक में कुर्सी का उपयोग कर सकते हैं क्या ? कुर्सी, गद्दी वाली क्यों नहीं होनी चाहिए ?**

**उत्तर** सामान्य लकड़ी या प्लास्टिक की कुर्सी का उपयोग भी बिना

प्रतिलेखना नहीं करना चाहिये। सामान्य कुर्सी का उपयोग भी कारण वश ही कर सकते हैं। गद्दी वाली कुर्सी पर तो नहीं बैठना चाहिये, क्योंकि उसकी प्रतिलेखना अशक्य होती है। ये सब आपवादिक स्थिति हैं, इसे राजमार्ग नहीं बनाना चाहिये। शारीरिक समस्या होने पर भी सामान्य कुर्सी पर बैठना होता है।

**प्रश्न 39. बच्चा छोटा होने पर उसको पास में रखकर सामायिक की जा सकती है क्या ?**

**उत्तर** वैसे तो बच्चा जब सोता रहे या स्कूल आदि में हो तब निश्चिंतता से सामायिक करना श्रेष्ठ है। परंतु यदि बच्चा निद्रा से जागकर सामायिक करने वाले के पास आ जाये तो उसमें यदि बच्चा यदि विजातीय (सामायिक करने वाले के भिन्न लिङ्ग का) है तो बाद में उसके संघट्टे का प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धिकरण आवश्यक है। लेकिन सामायिक में ऐसे विजातीय बच्चे को रखने का कहीं आगार नहीं होता है।



अध्याय पंचम

सामायिक स्तवन



## जीवन उन्नत होवेला

करलो सामायिक रो साधन, जीवन उन्नत होवेला ॥ टेर ॥

तन का मैल हटाने खातिर, नित-प्रति न्हावेला ।  
मन पर मल चहुँ ओर जमा है, कैसे धोवेला ॥1॥

बाल्यकाल में जीवन देखो, दोष न पावेला ।  
मोह माया का संग किया से, दाग लगावेला ॥2॥

ज्ञान गंग ने क्रिया धुलाई, जो कोई धोवेला ।  
काम क्रोध मद लोभ दाग को दूर हटावेला ॥3॥

सत्संगत और शान्त स्थान में, दोष बचावेला ।  
फिर सामायिक साधना करीने शुद्धि मिलावेला ॥4॥

दोय घड़ी निजरूप रमण कर, जग विसरावेला ।  
धर्म-ध्यान में चित्त लगा, चेतन सुख पावेला ॥5॥

सामायिक से जीवन सुधरे, जो अपनावेला ।  
निज सुधार से देश, जाति सुधरी हो जावेला ॥6॥

गिरत-गिरत प्रतिदिन रस्सी भी शिला धिसावेला ।  
करत-करत अभ्यास मोह का जोर मिटावेला ॥7॥

(रचयिता :: आचार्यश्री हस्तीमलजी म.सा.)

◆◆◆

## सामायिक साधन कर लो

जीवन उन्नत करना चाहो तो,  
सामायिक साधन कर लो ।  
आकुलता से बचना चाहो तो,  
सामायिक साधन कर लो । ॥टेर ॥

तन, धन, परिजन सब सपने हैं,  
नश्वर जग में नहीं अपने हैं ।  
अविनाशी सद्गुण पाना हो,  
तो सामायिक साधन कर लो । ॥1॥

चेतन निज घर को भूल रहा,  
पर घर माया में झूल रहा ।  
सद्चित् आनन्द को पाना हो,  
तो सामायिक साधन कर लो । ॥12॥

विषयों में निज गुण मत भूलो,  
अब काम क्रोध में मत झूलो ।  
समता के सर में नहाना हो,  
तो सामायिक साधन कर लो । ॥13॥

तन पुष्टि हित व्यायाम चला,  
मन पोषण को शुभध्यान भला ।

आध्यात्मिक बल पाना चाहो,  
तो सामायिक साधन कर लो ॥ १४ ॥

सब जग जीवों में बन्धु भाव,  
अपना लो तज के वैर भाव ।  
सब जन के हित में सुख मानो,  
तो सामायिक साधन कर लो ॥ १५ ॥

निर्व्यसनी हो प्रामाणिक हो,  
धोखा न किसी जन के संग हो ।  
संसार में पूजा पाना हो,  
तो सामायिक साधन कर लो ॥ १६ ॥

साधक सामायिक संघ बने,  
सब जन सुनीति के भक्त बनें ।  
नरलोक में र्खर्ग बसाना हो,  
तो सामायिक साधन कर लो ॥ १७ ॥

(रचयिता :: आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.)

◆◇◆

## सामायिक तू करता जा

(तर्ज-अगर जिनदेव के चरणों में.....)

अगर जीवन बनाना है, तो सामायिक तू करता जा ।  
हटाकर विषमता मन की, साम्यरस पान करता जा ॥१॥ ध्रुव ॥

मिले धन सम्पदा अथवा, कभी विपदा भी आ जावे ।  
हर्ष और शोक से बचकर, सदा एक रंग रखता जा ॥२॥

विजय करने विकारों को, मनोबल को बढ़ाता जा ।  
हर्ष से चित्त का साधन, निरन्तर तू बनाता जा ॥३॥

अठारह पाप का त्यागन, ज्ञान में मन रमता है ।  
अचल आसन व मित-भाषण, शांत भावों में रमाता जा ॥४॥

पड़े अज्ञान के बन्धन, सदा मन को घुमाता जा ।  
ज्ञान की ज्योति में आकर, अमित आनन्द बढ़ाता जा ॥५॥

पड़ा है कर्म का बन्धन, पराक्रम तू बढ़ाता जा ।  
हटा आलस्य विकथा को, अमित आनन्द पाता जा ॥६॥

कहे ‘गजमुनि’ भरोसा कर, परम रस को मिलाता जा ।  
भटक मत अन्य के दर पर, स्वयं में शांति लेता जा ॥७॥

(रचयिता :: आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.)



## करने जीवन का उत्थान

करने जीवन का उत्थान, करो नित समता रस का पान ॥ठेर ॥

सामायिक की महिमा भारी, यह है सबको साताकारी ।  
इसमें पापों का पचखान, करो नहीं आत्म गुणों की हान ॥1॥

नित प्रति हिंसादिक जो करते, त्याग को मान कठिन जो डरते ।  
घड़ी दो कर अभ्यास महान, बनाते जीवन को बलवान ॥2॥

चोर के शरिया ने ली धार, हटाये मन के सकल विकार ।  
मिलाया उसने केवलज्ञान, किया भूपति ने भी सम्मान ॥3॥

मन की सकल व्यथा मिट जाती, स्वानुभव सुख सरिता बह जाती ।  
होता उदय ज्ञान का भान, मिलाते सहज शान्ति अरमान ॥4॥

जो भी गये मोक्ष में जीव, सबों ने दी समता की नींव ।  
उन्हीं का होता है निर्वाण, यही है भगवत् का फरमान ॥5॥

कहता 'गजमुनि' बारम्बार, कर लो प्रामाणिक व्यवहार ।  
हटाओ मोह और अज्ञान, मिले फिर अमित सुखों की खान ॥6॥



## सामायिक में सार है

(तर्ज - :: - जिया बेकरार है, हृदय की पुकार है)

सामायिक में सार है, टारे विषय विकार है।  
करलो भैया सामायिक तो निश्चय बेड़ा पार है ॥टेर ॥

भरत भूप ने काँच महल में, समता को अपना हो  
विषय-विकार को दूर हटाकर, वीतराग पद पाया हो।  
मन को लीना मार है, पाया केवल सार है ॥कर लो ॥

मेतारज मुनि सामायिक कर, तन का मोह हटाया हो  
प्रबल वेदना सहकर मुनि ने, केवल ज्ञान मिलाया हो।  
दिल में करुणा धार है, निज दुःख दिया विसार है ॥कर लो ॥

पुणिया ने नित सामायिक कर, काम क्रोध को मारा हो  
न्याय नीति से द्रव्य मिलाकर, अपना किया गुजारा हो।  
वीर प्रभु दरबार है, धन्य हुआ अवतार है ॥कर लो ॥

इन्द्रिय वशकर शांत स्थान में, मौन सहित अभ्यास करो  
ज्ञान धान में चित्त रमाकर, राग द्वेष का नाश करो।  
करना सबसे प्यार है, यही धर्म का सार है ॥कर लो ॥

अंश मात्र भी जो सामायिक अपनाते नर नार हैं  
वैर विरोध रहे नहीं जग में, घर घर मंगलाचार है।  
'गजमुनि' का आधार है, सुख शान्ति का द्वार है ॥कर लो ॥



अध्याय षष्ठ  
सामायिक सार



## **सामायिक क्या ?**

- (1) सामायिक—साधना का शिलान्यास है।
- (2) सामायिक—अध्यात्म की संजीवनी बूँटी है।
- (3) सामायिक—शान्ति और प्रसन्नता की घूँटी है।
- (4) सामायिक—समता का निर्झर है।
- (5) सामायिक—अहिंसा की प्रबल महाशक्ति है।
- (6) सामायिक—स्वाध्याय का मजबूत सेतु है।
- (7) सामायिक—असंयम से संयम का हेतु है।
- (8) सामायिक—आत्मा का पौष्टिक रसायन है।
- (9) सामायिक—पाप का प्रक्षालन है।
- (10) सामायिक—योगाभ्यास की पाठशाला है।
- (11) सामायिक—भक्त से भगवान बनने का उपक्रम है।
- (12) सामायिक—समभाव की अनुपम साधना है।
- (13) सामायिक—विवेक धर्म का अखूट खजाना है।
- (14) सामायिक—योग (मन-वचन-काया की प्रवृत्ति) से उपयोग (ज्ञान-दर्शन की प्रवृत्ति) की ओर जाने का पथ है।
- (15) सामायिक—समक्षित प्राप्त करने की सीढ़ी है।
- (16) सामायिक—संयोग-वियोग से योग (साधना) की ओर प्रयाण है।
- (17) सामायिक—आत्म-साधना का दर्पण है।

- (18) सामायिक-कर्म काटने का अमोघ उपाय है।
- (19) सामायिक-योगों (मन-वचन-काया) को स्थिर करने का उपाय है।
- (20) सामायिक-पापों से निवृत्त होने का मार्ग है।
- (21) सामायिक-धर्म का वास्तविक स्वरूप है।
- (22) सामायिक-वीतरागता की ओर बढ़ने का मार्ग है।
- (23) सामायिक-अणुब्रत से महाब्रत की ओर बढ़ने का साधन है।
- (24) सामायिक-आत्मबल की अनूठी औषध है।
- (25) सामायिक-सुसंस्कार की नींव है।
- (26) सामायिक-विनय, अनुशासन की द्योतक है।
- (27) सामायिक-आरंभ-परिग्रह से हटने की क्रिया है।
- (28) सामायिक-इन्द्रिय-निग्रह की कला है।
- (29) सामायिक-चाहे जो मजबूरी हो, सामायिक जरूरी हो।
- (30) सामायिक-मोक्ष का द्वार है।

◆◇◆

## सामायिक का क्या कहना ?

- ❖ मेरी साधना करके तो देख, तेरी आत्मा को कल्याण का मार्ग न दिखा दूँ तो कहना।
- ❖ मेरे लिए समय देकर तो देख, तेरी पूरी जिन्दगी सार्थक न हो जाए तो मुझसे कहना।
- ❖ मेरा मार्ग, आचरण का मार्ग है, उपदेश का नहीं। यदि तूने मौन साध लिया तो तेरी साधना में चार चाँद न लग जाए तो कहना।

- ❖ मेरे मार्ग पर चलकर तो देख, तू दूसरों का मार्ग-दर्शक न बन जाए तो कहना ।
- ❖ मेरे महत्व का मनन करके तो देख, तुझमें महानता प्रकट न हो जाए तो कहना ।
- ❖ यह मेरी जिम्मेदारी है कि तुझे मुक्ति का मार्ग दिखाऊँ, अगर तुझे मुक्ति का मार्ग न दिखा पाऊँ तो कहना ।
- ❖ मेरी इस एक साधना में संसार की समस्त साधनाएँ समाई हुई हैं, यकीन न हो पाए तो कहना ।
- ❖ तेरा समर्पण जितना उच्च होगा, मेरे लाभ तेरे लिए उतने ही महान् होंगे, यह अनुभव न हो जाए तो कहना ।
- ❖ मेरी इन बातों पर विश्वास न हो तो किसी उच्च श्रेष्ठ सामायिक साधक से पूछकर देख, तुझे विश्वास न हो तो कहना ।
- ❖ मैं क्या नहीं हूँ, यह कहने की बात नहीं है, करके देखने की है । तेरा जीवन धन्य बन कर रहेगा धन्य न बन जाए तो कहना ।

◆◇◆

## सामायिक को क्या उपमा ?

- ❖ सामायिक-मानसिक समस्याओं का समाधान करने वाला कम्प्यूटर है ।
- ❖ सामायिक-जन्म-मरण रूप रोग को समूल नष्ट करने वाली रामबाण औषधि है ।

**सामायिक**—आत्मा के चलचित्र का प्रदर्शक दूरदर्शन (टेलीविजन) है।

**सामायिक**—अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष नगर के एरोड्रम पर पहुँचाने वाली सुपर एरोप्लेन है।

**सामायिक**—मोक्ष मंजिल तक पहुँचाने वाली लिफ्ट है।

**सामायिक**—चेतन राजा के साथ जाने वाला पाथेय है।

**सामायिक**—अन्तस्तल में उतरने वाली पनडुब्बी है।

**सामायिक**—आत्मा की शान्ति समाधि रूप प्यास को बुझाने वाली एकमात्र प्याऊ है।

**सामायिक**—निज आत्मा को मौलिक अस्तित्व दिलाने वाली गिफ्ट है।

◆◇◆

## **सामायिक में क्या नहीं करना ?**

- ◆ सामायिक में अठारह पापों का सेवन नहीं करना।
- ◆ सामायिक में हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म एवं परिग्रह की प्रवृत्ति नहीं करना।
- ◆ सामायिक में कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) नहीं करना।
- ◆ सामायिक में संज्ञाएँ (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह) नहीं करनी।
- ◆ सामायिक में पाँचों इन्द्रियों के विषयों पर राग-द्वेष नहीं करना।
- ◆ सामायिक में आलस्य-प्रमाद नहीं करना।
- ◆ सामायिक में निन्दा-विकथा नहीं करना।

- ◆ सामायिक में मीटिंग नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में पूँजनी के बिना नहीं चलना ।
- ◆ सामायिक में ध्वनिवर्धक यंत्र में नहीं बोलना, ध्वनिवर्धक यंत्र की वाणी भी नहीं सुनना ।
- ◆ सामायिक में पेशाबादि के लिए बाथरूम का प्रयोग नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में व्यर्थ की बातें नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में नींद नहीं लेना ।
- ◆ सामायिक में बार-बार चलना या नहीं दौड़ना ।
- ◆ सामायिक में बुरे विचार नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में खाने-पीने की इच्छा नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में लड़ाई-झगड़ा, टंटा-तकरार नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में आर्तध्यान-रौद्रध्यान (रोना-पीटना) नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में या उसके पूर्व सामायिक के लिए साज शृङ्गार नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में झाड़ू निकालना अथवा सफाई या जाले निकालने का काम नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में न स्वयं प्रभावना लेना और न देना ।
- ◆ सामायिक में माला या शाल आदि से स्वागत नहीं करवाना, न करना ।
- ◆ सामायिक में स्कूल का होमवर्क नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में चेस, तास या इण्डोर गेम नहीं खेलना ।
- ◆ सामायिक में शारीरिक व्यायाम नहीं करना । शरीर पुष्टि के लिए नहीं करना ।

- ◆ सामायिक में बार-बार घड़ी में समय नहीं देखना ।
- ◆ सामायिक में पंखे, कूलर के स्थान पर नहीं बैठना, न चलाने का आदेश देना ।
- ◆ सामायिक में बिजली का स्विच आन/ऑफ स्वयं न करना, न कराना ।
- ◆ सामायिक में गृहस्थ संबंधी प्रवृत्तियाँ नहीं करना, दूध लेना, दरवाजा खोलना, बंद करना, पानी छानने का कहना, नल चालू बंद करना आदि कोई कार्य नहीं करना।
- ◆ सामायिक में मन के 10, वचन के 10, काया के 12 दोषों का सेवन नहीं करना ।
- ◆ सामायिक के कालमान के पूरा होने के पहले सामायिक नहीं पारना ।
- ◆ सामायिक में सभा में बोलते वक्त मुँहपत्ति नहीं खोलना ।
- ◆ सामायिक में बच्चों को लाड़ लड़ाना, खेलाना आदि प्रवृत्ति नहीं करना ।
- ◆ सामायिक में आओ, पधारो, बिराजो आदि शब्द असंयमी (खुले) व्यक्ति से नहीं कहना ।
- ◆ सामायिक के पूर्व बरसात से भीगे हो, शरीर न सूखे तब तक सामायिक नहीं पच्चकरना ।
- ◆ सामायिक में अखबार या सामाजिक पत्र-पत्रिकायें नहीं पढ़ना, न ही इनकी चर्चा करना ।
- ◆ सामायिक में खिड़की गेलेरी आदि से बाहर से जाने वाले जुलूस बारात आदि नहीं देखना ।

◆◇◆

## **सामायिक में क्या करना ?**

- ◆ सामायिक में समता रखनी चाहिए।
- ◆ सामायिक में प्रार्थना, प्रवचन, प्रतिक्रमण किया जा सकता है।
- ◆ सामायिक में ध्यान, आनुपूर्वी, कायोत्सर्ग किया जा सकता है।
- ◆ सामायिक में नया ज्ञान सीखना चाहिए।
- ◆ सामायिक में आत्म-चिंतन करना चाहिये।
- ◆ सामायिक को विधि युक्त, गणवेश युक्त धारण करें एवं विधि युक्त ही पारना चाहिए।
- ◆ सामायिक में धर्म कथा करनी चाहिये।
- ◆ सामायिक में विनय भाव बढ़ाने के लिए वंदना करनी चाहिए।
- ◆ सामायिक में एक स्थान पर बैठना चाहिए।
- ◆ सामायिक में छह काया के जीवों की रक्षा करनी चाहिये।
- ◆ सामायिक में मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्ति का आत्मसाक्षी से ध्यान रखना चाहिए।
- ◆ सामायिक में आगम गाथाओं का स्वाध्याय करना चाहिए।
- ◆ सामायिक में महापुरुषों के गुणग्राम वाली स्तुति, स्तोत्र, चौबीसी, भजनावली, तत्त्वयुक्त काव्यावली आदि का वाचन करना चाहिए।
- ◆ सामायिक में आगम वाचन करना चाहिए।

- ◆ सामायिक में महापुरुषों के जीवन चरित्र का अध्ययन करना चाहिए।
- ◆ सामायिक में द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की शुद्धि का ध्यान रखना चाहिए।
- ◆ सामायिक में काया की चंचलता से बचना चाहिए।
- ◆ सामायिक में वचन की गुप्ति के लिए मौन करे। परिमित बोले, सत्य एवं प्रामाणिक भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए।
- ◆ सामायिक में मनो-नियंत्रण के लिए बारह भावना की अनुप्रेक्षा करना चाहिए।
- ◆ सामायिक में अपने स्वरूप का विचार, पंचपरमेष्ठी का ध्यान तथा शरीर-आत्मा के भेद विज्ञान पर चिंतन करना चाहिए।
- ◆ सामायिक में शीत, उष्ण, डांस, मच्छर के परीषह, उपसर्ग सहने का अभ्यास करना चाहिए।
- ◆ सामायिक में विवेक युक्त प्रवृत्ति करना चाहिए।
- ◆ सामायिक में दृढ़ स्थिर आसन का अभ्यास करना चाहिए।
- ◆ सामायिक लेने के समय की स्मृति रखना चाहिए।
- ◆ सामायिक में गमनागमन का मौका आ जाय तो पूँजनी साथ ही रखनी चाहिए।
- ◆ सामायिक में षट् द्रव्य एवं नवतत्त्व का चिंतन करना चाहिए।
- ◆ सामायिक में रात को या अंधेरे में आवश्यक कार्य के कारण गमनागमन करना पड़े तो डांडिये से पूँजते हुए उपयोग पूर्वक चलना चाहिए।

◆◇◆

## **सामायिक से कर्म क्षय**

- ◆ सामायिक में स्वाध्याय, व्याख्यान श्रवण एवं वाचन से ज्ञानावरणीय कर्मक्षय होते ।
- ◆ सामायिक में एक आसन से बैठकर निद्रा जीते तो दर्शनावरणीय कर्मक्षय होते ।
- ◆ सामायिक में षट्काय की रक्षा से साता बाँधे और असाता सहने से वेदनीय कर्मक्षय होते ।
- ◆ सामायिक में विषय-कषाय आरंभ परिग्रह त्यागने से मोहनीय कर्मक्षय होते ।
- ◆ सामायिक में अशुभ आयु को न बाँधे, संयमासंयम से देवायु, वर्तमान आयु के पल को सार्थक करें, आयुकर्म को सफल करें ।
- ◆ सामायिक में योगों की ऋजुता से शुभ नामकर्म बाँधे, अशुभ नामकर्म का क्षय होते ।
- ◆ सामायिक में वंदना आदि विनप्र भाव से उच्च गोत्र बाँधे, नीच गोत्र का क्षय होते ।
- ◆ सामायिक में अभय देने से शक्ति बढ़ती है, रत्नत्रय की आराधना में शक्ति का संयोजन करने से अंतराय कर्म का क्षय होता है ।

◆◇◆

## सामायिक रत्न हैं

- ◆ सामायिक एक ऐसा चक्ररत्न है जो पापों के बियावन में रास्ता दिखाता है।
- ◆ सामायिक एक ऐसा छत्ररत्न है जो विषय की विष वर्षा से सुरक्षा देता है।
- ◆ सामायिक एक ऐसा दण्डरत्न है जो विकारों से विषम बने मन को सम बनाता है।
- ◆ सामायिक एक ऐसा खड़गरत्न है जो सावद्य योग रूपी शत्रुओं का हनन करता है।
- ◆ सामायिक एक ऐसा चर्मरत्न है जो सौभाग्य की फसल को त्वरित रूप से विकास देता है।
- ◆ सामायिक एक ऐसा मणिरत्न है जो अज्ञान की अंधेरी गुफा में हमारा रास्ता रोशन करता है।
- ◆ सामायिक एक ऐसा कांकिणीरत्न है जिसके ज्ञान प्रकाश में हम उच्चतम महापुरुषों को सम्मुख रखकर अपने को तौलते हैं।

◆◇◆

## सामायिक पाठ विशेष

- ◆ इच्छाकारेण एक ऐसा इरेजर है जो दूसरे जीवों के साथ की गई हमारी ज्ञात, अज्ञात क्रूरता से हमारी आत्मा पर लगे दागों को मिटाता है।
- ◆ तस्सउत्तरी एक ऐसा एनेस्थिसिया है, जिसे लेकर हम स्वयं ही कायोत्सर्ग में अपने ममत्व रूपी ट्र्यूमर का ऑपरेशन करते हैं।
- ◆ लोगस्स एक दिव्य ग्लूकोज है, जिसे चढ़ाकर हम दिव्य एनर्जी पाते हैं जिससे जीवन के सारे रोग, शोक दूर हो जाते हैं।
- ◆ कायोत्सर्ग शुद्धि एक ऐसी चेकिंग मशीन है जो कायोत्सर्ग में रही कमियों को मिटाता है।
- ◆ करेमि भंते एक दिव्य अलौकिक कक्ष है, जिसमें प्रविष्ट होने पर सारे खतरों की आशंकाएँ निर्मूल हो जाती हैं और अलौकिकताओं का प्रकटीकरण होता है।
- ◆ णमोत्थु णं शक्ति वर्धक पेस्ट है जो सामायिक रूपी शुद्ध दूध को पौष्टिक व गरिष्ठ बना देता है। अरिहंत सिद्ध की स्तुति श्रेष्ठ रसायन है।
- ◆ एयस्य नवमस्य एक ऐसा स्विच है, जिससे द्रव्य सामायिक रूपी बल्ब अँफ हो जाता है।

◆◇◆

## सामायिक से क्या लाभ ?

- ◆ सामायिक से समभाव की प्राप्ति होती है।
- ◆ सामायिक से आत्म-शुद्धि होती है।
- ◆ सामायिक व्यसन-मुक्ति होती है।
- ◆ सामायिक एकाग्रता के साथ करने से आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होती है।
- ◆ सामायिक से कर्मों की महती निर्जरा होती है।
- ◆ सामायिक की शुद्ध आराधना से आत्म-स्थिरता होती है।
- ◆ सामायिक की निरन्तर साधना से सिद्धि की प्राप्ति होती है।
- ◆ सामायिक व्रत की साधना से समाधि अवस्था की प्राप्ति होती है।
- ◆ सामायिक से मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- ◆ सामायिक से दुश्मन भी मित्र हो जाता है।
- ◆ सामायिक से राग और द्वेष समाप्त होता है।
- ◆ सामायिक से साधुता का अभ्यास होता है।
- ◆ सामायिक से कषायों का उपशमन होता है।
- ◆ सामायिक से साधना में सफलता मिलती है।
- ◆ सामायिक से सभी जीवों को अभयदान मिलता है।
- ◆ सामायिक से बारह प्रकार के तप का लाभ मिलता है।
- ◆ सामायिक से शांति प्राप्त होती एवं चिंता चली जाती है।
- ◆ सामायिक से घर नंदनवन बनता है एवं सच्चा बल मिलता है।
- ◆ सामायिक से बुद्धि में वृद्धि होती है एवं आत्मा शुद्ध बनती है।
- ◆ सामायिक से जीवन उन्नत बनता है एवं श्रावक पद मिलता है।
- ◆ सामायिक से आत्मा स्थिर होती एवं आत्मिक बल प्राप्त होता है।

◆◇◆

अध्याय सप्तम  
सामायिक सूचियाँ



## आचार्य हस्ती के सामायिक संबंधी प्रेरक वचन

- ◆ समभाव वह अमोघ कवच है जो प्राणी को समस्त आघातों से सुरक्षित कर देता है। जो भाग्यवान् समभाव के सुरम्य सरोवर में सदा अवगाहन करता रहता है, उसे संसार का ताप पीड़ा नहीं पहुँचा सकता।
- ◆ सामायिक का अभ्यास वह अभ्यास है, जिससे आदमी अपने आपको चारित्र-मार्ग में ऊँचा उठा सकता है।
- ◆ गृहस्थ विषय-कषाय के प्रगाढ़ पंक में रहकर भी क्षणिक समभाव की उपलब्धि कर सके, राग-रोष के जोर को घटा सके, इसलिए आचार्यों ने उसे सामायिक की शिक्षा दी है।
- ◆ सामायिक में कोई यह नहीं समझ ले कि इसमें कोरा अकर्मण्य होकर बैठना है। सामायिक-ब्रत में सदोष प्रवृत्ति का त्याग और पठन-पाठन, प्रतिलेखन, प्रमार्जन, स्वाध्याय, ध्यान आदि निर्दोष कर्म का आसेवन भी होता है। सदोष कार्य से बचने के लिए निर्दोष में प्रवृत्तिशील रहना आवश्यक है।
- ◆ जिस तरह घर से निकलकर धर्मस्थान में आते हैं और कपड़े बदलकर सामायिक साधना में बैठते हैं उसी तरह से कपड़ों के साथ-साथ आदत भी बदलनी चाहिए और बाहरी वातावरण तथा इधर-उधर की बातों के ख्याल को भुला देना चाहिए।
- ◆ संसार में मानव चौबीसों घण्टे आरम्भ-परिग्रह एवं विषय-कषाय में

तल्लीन रहता है। उसके कर्मबन्ध को हल्का करने के लिए सामायिक साधना बताइ गई है।

- ◆ भट्टी पर चढ़ाये उबलते पानी को भट्टी से अलग हटा देने से ही उसमें शीतलता आती है। इसी प्रकार नानाविध मानसिक सन्तापों से सन्तप्त मानव सामायिक साधना करके ही शान्ति लाभ कर सकता है।
- ◆ समाधि-अवस्था को प्राप्त करने के लिए सामायिक व्रत का अभ्यास आवश्यक है।
- ◆ सामायिक द्वारा साधक अपनी मानसिक दुर्बलताओं को दूर करके समझाव और संयम को प्राप्त करता है।
- ◆ आत्मा में जब तक शुद्ध दृष्टि उत्पन्न नहीं होती, शुद्ध आत्मकल्याण की कामना नहीं जगती और मन लौकिक एषणाओं से ऊपर नहीं उठ जाता, तब तक शुद्ध सामायिक की प्राप्ति नहीं होती।
- ◆ सामायिक साधना में एक वेष होगा, तो बहुत अंशों में सामाजिक भेद दूर हो सकेगा।
- ◆ आत्म स्थिरता ही सामायिक की पूर्णता है।
- ◆ मानव! सामायिक का अभ्यास कर। इससे समझाव पैदा होगा और समझाव आने पर कामना घटेगी और दुःख भी घटेगा।

◆◇◆

## आचार्य हीरा के सामायिक संबंधी प्रेरक कथ्य

- ◆ जो समभाव में लीन रहकर जीवन-व्यवहार को समता रूप सामायिक में ढाल लेते हैं, जिनका जीवन और सामायिक एकमेक बन जाते हैं, वे ही सच्चे साधु हैं।
- ◆ साधना की उच्चता को समत्वभाव से मापा जा सकता है। श्रमण हो या श्रमणोपासक, सुख-दुःख की परिस्थितियों में उसे समत्व-साधना को परिपक्व बनाना होगा।
- ◆ यदि मेरे में समता है तो मैं साधु हूँ और आप में समत्वभाव है तो आप श्रावक हैं। समता का गुण यदि जीवन से निकल जाए तो शेष क्या रहेगा ?
- ◆ मुनि का समत्व सामने वाले की प्रसन्नता का कारण बने।
- ◆ यदि अन्दर में समत्व अभी नहीं जगा है तो समझ लीजिए पिंजरा तो है पर पक्षी नहीं है, शरीर तो है पर प्राण नहीं है।
- ◆ समत्व-साधना का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति की अपनी आत्मा से है। उसका प्रभाव मन पर होता है। बाह्य पदार्थों, प्रदर्शन, आडम्बर से उसका कुछ भी लेना-देना नहीं है। अकेला है तो क्या और परिषद् में है तो क्या ? यदि समता है तो धर्म है।
- ◆ जहाँ इच्छा-निरोध रहता है, तृष्णाएँ स्वल्प हो जाती हैं, आवश्यकताएँ

सीमित कर दी जाती हैं, वहाँ समता, समत्व-भाव स्वतः आ जाता है।

- ◆ नियम टूटने पर प्रायश्चित्त का विधान है, शुद्धि की जा सकती है, पर समाधि टूट गई तो एक नहीं अनेक जन्म बिगड़ सकते हैं। साधक की पहचान हैहसमता।
- ◆ सच्चे संत की पहचान उसके भक्तों की संख्या से नहीं, उसकी समत्व-साधना से होती है।
- ◆ समता है तो साधुत्व है, समता से श्रावकत्व है, समता से सम्यक्त्व है। समत्व की साधना में जुटेंगे तो राग-द्वेष, क्रोध, अहंकार आदि कषाय नहीं बढ़ेंगे।
- ◆ जब कोई संसार में जितने भी चेतनाशील प्राणी हैं उन सब प्राणियों को अपने समान समझकर चलता है तो उसकी सामायिक को समकित सामायिक के नाम से कहा जा सकता है।
- ◆ साधक का लक्ष्य पाप का निकन्दन करना है। समता की साधना से यह संभव है।
- ◆ सामायिक के पाठ में विधि और निषेध दोनों रूप मिलते हैं—करेमि भंते सामाइयं यानी भगवन् मैं सामायिक करता हूँ। सावज्जं जोगं पच्चक्खामि अर्थात् मैं सावद्य-योग पाप-क्रिया को छोड़ता हूँ।

◆◇◆

## सहायक ग्रन्थ

1. सामायिक-दर्शन (जिनवाणी विशेषांक), सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, बापू बाजार, जयपुर।
2. जिनवाणी (सामायिक संगोष्ठी विशेषांक), सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल-जयपुर, सम्पादक-डॉ. नरेन्द्र भानावत।
3. सामायिक सूत्र, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल-जयपुर, सम्पादक-श्री ज्ञानेन्द्र बाफना।
4. सामायिक-साधना और स्वाध्याय, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल-जयपुर, आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा।
5. आवश्यक मलयगिरि वृत्ति-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल-जयपुर, सम्पादक-श्री प्रकाशचन्द जैन।
6. विशेषावश्यकभाष्य-जैन विश्वभारती-लाडनूँ, अनुवादक-डॉ. साध्वी मुदितयशा।
7. आवश्यकनिर्युक्ति खण्ड-1-जैन विश्वभारती-लाडनूँ, सम्पादिका-डॉ. समणी कुसुमप्रज्ञा।
8. सामायिक सूत्र, सन्मति ज्ञानपीठ-आगरा, लेखक-उपाध्याय अमरमुनिजी।
9. जैनदूत (सामायिक साधना विशेषांक), श्री अरिहन्तमार्गी जैन महासंघ-दिल्ली, सम्पादक-नेमचन्द तातेड़।
10. जिनागम चिंतन, पूज्य श्री नंदाचार्य साहित्य समिति, मेघनगर, चिंतक-श्री उमेशमुनि जी म.सा. ‘अणु’।

◆◆◆